

सूफ़ी एवं कृष्ण भक्त-कवियों की प्रेम-पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन

[१५ से १७वीं शती तक]

(अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय को पी-एच०डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध)

प्रबन्ध-सार

१९६८

T-826

निर्देशक

प्रोफेसर डा० हरबंशलाल शर्मा

एम०ए०, पी एच०डी०, डी०लिट्

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़

प्रस्तुतकर्त्री

मुशीला देवी त्रिवेदी

एम०ए० (हिन्दी-संस्कृत)

[Handwritten signature]
CHECKED-2027

7 B2L



24 5-100

यह शोध-प्रबन्ध १५ वीं से १७ वीं शती तक के हिन्दी सूफी कवियों एवं कृष्ण भक्त कवियों की प्रेम-पद्धति का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करता है। प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में मध्ययुग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक परिस्थितियों का अध्ययन किया गया है। राजनीतिक दृष्टि से तेरहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक का काल नितान्त विद्रुब्ध, अशान्त और संघर्षपूर्ण रहा। इसका प्रमुख कारण था बाह्य आक्रमणों की प्रधानता। इन आक्रमणों के कारण ही भारतीय राजनीति अस्थिर और अशान्त हो उठती थी। तेरहवीं शताब्दी से पूर्व भी अरबों ने भारत पर अनेक बार आक्रमण किए। महमूद गजनवी के भारत पर हमले इस बात का प्रमाण है। सन् १२०६ ईस्वी से १५२६ ईस्वी तक भारत में गुलाम, सिलजी, तुगलक, संयद और लोदी वंशों का शासन रहा। इनमें से कुछ शासक तो हिन्दुओं के प्रति उदार एवं न्यायप्रिय रहे परन्तु अधिकांश शासकों का शासन काल हिन्दुओं के प्रति उनकी क्रूरता, अत्याचारों और यातनाओं का जीवन्त प्रमाण प्रस्तुत करता है। सिकन्दर लोदी, अलाउद्दीन सिलजी एवं औरंगजेब के अत्याचारों की कहानियाँ बड़ी लोमहर्षक हैं। उन्होंने हिन्दू मन्दिरों को तोड़ने की आज्ञा जारी की, व्यापार व्यवसाय आदि में हिन्दू, मुसलमानों में भेदभाव रखा, हिन्दू को उच्च राजकीय पदों से वृक्ष किया एवं उनके उत्सवों और त्योहारों पर भी प्रतिबन्ध लगा दिए। मुस्लिम शासकों की इस हिन्दू विरोधी नीति के कारण हिन्दुओं ने स्थान २ पर विद्रोह करने प्रारम्भ कर दिए जिनको दबाने के लिए इन शासकों को कठिन प्रयत्न करना पड़ा। मध्ययुग की घोर अनिश्चित एवं अशान्तिपूर्ण परिस्थितियों के प्रभाव से तत्कालीन कवि भी अकूते न रह सके। श्री वल्लभाचार्य जी ने अपने कृष्णाश्रय नामक ग्रंथ में मुसलमानों के आक्रमण की ओर लक्ष्य करते हुए कहा :

“ मलेच्छाश्रान्तैषु देशेषु पापैर्निलयेषु च ,
सत्पीडाव्यग्रलोकेषु , कृष्ण स्व गतिर्मम ।।

अर्थात् मलेच्छों (मुसलमानों) से आश्रान्त देश अनेक प्रकार के पापों का स्थल बन गया है। सत्पुरुष पीड़ित हैं, तथा समस्त लोक व्यग्र हैं। ऐसी स्थिति में एक मात्र कृष्ण ही मेरी गति है।

तत्कालीन दूर तथा कठोर राजनीति की अज्ञान्ति के संकेत तुलसी, सूर, कबीर और विद्यापति की रचनाओं में यत्र तत्र उपलब्ध होते हैं। सूफी कवियों ने अवश्य ही उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों के विषय में कुछ नहीं लिखा है, हाँ वे उन परिस्थितियों से प्रभावित अवश्य थे । कारण पारस्परिक विरोध से उफ़ता कर उन्होंने अपनी प्रेम कथाओं में हिन्दू और मुसलमान दोनों की प्रणय भावना को बाँधने का प्रयास किया है। राजनीतिक परिस्थितियों के विषय में उनके चुप रहने का कारण शायद यह रहा हो कि सूफी मत के भारत में प्रवेशकाल तक उसका राज सत्ता से विरोध समाप्त हो चुका था ।

वसुधैव कुटुम्बकम् युग की राजनीति ही उस काल की सामाजिक परिस्थितियों की जन्मदात्री होती है। मध्ययुग में क्योंकि राजनीतिक अस्थिरता थी, भारतीय समाज अभिशप्त था । समाज में नैतिक नियन्त्रण ढीले होने के कारण उर्ध्वसलता बढ़ गई थी । मध्ययुगीन समय का विभाजन सरलतापूर्वक तीन वर्गों में किया जा सकता है, प्रथम वर्ग के अन्तर्गत समाज के उच्च वर्ग के लोग मनसबदार तथा उच्च राजकर्मचारी सम्मिलित थे, द्वितीय वर्ग में मध्यम श्रेणी के लोग आते थे तथा तृतीय वर्ग में वे व्यक्ति थे जो परिश्रम की कमाई

पर जीवनयापन करते थे । प्रथम वर्ग के लोग विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे, इनका जीवन केवल आनन्द व विलासिता का जीवन था । उन्हें न प्रजा की सुख सुविधाओं का ध्यान था और न राज्य व्यवस्था की चिन्ता । राजकीय शक्ति पर उनका अगाध प्रभाव था ।

मध्य युग में नारियाँ की दशा भी हीन थी, स्त्रियाँ ही अधिकांश युद्धों का कारण हुआ करती थीं । पृथ्वीराज और जयचन्द के मनमुटाव का कारण सौयोगिता ही थी । तत्कालीन अस्थिर सामाजिक परिस्थितियाँ से ऊबकर उस काल के कवियों ने ईश्वर की शरण जाना उचित समझा । सर्व जाति धर्म को महत्त्व न देकर भगवद् भक्ति को ही सर्वस्व माना । उनकी दृष्टि में भक्ति तथा भगवान् के समझा सम्पूर्ण कर्म, समाज, कुटुम्ब तथा व्यक्ति महत्त्वहीन थे । धर्मान्ध व्यक्तियों के लिए यह असह्य था । फलस्वरूप रूढ़ि-प्रियता और रूढ़ि त्याग दोनों भावों का उस काल के हिन्दू समाज में समान रूप से आन्दोलन उठ खड़ा हुआ । इस प्रकार भगवान् को केन्द्र मानकर भक्त लोग जाति, पंति तथा सामाजिक दुष्प्रवृत्तियों को उपेक्षा करते रहे । कुछ राजाओं ने सामाजिक बुराईयों की ओर दृष्टिपात कर उन्हें दूर हटाने का प्रयास किया । सर्वप्रथम अकबर ने इस ओर अपना ध्यान आकर्षित किया । उसने हिन्दू और मुसलमानों के सीमित दायरे से पृथक् एक भारतीय समाज की स्थापना की परन्तु आगे आने वाले अन्ध विश्वासी शासकों ने उसमें विघ्न स्रजता उत्पन्न कर दी । अतः राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में ह्रास, पराजय, संकीर्णता, रूढ़िवादिता का व्यापक प्रभाव उस युग में दिखाई देता था । फलस्वरूप चिन्तन स्वातन्त्र्य का भी लोप हो गया था ।

मध्ययुग की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में ढाँचाडोल होने पर धार्मिक परिस्थितियाँ भी स्थिर न रह सकीं। उच्च पश्चिम से आने वाले आक्रमणकारियों ने भारतीय समाज और धर्म पर इतने कठोर आघात किए कि भारतीय जनता अपनी समस्त मौलिकता, स्वातंत्र्य और प्रातिशीलता को विस्मृत कर साधारण रूप से जीवन व्यतीत करने में ही अपनी कुशलता सम्मती रही। सिकन्दर लोदी, महमूद गजनवी, मुहम्मद गौरी, बाबर, हुमायूँ शाहजहाँ आदि अनेक शक्तियाँ ने अपनी कठोरता से हिन्दुओं के हृदयों को दहलाकर उनके जीवन को डुमर बना दिया। फलस्वरूप हिन्दू जनता धार्मिक दृष्टि से नष्टप्रायः होगई।

धार्मिक स्थिति के विकृत होने पर अनेक सम्प्रदाय और मत मतान्तर देश में फैलने लगे। धर्म के नाम पर तो ये सम्प्रदाय समान ही थे परन्तु सिद्धान्त आदि में परस्पर भेद स्पष्ट था। शाक्त मत में जहाँ तन्त्र, मन्त्र, जादू-टोना, सिद्धि तथा चमत्कार आदि अन्ध विश्वासों का समावेश हो गया था, वहाँ शैव मत में शिव को ही परमेश्वर के रूप में प्रतिष्ठित किया गया था। इन अन्ध विश्वासों और धार्मिक विकृतियों के प्रतिक्रियास्वरूप पन्द्रहवीं शताब्दी में रामानन्द सम्प्रदाय कबीर पन्थ और सोलहवीं शताब्दी में वल्लभ सम्प्रदाय, नानक पंथ और चैतन्य सम्प्रदाय आदि का प्रादुर्भाव पुनर्जागरण की चेतना की बाह्याभिव्यक्ति थी। इन सम्प्रदायों द्वारा प्रवर्तित पुनर्जागरण का यह आन्दोलन देश के एक कोने से दूसरे कोने तक व्याप्त हो गया। सामान्य जनता इन सम्प्रदायों में दीक्षित होने लगी और परम्परागत ब्राह्मण धर्म पृष्ठभूमि में चला गया। इन सम्प्रदायों में निर्गुण

और सगुण का संघर्ष होने लगा । ऐसे ही समय इस्लाम धर्म ने भारत भूमि पर प्रवेश किया पर यहाँ इस्लाम धर्म को वह सफलता न मिली जो उसे ईरान अफगानिस्तान आदि देशों में मिल चुकी थी । हाँ प्रत्यक्षा रूप से इस धर्म ने यहाँ की संस्कृति पर अपना प्रभाव अवश्य डाला । उस काल के निर्गुण प्रेम-मार्गी सूफी कवियों ने हिन्दू धर्म और इस्लाम की कुछ बातों में ~~सबक-प्रदर्शन~~ साम्य प्रदर्शित कर दोनों सम्प्रदायों को निकट लाने का प्रयत्न किया एवं क़ैत-वाद में इस्लाम के स्केश्वरवाद की खोज की ।

इस प्रकार धार्मिक अवस्था के विरुद्ध होने पर देश में अनेक धार्मिक सम्प्रदाय उठ खड़े हुए । शैव, शैक्त, जैन तथा बौद्ध धर्म धीरे २ लीप होगर पर वैष्णव धर्म जोर फड़ता गया । हिन्दू ही नहीं मुसलमान भी मक़िद की इस लहर से प्रभावित हुए एवं ईस्वी की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में दक्षिण के मक़िद आन्दोलन ने पूरे वेग से समस्त उच्च भारत की अधिकृत कर लिया ।

मध्यकालीन पुनर्जागरण का सर्वाधिक प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर लक्षित होता है। धार्मिक आन्दोलन के नेताओं ने अपने विचारों को जनता तक पहुँचाने के लिए अधिकतर लोक भाषा का आश्रय ग्रहण किया फलस्वरूप इस काल का अधिकांश धार्मिक और साम्प्रदायिक साहित्य लोकाश्रित होगया । तत्कालीन राज्याश्रित साहित्य पर पुनर्जागरण के आन्दोलन का बहुत कम प्रभाव पड़ा , ऐसी स्थिति में इस साहित्य का क्षेत्र संकीर्ण बन गया । जनजीवन से दूर रहकर यह साहित्य फसता रहा । यही कारण था आगामी शताब्दियों में यह अधिक महत्वपूर्ण नहीं रहा गया ।

धार्मिक सम्प्रदायों में दीक्षा होने के लिए जाति पंक्ति का कोई भेद भाव न था। तत्कालीन साहित्य मध्यवर्गीय चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति करता है। इस युग के धर्माश्रयी साहित्य को प्रमुख रूप से दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है प्रथम नाना पुराण निगमागम सम्पन्न सगुण भक्ति धारा और द्वितीय जैनियों, बौद्धों, योगियों सूफियों आदि के सम्मिलित प्रभाव को लेकर चलने वाली निर्गुण भक्ति धारा। इन दोनों वर्गों के साहित्य पर तत्कालीन परिस्थितियों का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। विभिन्न परिस्थितियों के भर्त्सनावादी को फेलते हुए इन काव्य धाराओं का जो निष्कलुष रूप मध्य युग में फूट हुआ वह दूसरे देशों की देन नहीं अपितु उसके गर्भ में सदियों से चली आती हुई परम्परा निहित है।

प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में हमने सूफी मत के आविर्भाव और विकास पर दृष्टिपात किया है। इस्लाम की प्रमुख भाषाओं अरबी, फारसी और तुर्की में रहस्यवादियों को सूफी नाम से अभिहित किया गया है और उनके दर्शन को सूफी मत या तसव्वुफ कहा गया है। फरीदुद्दीन अखार ने सन्तों के जीवन सम्बन्धी अपनी पुस्तक "तजकिरातुल आलिया" में सूफी मत की सत्तर परिभाषाओं का विवेचन किया है। वास्तव में ईश्वरीय सत्य का उद्घाटन करना और मानवीय वस्तु का त्याग ही सूफी धर्म का सार है।

सूफी मत का मूल कुरान को स्वीकार किया जाता है। स्तना होने पर भी सूफी मत के उद्भव में अन्य मतों ने भी योगदान दिया है। निकल्सन एवं ब्राउन ने सूफी मत के आविर्भाव में नास्तिक मत तथा यूनानी एवं नवअफलातूनी दर्शन का योग स्वीकार किया है, इसके अतिरिक्त निकल्सन ने ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म आदि अन्य विचारधाराओं से भी इसे प्रभावित होना

स्वीकार किया है। कुछ विद्वान् सूफीमत को आर्य जाति के धार्मिक विकास के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ स्वीकार करते हैं तो कुछ इसके आविर्भाव को शामी धर्म की विजय के विरुद्ध आर्यों की प्रतिक्रिया मानते हैं। इस प्रकार सूफीमत के आविर्भाव में किसी एक भावना को कारण नहीं माना जा सकता ।

यद्यपि इस्लाम का प्रादुर्भाव अरब देश में हुआ ।

पर धीरे धीरे वह ईरान, शाम, फिलिस्तीन भारत आदि देशों में पहुँच गया और इस्लाम का यही पाँधा सूफीमत के रूप में पल्लवित और पुष्पित होकर लहलहा उठा । ईसा की दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी तक सूफीमत दर्शन शास्त्र और साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त विकास को प्राप्त हुआ । तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी तक तो मुस्लिम धर्म प्रचारक और सूफी साधक देश के सभी भागों में फैल गये । अपने धर्म प्रचार हेतु सूफियों ने विभिन्न सम्प्रदाय संगठित किए । इन विभिन्न सम्प्रदायों में निम्न चार सम्प्रदाय अधिक लोकप्रिय हुए । इन सम्प्रदायों के भारत में आने का समय इस प्रकार है :

चिरित्या सम्प्रदाय - सन् बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध- (आदि प्रवर्तक)

स्वाजा मुहंउदीन चिरती

सुहरावदी सम्प्रदाय- सन् तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध - शिहाबुद्दीन सुहरावदी

कादरी सम्प्रदाय - सन् पन्द्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध- अब्दुल कादिर जिलानी

नक्शबन्दी सम्प्रदाय- सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध- स्वाजा बहाउद्दीन नक्शबन्द

ये सम्प्रदाय तुर्कीस्तान , ईराक और ईरान के विभिन्न सूफियों द्वारा असंगठित रूप में भारत में लाके गये पर आचरण की शुद्धता एवं सात्विकता के कारण यहां ये बहुत प्रचलित हुए ।

सूफियों के प्रमुख सम्प्रदायों के विवेचन के उपरान्त उनके सामान्य सिद्धान्तों का अवलोकन करते हैं। सूफियों के सामान्य सिद्धान्तों के अन्तर्गत उनके ईश्वर, जीव, माया और ज्ञात सम्बन्धी सिद्धान्त आते हैं। ईश्वर की सत्ता की सूफी महत्ता प्रदान करते हैं। वे अल्लाह की समस्त शक्तियों ऐश्वर्यों और सद्गुणों का समाहार मानते हैं। इसी आधार पर जिली ने ईश्वर के गुणों को चार वर्गों में विभक्त किया है :

जात - ईश्वर के सत्ता सम्बन्धी गुण

जमाल- ईश्वर के माधुर्य बोधक गुण

जलाल- ईश्वर के ऐश्वर्य बोधक गुण

कमाल - ईश्वर की अद्भुत शक्ति के व्यंजक गुण

सूफियों ने ईश्वर को कर्ता, पालक और संहारक मानने के साथ २ उसे समस्त सृष्टि में व्याप्त और परम सत्य स्वीकार किया है। इसी विचार प्रणाली के आधार पर उन्होंने ब्रह्म सम्बन्धी विचारों को "वह्दतुलमुजूद " या वजूदिया और "वह्दतुलशुदूद " या शुदूदिया दो वर्गों में विभक्त किया । वजूदिया सिद्धान्त के अनुयायी ईश्वर को सृष्टिक्रम में प्रसारित मानते हैं। इस कारण इस ज्ञात को भी वे प्रतिबिम्ब मात्र या

आभास मात्र नहीं मानते अपितु उस परमसत्ता की अभिव्यक्ति मानते हैं जबकि शुद्धदिया शाखा के अनुयायी इस सृष्टि की उस परम सत्ता का प्रतिबिम्ब स्वीकार करते हैं।

ईश्वर के अनन्तर जीव का स्थान है क्योंकि वह ब्रह्म का ही अंश है। सूफियों के अनुसार ब्रह्म वास्तविक सत्ता है एवं सम्पूर्ण दृश्य जगत् में परिब्याप्त है और इसी आधार पर जीव और ब्रह्म में पृथक्-कीकरण संभव नहीं। इस प्रकार सूफी जीव को ईश्वर से अभिन्न स्वीकार करते हैं। उसकी उत्पत्ति ईश्वर से बिना उसकी एकता नष्ट किये उसी प्रकार होती है जिस प्रकार सूर्य से रश्मियां निकलती हैं।

जगत् के विषय में सूफियों की मान्यता है कि जगत् के द्वारा स्वयं की अभिव्यक्ति करने की इच्छा जब ईश्वर को हुई तो उसने अपनी ही ज्योति से एक ज्योति का निर्माण किया। यही ज्योति नूर मुहम्मद कही जाती है। ईश्वर इस ज्योति के जमाल पर मुग्ध हो गया और इसी ज्योति के लिए उसने जगत् की रचना की। इस प्रकार यही ज्योति सृष्टि का वादि कारण मानी जाती है। ईश्वर से आविर्भूत इस दृश्य जगत् की नित्यता और अनित्यता के सम्बन्ध में भी सूफियों के कई मत प्रचलित हैं। प्रथम मत के अनुसार “यह जगत् नित्य है, कारण इसका प्रसार परमसत्ता से हुआ है” और दूसरे मत के अनुसार, “यह दृश्यमान जगत् अनित्य है जो एक न एक दिन नष्ट होकर उसी परमसत्ता में अवस्थित हो जायेगा।”

माया को सूफी भारतीय वेदान्त की तरह ईश्वर और जीव के सम्मिलन में बाधक स्वीकार करते हैं, पर वे माया के स्थान पर नफ़स को मानते हैं। सूफियों के अनुसार नफ़स भी ईश्वर और जीव के मिलन में माया का ही कार्य करती है। सूफियों ने माया की कल्पना केवल विधा माया के रूप में की है। कारण माया का कोई सत्स्वरूप उन्हें मान्य नहीं।

इस नफ़स या माया को वशीभूत करके ही जीव ईश्वर से मिल सकता है। लगभग सभी सूफी साधकों का इस विषय में मतैक्य है।

अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अर्थात् ईश्वर में लीन होकर अवस्थित हो जाने के लिए साधक को चार अवस्थाएँ प्राप्त करनी पड़ती हैं :

१- शरीयत (कर्मकाण्ड)

२- तरीक़त (उपासना काण्ड)

३- हकीक़त (ज्ञान निष्ठा)

४- मारिफ़त या सिद्दावस्था (ज्ञानकाण्ड)

शरीयत के कायदे कानूनों और पाबन्दियों को मान कर साधक तरीक़त में प्रविष्ट होता है जहाँ वह सांसारिक तुच्छताओं से ऊपर उठ जाता है, और उसकी ईश्वर मिलन की बाधायें दूर हो जाती हैं। तृतीय अवस्था में वह वाध्यात्मिक शक्ति प्राप्त कर लेता है और मारिफ़त सूफी साधना की पराकाष्ठा है जहाँ साधक का ईश्वर से विलीन हो जाता है और आत्मा का परमात्मा से सम्मिलित हो जाता है। सूफी इस स्थिति को बक़्ा कहते हैं जो उनका चरम लक्ष्य है।

तृतीय अध्याय में सूफियों की प्रेम साधना पर दृष्टि-पात किया गया है। साधना में प्रेम का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है फिर

सूफ़ी साधना का तो विशाल भवन ही प्रेम की आधार शिला पर आधारित है इसका कारण सूफ़ियों का यह विश्वास है कि मादन भाव को अपनाने से ही प्रियतम की प्राप्ति सुलभ ही सकती है और इस मादन भाव का मूल शामी परम्परा में निहित है। सूफ़ी साधक ईश्वरीय सौंदर्य पर मुग्ध होते हैं। ईश्वर के जलाल से अधिक उसके जमाल पर उन्हें भरोसा है और ईश्वरीय सौंदर्य की प्राप्ति हेतु वे सांसारिक सौंदर्य की प्रशंसा करना पाप नहीं समझते अपितु वे लौकिक प्रेम को ही अलौकिक प्रेम का निमित्त स्वीकार करते हैं। इश्क मज़ाजी अर्थात् लौकिक प्रेम द्वारा ही इश्क हक़ीकी अर्थात् अलौकिक प्रेम की प्राप्ति सम्भव है, ऐसा सूफ़ियों का दृढ़ विश्वास है। उनके अनुसार यही सांसारिक और मानवीय प्रेम आगे चलकर विश्व ब्रह्माण्ड को आच्छन्न कर लेता है और ऐसा होने पर साधक सर्वत्र आत्मा और परमात्मा की प्रेम लीला के दर्शन करने लगता है। सौंदर्य की सीमित परिधि अन्त में अन्त सौंदर्य तक पहुँच जाती है और साधक स्वयं को उस अनन्त सौंदर्य में डुबी देता है। सूफ़ी साधकों का यह भी दृढ़ विश्वास है कि प्रेम के द्वारा ही माया मोह से मुक्ति सम्भव है लेकिन जब साधक के हृदय में प्रेम का संवार होता है तो सांसारिक वस्तुएं स्वयं ही उसके लिए तुच्छ हो जाती हैं। इस प्रकार प्रेम ही माया मोह से मुक्ति का भी साधन है।

सूफ़ियों ने प्रेम के सम्बन्ध में विभिन्न मन्ताव्य प्रकट किए हैं। सूफ़ी साधक अबूतालिब, हाफ़िज, अल शिबलो और अल-हुज्विरी आदि ने प्रियतम के दर्शनों की इच्छा को प्रेम का लक्षणा और प्रेम को ही समस्त सत्त्वों का सार स्वीकार किया है। राबिया ने प्रेम को सकाम और निष्काम दो भागों में विभक्त किया है। सकाम प्रेम उन्होंने उसे

माना है जो सुख व आनन्द की उपलब्धि हेतु किया जाय एवं इस प्रकार ईश्वरीय अनुग्रह प्राप्ति की आकांक्षा ही और निष्काम प्रेम उसे स्वीकार किया है जिसमें साधक किसी प्रकार की इच्छा से रहित होकर केवल ईश्वरीय जमाल पर मुग्ध होता है। ईश्वरीय सौंदर्य पर मुग्ध होने के उपरान्त साधक कामना रहित हो जाता है, उसकी कोई इच्छा शेष नहीं रहती । निष्काम प्रेम की प्राप्ति ही साधक का अन्तिम लक्ष्य होता है। इस प्रकार के प्रेम पर जलालुद्दीन रूमी ने भी जोर दिया है। उनके अनुसार, जिस व्यक्ति की समस्त इच्छाएं ईश्वर के साथ एकत्व की प्राप्त हो जाती हैं उसी का प्रेम अनन्य है। राबिया के पश्चात् मारुफ करखी, जुलनून और मजीद इस ओर अग्रसर हुए । मजीद ने " मैं " और " तू " की भावना का अन्त कर जीव और ईश्वर की एकमेव घोषित किया ।

ईश्वर के साथ एकमेव होना अर्थात् पूर्ण मिलनावस्था के विषय में सूफियों का मतभेद है। कुछ सूफी फ़ना की अन्तिम स्थिति मानते हैं लेकिन हुज्वरी, अलसरजि आदि उनके इस मत का खण्डन करते हुए फ़ना के बाद भी एक स्थिति की स्वीकार करते हैं जिसे " बका " कहते हैं। " हुज्वरी " ने " फ़ना " और बका " के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए बतलाया है कि " फ़ना " वास्तव में किसी वस्तु की अपूर्णता का ज्ञान और उसे पाने की इच्छा से विरत होना है। उनके अनुसार " फ़ना " की अवस्था में न प्रेम के लिए स्थान रह जाता है और न घृणा के लिए एवं " बका " की स्थिति में न संयोग का ज्ञान रह जाता है और न वियोग का । अली बिन उसमान जुल्लाबी ने " फ़ना " और " बका " की एक ही भाव का धोतक मानते हैं जिनका केवल कहने का ढंग भिन्न है वस्तुतः प्रत्येक

स्थिति में किसी प्रकार से भी ईश्वर के साथ एकत्व प्राप्त करना ही ज्ञानी का लक्ष्य होता है। अनेकानेक कष्टों और यातनाओं को फलकर साधक ईश्वर की ओर अग्रसर होता है और फिर "अहंत्व" की समाप्ति होने पर उसे "ईश्वरत्व" की प्राप्ति होती है। आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ता है। कठोर संसार भी आनन्दमय हो जाता है और फिर उसे "ब्रह्मा" या मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है। यही महामिलन की स्थिति है जिसकी प्राप्ति हेतु साधक को सर्वस्व त्यागकर उसी ईश्वर की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील होना पड़ता है। अतः सूफी मार्ग की अन्तिम मंजिल प्रेम है और इस प्रेम के सामान्य रूप से निम्नलिखित प्रमुख तत्त्व हैं :

१- दुःख का प्रादुर्भाव

२- दृढ़ता और एकनिष्ठता

३- हृदय की पवित्रता

४- अहंकार क्रोध और ईर्ष्या का लीप ।

प्रेम के प्रमुख तत्त्वों के अतिरिक्त सूफी मार्ग की चार मंजिलें तथा उन मंजिलों की चार अवस्थाएं स्वीकार की गई हैं। सर्व-प्रथम मंजिल नासूत है जिसमें साधक को शरीरगत के नियमों का पालन करना पड़ता है। द्वितीय मंजिल "मलकूत" कहलाती है जिसमें साधक को तरीका अर्थात् पवित्रता का वाश्रय ग्रहण करना पड़ता है। तृतीय मंजिल "जबसूत" है जिसमें साधक वाघ्यात्मिक शक्ति उपलब्ध करता है और प्रेम मार्ग की बाधायें स्वतः नष्ट हो जाती हैं यह मंजिल "मारिफ" अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान की

है जहाँ पहुँच कर साधक का हृदय राग विराग की भावनाओं का परित्याग कर ज्ञान की उपलब्धि करता है, तत्पश्चात् साधक चतुर्थ मंजिल "लाहूत" में पदार्पण करता है और यही "ह्योक्त" या परम सत्य की स्थिति है जहाँ पर "अहंत्व" और "परत्व" की भावना से परे साधक को अपने प्रियतम की प्राप्ति होती है।

सूफी मत के उद्भव और विकास एवं सूफियों की प्रेम पद्धति की वृद्धि करने के पश्चात् चतुर्थ अध्याय में हमने कृष्ण भक्ति के उदय और विकास पर दृष्टिपात किया है। कृष्ण भक्ति के विकास में भागवत धर्म का सर्वाधिक योगदान है। भागवत धर्म ही सात्वत, पांचरात्र तथा एकान्तिक नाम से भी विख्यात था। शान्ति पर्व के "नारायणीयोपाख्यान" के एक आख्यान के अनुसार भागवत धर्म के आदि प्रवर्तक चित्रशिलण्डी तथा मनु थे। इसके परवर्ती स्वरूप में जो सुधार हुआ उसका सूत्रपात करने वाले सम्भवतः भगवान् श्रीकृष्ण थे। इस स्वरूप की प्रतिष्ठा भावद्गीता में हुई और इसके उपदेष्टा को नारायण नाम से अभिहित किया गया। इस प्रकार भागवत धर्म विक्रम संवत् से कई सौ वर्ष पूर्व ही इस देश में प्रतिष्ठित हो गया था। पर इस धर्म का निश्चित स्वरूप भावद्गीता में ही उपलब्ध है। पांचरात्र ग्रंथों का कहना है कि भागवत धर्म वेद से ही सम्बद्ध है, पांचरात्र का सम्बन्ध वेद की एकायन शाखा से है। भागवत धर्म नारायण, वासुदेव हरि अथवा कृष्ण नाम के भगवान् में एकान्त निष्ठा रखने का आदेश देता है। इस कारण इस धर्म को एकान्तिक धर्म भी कहते हैं। एकान्तिक भाव की प्रीति ही भागवत धर्म का परम साधन है यथा :

“स वै प्रसां परोधर्मा यतो भक्तिरधीदृजः ।

अहेतुक्य प्रतिहता यया त्मा सम्प्रसीदति ॥

अतः प्राणिमात्र का परम धर्म भवान् श्रीकृष्ण की कामनारहित भक्ति है। भवान् श्रीकृष्ण का विषय भारतीय वाङ्मय में विवादास्पद है। और इसका मुख्य कारण है, वैदिक साहित्य से लेकर आज तक के साहित्य में कृष्ण और उनके चरित्र का अस्तित्व । वैदिक काल में कृष्ण के विष्णु रूप की उपासना की जाती रही । ब्राह्मण युग में यज्ञ संस्था का विकास हुआ और विष्णु की एकता यज्ञ के साथ प्रतिपादित करके विष्णु का महत्त्व अपेक्षाकृत बढ़ा दिया गया । छान्दोग्य उपनिषद् में देवकी पुत्र कृष्ण का स्पष्ट वर्णन है, जो घोर वांगिरस के शिष्य थे परन्तु छान्दोग्य उपनिषद् के कृष्ण और पौराणिक कृष्ण को मैक्समूलर, तिलक, डे आदि विद्वान् एक नहीं मानते ।

पुराण साहित्य में श्रीकृष्ण सम्बन्धी अनेक कथाएँ हैं। अठारह पुराणों में से लगभग आधे पुराणों का सम्बन्ध वैष्णव धर्म से है। श्रीमद्भागवत में तो कृष्ण का व्यापक रूप ही उपलब्ध है। कृष्ण भक्ति का वह पावन स्रोत जो पहाड़ की कन्दराओं, लीहों, गह्वरों में बह रहा था उपनिषत्काल में हमारे नेत्रों के समझा कल कल वेगा से प्रवाहित होता जा रहा था, पूर्णरूपेण श्रीमद्भागवत में ही प्रकट हुआ । यहाँ पर श्री कृष्ण के अद्भुत कर्माँ, असुर संहारी, बाल कृष्ण, गोपी कृष्ण, राजनीति वेत्ता, योगेश्वर और साक्षात् परब्रह्म आदि सभी रूप उपनिविष्ट हैं। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के तीन रूपों का दर्शन होता है महामारत के कृष्ण, गीता के कृष्ण और भागवत के कृष्ण । इनमें भागवत के कृष्ण अपूर्व हैं वे पुराण, महामारत, गीता और कृष्ण सम्बन्धी अन्य सभी ग्रंथों में दिए गये भावों का समन्वय है।

भारतीय वाङ्मय में श्रीकृष्ण के विविध रूपों के दर्शन के बाद भक्ति के क्रमिक विकास पर दृष्टिपात करते हैं, तो पाते हैं कि भक्ति का विकास तीन उत्थानों की अभूतपूर्व देन है। वैदिक युग भक्ति के प्रथम उत्थान का युग है। वेद मन्त्रों में यी स्पष्ट रूप से भक्ति शब्द का व्यवहार नहीं हुआ पर वहाँ भक्ति भावना के तत्त्व अवश्य ही निहित हैं। अथर्व वेद के प्रस्तुत मन्त्र में भक्ति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग उपलब्ध होता है, " तस्य ते भक्तिमासः स्याम " अर्थात् हे प्रभु हम तेरी भक्ति वाले हों । शाण्डिल्य के भक्ति सूत्र से भी यही बात स्पष्ट है कि भक्ति श्रुति से ही जानी जाती है। इस प्रकार वैदिक युग में उपासना या भक्ति का महत्व था । ब्राह्मण युग में कर्मकाण्ड का महत्व होने पर भी भक्ति भाव की विरलता न थी । आरण्यक उपनिषद् युग में कर्मकाण्ड के विरुद्ध ज्ञान काण्ड की घोर प्रतिक्रिया हुई । परिणामस्वरूप ज्ञानकाण्ड का प्रतिस्थापन हुआ परन्तु उपनिषदों में ज्ञान काण्ड का महत्व वर्णित होने पर भी भक्ति की गरिमा पग पग पर दिखाई देती है। श्वेताश्वतरी-उपनिषद् में भक्ति के सम्बन्ध में एक वृत्ति महत्वपूर्ण उल्लेख प्राप्त है :

“ यस्य देव परामक्तिर्यथा देव तथा गुरो ।

तस्यैत कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

वैदिक साहित्य के समान ही प्राचीन समकालीन ज्ञान वाले आगम अथवा तंत्र साहित्य में भी भक्ति के बीज उपलब्ध होते हैं। भक्ति के इस प्रथम उत्थान में ही वैष्णव प्रधान भक्ति सिद्धान्तों का भी पर्याप्त विकास हुआ । पुराणों का और विशेष रूप से भागवत पुराण का इन सिद्धान्तों के प्रतिपादन में पर्याप्त योगदान रहा । भागवत का आदि , मध्य और अन्त भक्ति से भरपूर है। भक्ति के प्रथम उत्थान के उपरान्त वैष्णव भक्ति के उत्थान का द्वितीय युग आता है जिसका श्री गणेश तो हुआ , आत्मार सन्तों से और अन्त हुआ , वैष्णवाचार्यों के समय में । इस युग में मुख्य रूप से चार सम्प्रदायों का जन्म हुआ ।

निम्बार्क सम्प्रदाय- श्री सम्प्रदाय- माध्व सम्प्रदाय एवं रुद्र या विष्णु स्वामी सम्प्रदाय । भक्ति के तृतीय उत्थान में आचार्य वल्लभ ने इसके सिद्धान्तों का पर्याप्त प्रचार किया । इस युग का प्रसार काल सन् १४०० से लेकर १६०० तक है और इस काल में दो धाराओं के रूप में भक्ति आन्दोलन का विकास हुआ । प्रथम धारा रामभक्ति शाखा और द्वितीय धारा कृष्ण भक्ति शाखा के नाम से अभिहित हुई । रामभक्ति शाखा के प्रवर्तक स्वामी रामानन्द थे जिन्होंने दक्षिण भारत की धार्मिक जाग्रति की लहर की सरल सिद्धान्तों द्वारा सभी वर्णों और वर्गों के समता प्रस्तुत किया । कृष्ण भक्ति धारा का उद्गम स्थल भगवान् श्रीकृष्ण की अलौकिक लीलाओं का केन्द्र वृन्दावन है। यही पर समयानुसार ये चार सम्प्रदाय उत्पन्न होकर विकसित हुए- निम्बार्क , वल्लभ, चैतन्य एवं राधावल्लभ । इन सम्प्रदायों के अनुयायियों ने भक्ति का बड़ा सूक्ष्म एवं गम्भीर विवेचन किया एवं अनेक स्थलों पर अपने सिद्धान्तों का प्रचार व प्रसार किया । इन सम्प्रदायों के सिद्धान्तों के मूल में शंकराचार्य के अद्वैत का खण्डन तथा भक्ति मार्ग का मण्डन है। आचार्य शंकर अद्वैत से भक्ति मार्ग की अपेक्षित प्रतिष्ठा न हो सकी थी । कारण उन्होंने ब्रह्म के ज्ञान स्वरूप की महत्त्व प्रदान किया । भक्ति के लिए हृदय पदा अपेक्षित है जिसे मध्ययुगीन आचार्य और भक्तों ने प्रधानता दी । शंकराचार्य के दार्शनिक ऊहापोह एवं गम्भीर चिन्ता धारा से मुक्ति पाने के लिए परवर्ती आचार्यों ने अपने अपने भक्ति सम्प्रदायों की स्थापना की । फलस्वरूप आचार्य निम्बार्क द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त भेदामेद या द्वैताद्वैत नाम से, आचार्य वल्लभ का सिद्धान्त पदा अभिन्त्य भेदामेद नाम से व्यवहृत हुआ । इन सम्प्रदायों में दीक्षित हिन्दी के मुख्य कवियों की रचनाएं सैद्धान्तिक दृष्टि से अमूमयी सी प्रतीत होती हैं फलतः उनके ब्रह्म, जीव, जगत, माया और मोक्ष सम्बन्धी सिद्धान्तों में भी पर्याप्त साम्य दृष्टिगत है।

पुराणों, अपनिषदों एवं भागवतादि ग्रंथों में ब्रह्म सम्बन्धी विवेचन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। श्री निम्बार्क ने ब्रह्म को सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अद्वैत, अविभक्त, निर्विकार तथा सम्पूर्ण विश्व का आधार व कारण स्वीकार किया है। इसी प्रकार चैतन्य सम्प्रदाय के कृष्ण भी परम तत्त्व हैं, अनन्त शक्तियों से पूर्ण हैं एवं समस्त भक्तों द्वारा वारा-घनीय व भजनीय हैं। वाचार्य वल्लभ ने श्रीकृष्ण को परब्रह्म युक्ति से ओचर तथा विरुद्धधर्मी का आश्रय माना है। वल्लभ सम्प्रदाय के शुद्धाद्वैतमत के अनुसार परब्रह्म निर्गुण व सगुण दोनों हैं। प्रकृति प्रदत्त निश्चेतन शारीरिक गुणों से रहित होने के कारण वह निर्गुण है परन्तु जिस ब्रह्म से इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति व लय होता है वह केवल निर्विशेष और निर्गुण भी नहीं हो सकता। सर्वशक्तिमान और सर्वधर्मा ही सकता है अतः ब्रह्म का उभयात्मक होना श्रुति-सिद्ध है। सत्, चित और आनन्द इन तीन प्रमुख गुणों से युक्त होने के कारण उसे सच्चिदानन्द कहते हैं। राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक हित हरिवंश जी ने अपने भक्ति सिद्धान्त का आधार प्रेम माना है। ब्रह्म, जीव, जगत् माया क्या मोक्षा का उन्होंने कहीं भी विचार नहीं किया। प्रेम को उन्होंने 'रसी वै सः' आदि श्रुतिपरक वाक्यों द्वारा समझाकर रस रूप भगवान् और परात्पर प्रेम तत्त्व में कोई भेद नहीं माना। इसी प्रकार सभी सम्प्रदाय में भी ब्रह्म जीव आदि दार्शनिक तत्त्वों का कोई तात्त्विक विवेचन उपलब्ध नहीं अतः सभी कृष्ण भक्तों के कृष्ण ही परब्रह्म हैं जो भक्तों को सुख प्रदान करने के हेतु कृपामय और सगुण साकार रूप धारण कर प्रत्यक्षा अवतरित होते हैं।

ब्रह्म की भांति जीव के विषय में भी मध्ययुगीन कृष्ण भक्त पुराणों की मान्यताओं से प्रभावित हैं। पुराणों के समान वे भी जीव को ब्रह्म का अंश स्वीकार करते हैं आचार्य निम्बार्क जीव और ईश्वर की भिन्नता और अभिन्नता दोनों के प्रतिपादक हैं। उनको सम्प्रति में जीव अवस्था भेद से ब्रह्म के साथ भिन्न भी है और अभिन्न भी। चैतन्य सम्प्रदाय में कृष्ण को परम तत्त्व माना गया है और जीव को उसकी शक्ति स्वीकार किया गया है। जीव शक्ति से कृष्ण अनेक आत्मारं उत्पन्न करते हैं। जैसे सूर्य से उसकी किरणें आविर्भूत होती हैं उसी प्रकार ब्रह्म से अनेक आत्मारं। उनके अनुसार जीव और जगत् ईश्वर के विशेषण नहीं अपितु उनकी शक्ति की अभिव्यक्तियां हैं अतः जीव भावान् से पृथक् और अणु परमाणु से युक्त है। जीव के सम्बन्ध में वल्लभाचार्य जी का मत है कि जब परब्रह्म की एक से अनेक होने की इच्छा हुई तो उसकी इच्छा मात्र से ही असंख्य जीवों की उत्पत्ति हुई। सच्चिदानन्द ब्रह्म के सत् अंश से जड़ प्रकृति, चित अंश से अनेकानेक जीव तथा आनन्दांश से उसके अन्तर्यामी रूप का अग्नि से स्फुलिंग की भांति आविर्भाव हुआ :

विस्फुलिंगा हवाग्नेस्तु संदशेन जडा अपि
आनन्दांश स्वरूपेण सवन्तियामिरूपिणः ॥

अतः कृष्ण भक्ति के लगभग सभी सम्प्रदाय जीव को ईश्वर का अंश स्वीकार करते हुए ईश्वर और जीव की अद्वैतता प्रतिपादित करते हैं। उनके अनुसार ईश्वर और जीव का भेद माया जनित है। यदि जीव को एकरस ज्ञान की उपलब्धि हो जाए और उसका मायाजनित आवरण दूर हो जाए तो ईश्वर और जीव में विभेद ही न रह जाए।

जीव के समान जगत् के विषय में भी हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों पर उपनिषदों और पुराणों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य में जगत् को परब्रह्म का भौतिक स्वरूप माना गया है। निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुसार परब्रह्म ही जगत् को निमित्त और उपादान कारण है। चैतन्य मतानुसार परब्रह्म अपनी तीन शक्तियाँ चित्, माया और जीव में माया शक्ति से जड़, जगत् को उत्पन्न करते हैं। जगत् वास्तव में ब्रह्म की शक्ति की अभिव्यक्ति है। वल्लभ सम्प्रदाय में भी ब्रह्म को ही इस जगत् का निमित्त और उपादान कारण माना गया है। परब्रह्म ने स्वेच्छा से अग्नि की चिनगारी के समान अपने चित् अंश से जीव की और सत् अंश से जड़ जगत् की उत्पत्ति की। वल्लभ मतानुसार जगत् और संसार में अन्तर स्वीकार किया गया है जगत् की उत्पत्ति सत्य तत्त्व अर्थात् ब्रह्म का अविकृत परिणाम है अतः वह भी सत्य है। किन्तु संसार की रचना जीव की अविद्या कल्पना तथा भ्रम से होती है। अतः वह मिथ्या है। जीव की शुद्धि से संसार का लय ही जाता है पर जगत् का तिरौभाव ईश्वरेच्छा पर निर्भर है इस प्रकार जगत् नित्य और संसार अनित्य है।

माया का वर्णन भी प्राचीन काल से होता आया है। शंकर ने वेदान्त सूत्रों पर लिखी आलोचना में माया को भ्रम कहा है परन्तु निम्बार्कचार्य ने ब्रह्म की तीन शक्तियाँ परास्था, जीवास्था तथा मायास्था में से माया को भी ब्रह्म की ही शक्ति स्वीकार किया है। चैतन्य सम्प्रदाय में भी माया को ब्रह्म की ही शक्ति माना गया है जिसके द्वारा भगवान् जड़ जगत् को उत्पन्न करते हैं। यूनं तो माया गतिहीन है परन्तु

परात्पर ब्रह्म के ईदण मात्र से वह गतिशील हो जाती है। आचार्य वल्लभ ने भगवान् की शक्ति स्वरूपा माया के भी विधा माया तथा अविधा माया दो रूप स्वीकार किए हैं। यह दोनों प्रकार की माया सृष्टि तथा संसार में प्रसारित है। इन्हीं के आधीन जीव है अविधा माया द्वारा जीव सांसारिक बन्धनों में जाबद्ध होकर भ्रमण करता रहता है और विधा माया द्वारा उसे अपने स्वरूप की चेतना आ जाती है तथा वह संसार से मुक्ति पाजाता है। अतः लगभग सभी कृष्ण भक्त अविधा माया को भ्रम जनित मानते हैं जिसका निवारण विधा अथवा ज्ञान द्वारा ही सम्भव है तथा ज्ञान की प्राप्ति प्रभु कृपा का ही प्रसाद है।

मोक्षा के विषय में भी उपनिषद् आदि ग्रंथों में पर्याप्त विवेचन मिलता है। मोक्षा दशा में जीव ब्रह्म से अभिन्न रहने पर भी अपने स्वरूप को पा लेता है, ऐसा उपनिषदों में कहा गया है। निम्बार्क मत में भगवत्सेवा तथा इष्टानुग्रह से प्राप्त मुक्ति को ही अभीप्सित कहा गया है। यहां पर ब्रह्म कृष्ण में ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों की ही प्रधानता है। चैतन्य सम्प्रदाय में मोक्षा का अर्थ है ईश्वर की प्रीति का निरन्तर अनुभव । प्रेम ही यहां मुक्ति है, भक्ति ही वास्तविक मोक्षा है और भगवान् की भक्ति की प्राप्ति ही जीव का चरम लक्ष्य है। वल्लभ मत में सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मोक्षा की चार अवस्थायें मानकर इनमें सायुज्य मुक्ति की सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है कारण इसमें भक्त रस रूप परमात्मा का अंगी भाव प्राप्त कर लेता है। अतः सभी कृष्ण भक्त कवियों के लिए भगवान् के सान्निध्य की इच्छा ही मोक्षा की सर्वोच्च अवस्था है। जो लगभग सभी भक्तों का चरम लक्ष्य है।

प्रबन्ध का पंचम अध्याय कृष्ण भक्त कवियों की प्रेम पद्धति से सम्बन्धित है। कृष्ण भक्त कवियों के प्रेम में मधुर या माधुर्य भाव की प्रेम का सर्वाच्च स्वरूप स्वीकार किया गया है और इस भाव से की गई भक्ति माधुर्य भाव की संज्ञा से अभिहित होती है। माधुर्य भाव की भक्ति के मूल उत्स का पता लगाने के लिए हमें भक्ति समन्वित सर्वप्राचीन ग्रंथ वेदों का अवगाहन करना आवश्यक हो जाता है। वस्तुतः आज की रसोपासना उसी वेद मयी उपासना का विकसित रूप है जिसे साधकों ने भक्ति की चरम स्थिति की अवस्था में अनुभव किया था। ऋग्वेद का प्रस्तुत मंत्र इसी माधुर्य और प्रेम की प्राचीनता की ओर संकेत करता है :

“ इमे हिते ब्रह्म कृतः सुते सचामधौ न मद्यं वासते ।

इन्द्रं कामं जरिताते वसूयवी रथे न पादमादधुः ” ॥

जिस प्रेम पद्धति का स्वरूप वेदों में उपलब्ध है, शनैः

शनैः उसका विकास उपनिषद् काल में हुआ। उपनिषदों में अनेक स्थानों पर ईश्वर के सच्चिदानन्द और प्रेम स्वरूप का वर्णन है। पुराणों में तो प्रेम का महत्वपूर्ण स्वरूप दिखाई देता है। भागवत पुराण इस दृष्टि से सर्वात्कृष्ट है। श्रीकृष्ण की पति रूप में आराधना करने का स्पष्ट संदेश भागवत में ही दिया है। पांचरात्र संहिताओं में प्रेम का जो स्वरूप दर्शाया गया है, इसमें ईश्वर के स्त्री रूप की अर्चना साधना का आवश्यक अंग मानी गई है। दक्षिण के आत्मार भक्तों के गीतों में प्रेम और शृंगार की ध्वनि गुंजित होती है इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्य युग में कृष्ण भक्तों से पूर्व भी माधुर्यमयी उपासना के बीज यत्र तत्र उपलब्ध होते हैं। पूर्ववर्ती वैष्णव सम्प्रदायों में निम्बार्क सम्प्रदाय का

स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। निम्बार्क में सखी रूप का महत्व वर्णित किया गया है। इस सम्प्रदाय में श्री कृष्ण के साथ श्री राधा की भी उपासना के क्षेत्र में उतनी ही प्रधानता दी गई है। राधा कृष्ण का विहार ही यहां भक्तों के साध्य प्रेम की प्राप्ति का एक मात्र उपाय है। निम्बार्क सम्प्रदाय की इस रसमयी उपासना का प्रभाव परवर्ती वैष्णवाचार्यों पर पड़ा। परिणाम स्वरूप वल्लभ, चैतन्य, राधावल्लभ तथा हरिदासी सम्प्रदाय की मधुर मन्दाकिनी ब्रज में प्रवाहित हो चली। वल्लभाचार्य जी ने भावद्गुह की प्राप्ति हेतु भक्त के हृदय में उत्कट प्रेम का होना आवश्यक माना है। इस प्रेम के उत्पन्न होने पर ही साधक ईश्वर के वियोग में दुःख अनुभव करेगा। फलस्वरूप उसकी प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील होगा। यही वल्लभाचार्य जी की शुद्ध पुष्टि है जो मधुर साधना का प्रतीक है। चैतन्य सम्प्रदाय की भक्ति में रस सिद्धान्त की सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है। इस विषय में रूप गोस्वामी जी का ग्रंथ भक्तिरसामृत सिन्धु भक्ति रस का सांगीपांग विवेचन प्रस्तुत करता है। उन्होंने उस अनिवर्त्तनीय राग विशेषण की भक्ति की संज्ञा प्रदान की है जिसे भक्त जन भवान् का भजन करते हुए उनके चरणों के माधुर्य द्वारा उपलब्ध करते हैं। कृष्णदास कविराज ने भी इस प्रकार की रागानुगा या मधुर भाव की भक्ति को सर्वश्रेष्ठ कहा है जिसके वश में स्वयं श्रीकृष्ण हैं :

परिपूर्ण कृष्ण प्राप्ति एह प्रेम हैते ।

एह प्रेमर वश कृष्ण कहै भागवते ॥ ११ ॥

और यह रागानुगा या मधुर भाव की भक्ति अष्टांगिक मार्गों से होकर महामाव की चरम अवस्था की प्राप्त कर लेती है। ये अष्टांगिक मार्ग क्रमशः इस प्रकार हैं : रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग तथा महामाव ।

इस महाभाव की साकारमूर्ति राधा है अर्थात् रसमयी उपासना का वे ही कारण हैं। कृष्ण के प्रति राधा का प्रेम अपूर्व है। कृष्ण भी इस प्रेम के वशीभूत हैं। यही कारण है कि राधा की प्रसन्नता को ही कृष्ण की प्रसन्नता मानकर चैतन्य सम्प्रदाय का भक्त उपासना क्षेत्र में अग्रसर होता है। प्रेम की तीव्रता प्रकट करने के लिए चैतन्य मत में परकीया भाव का समावेश किया गया है। वाचार्यों और भक्तों सभी का विश्वास है कि प्रेम की जितनी मर्मस्पर्शिणी अभिव्यक्ति परकीया भाव में हो सकती है उतनी स्वकीया में नहीं। इसी कारण इस सम्प्रदाय में परकीया भाव को "रसर उल्लास" कहा गया है।

राधावल्लभीय सम्प्रदाय में स्वीकृत प्रेम का स्वरूप अन्य कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों की अपेक्षा विचित्र तथा मोहक है इस सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण का प्रेम नित्य माना गया है। राधा और कृष्ण ही नहीं अपितु यहां नित्य विहार के सभी विधायक तत्त्व नित्य हैं जैसे ब्रज, सहचरी, आनन्द, विहार और शृंगार और ये विधायक तत्त्व राधा कृष्ण की विहार लीलाओं में सहायक रस रूप तथा प्रेम रूप हैं। नित्य विहार से व्यंजित प्रेम ही इस सम्प्रदाय में पूर्णता को प्राप्त माना जाता है। प्रेम की वही स्थिति यहां स्पृहणीय मानी जाती है जो विरह मिलन की संकीर्ण सीमाओं में बाध नहीं।

हरिदासी सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण का पारस्परिक प्रेम स्वकीया और परकीया भाव से परे नित्य विहारी भाव का स्वीकार किया गया है। इसका कारण इस सम्प्रदाय के अनुयायी भावतरसिक

जी ने बतलाया है कि स्वकीया और परकीया शब्द लौकिक प्रेम के सूचक हैं। राधा कृष्णका प्रेम यहाँ अलौकिक स्वीकार किया गया है। राधा कृष्ण भक्तों पर अपना प्रेम प्रकट करने के हेतु ही परस्पर लीला विहार में लगे रहते हैं अतएव मध्ययुगीन कृष्ण भक्तों की प्रेम पद्धति एक युग विशेष की देन नहीं बल्कि सदियों से चली आई है। वेद, उपनिषद्, तंत्र संहिता आदि में इसके बीज निहित हैं। यह बात दूसरी है कि वैष्णव भक्ति सम्प्रदायों पर आते आते इसका रूप स्पष्ट लक्षित होने लगा है।

सूफी मत के उदय और विकास उसकी प्रेम पद्धति एवं कृष्ण भक्ति के उद्भव और विकास और उसकी प्रेम पद्धति का अवलोकन करने के पश्चात् छठे अध्याय में हम हिन्दी सूफी कवियों उनकी रचनाओं एवं कृष्ण भक्त कवियों व उनकी रचनाओं पर दृष्टिपात करते हैं। भारत में सूफी साहित्य की परम्परा का प्रवर्तन मुसलमानों के आगमन के पश्चात् हुआ। इस साहित्य का प्रस्फुटन मुख्य रूप से तीन रूपों में हुआ। निबन्ध, जोवनी और काव्य। इनमें सूफी साहित्य का तृतीय अंग अर्थात् काव्य ही विशेष महत्वपूर्ण है। सूफी कवियों ने अपने काव्य द्वारा सूफी धर्म का प्रचार आरम्भ किया। कवि लोक प्रचलित प्रेम कहानियों को आधार बनाकर मसनवी शैली में प्रेम काव्यों की रचना करते थे और उन्हीं के माध्यम से जनता में सूफी सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। हिन्दी के इन सूफी कवियों की एक लम्बी परम्परा है। इसका प्रारम्भ मुल्ला दाऊद कृत "चन्दायन" मानी जाती है। "चन्दायन" की अगर प्रथम सूफी प्रमास्थान स्वीकार किया जाये तो ईस्वी सन् की चौदहवीं शताब्दी इस परम्परा का प्रारम्भ ही जाती है। चन्दायन

के बाद प्राप्त होने वाला दूसरा सूफी काव्य 'कुतुबन' (पन्द्रहवीं शताब्दी) का अन्तिम भाग और सोलहवीं शताब्दी का प्रथम भाग) कृत 'मृगावती' है जिसका रचना काल ६०६ हि० (वि० सं० १५६० अर्थात् सन् १५०३ ई०) है। 'चन्दायन और मृगावती' के मध्य लगभग दो सौ वर्षों का व्यवधान है। इस दीर्घ अवधि में किसी सूफी प्रेम काव्य की रचना न हुई हो ऐसा नहीं हो सकता परन्तु अभी तक उसका पता नहीं चल सका ।

कुतुबन कृत 'मिरगावती' के बाद सूफी काव्य परंपरा की तीसरी और सर्वाधिक महत्वपूर्ण कड़ी जायसी कृत 'पद्मावत' है। जायसी के जन्म के सम्बन्ध में निम्न अर्द्धाली है जो अस्पष्ट है और साथ ही रहस्यपूर्ण भी :

भा अवतार मौर नव सदी , तीस बरस ऊपर कवि बंदो । "

फिर भी उनकी जन्म सम्बन्धी मान्यताओं पर विचार करने पर उनका जन्म नवीं सदी ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है। जायसी की रचनाओं के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता । उनके कुछ-कुछ ग्रंथों में पद्मावत, अल-रावट, आखिरी क्लाम, चित्ररेखा, कहरनामा और मसलानामा प्रकाश में आए हैं।

जायसी के बाद सूफी कवियों में मंफन और काव्यों में पद्मावत के बाद मंफन कृत 'मधुमालती' ही श्रेष्ठ रचना मानी जाती है। मधुमालती की रचना सन् ६५२ हि० (सन् १५४५ ई०) में हुई । मधु मालती में प्रेम की व्यापक और गूढ़ भावना तथा मर्मस्पर्शी भाव व्यंजना का निदर्शन है।

सूफी काव्य में उसमान की चित्रावली भी कम महत्वपूर्ण नहीं । चित्रावली का रचना काल कवि ने स्वयं वर्णित किया । शाह वक्त की प्रशंसा के अन्तर्गत उसमान ने जहांगीर की प्रशंसा की है। इससे सुगमतापूर्वक अनुमान लगाया जा सकता है कि जहांगीर के समय में ही कवि का स्थिति काल है। जहांगीर का शासन काल सं० १६६२ से १६८४ था । उसमान का समय भी यही माना जा सकता है कवि ने सन् १०२२ हि० (सन् १६१३ ई०) में चित्रावली की रचना की । उन्होंने स्वयं इस विषय में कहा है :

‘ सन् सहस्त्र बाईस जब महे, तब हम बचन चारि एक कहै ।

उसमान के पश्चात् न्यामत सां ‘जान’ (जन्म काल विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध अथवा उससे कुछ पहले (मृत्यु-काल अठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध) का नाम लिया जाता है। इनके लगभग ६० ग्रंथ उपलब्ध हैं जो हिन्दुस्तानी एकेडेमी संग्रहालय में सुरक्षित हैं। जिनमें से २६ ग्रंथों को गणना प्रेम काव्यों के अन्तर्गत हो सकती है। यद्यपि सभी प्रमास्थान सूफी परम्परा में नहीं आते । सूफी परम्परा में आने वाले प्रेम काव्यों में कथा रत्नावली, कथा कनकावली, कथा कलावती, कथा रूप मंजरी आदि प्रसिद्ध हैं।

इसके बाद सूफी कवियों में शैख नबी और काव्यों में ज्ञान दीप का नाम आता है। इस ग्रंथ का निर्माण सन् १०२६ हि० अर्थात् संवत् १६७६ विक्रमी में हुआ । अतः यह प्रमाणित होता है कि शैख नबी जहांगीर बादशाह के समकालीन थे । इन सूफी प्रमास्थानों के अतिरिक्त

कासिम शाह का "हंस जवाहिर" रचनाकाल हि० सं० ११४६ अर्थात् सन् १७६३ ई०) नूर मुहम्मद कृत "इन्द्रावली" और अनुराग बांसुरी (रचनाकाल क्रमशः हि० सं० ११५७ अर्थात् सन् १७४४ ई० तथा ११७८ ई०) तथा हुसैन अली की "पुहुपावती" आदि प्रसिद्ध हैं।

सूफ़ी कवियों और उनकी रचनाओं के बाद कृष्ण भक्त कवियों और उनकी रचनाओं पर दृष्टिपात करते हैं। यों तो सूर ही ब्रज भाषा के प्रथम कृष्ण भक्त स्वीकार किये गये हैं पर उनसे पूर्व निम्बार्क सम्प्रदाय में भी ब्रज भाषा में काव्य रचना प्रारम्भ की गई थी। इस सम्प्रदाय के भक्तों में श्री मट्ट जी ने युगलशतक, हरिव्यास जी ने "महावाणी" श्री परशुराम देव जी ने परशुराम सागर आनन्दघन जी ने "वृष्णभानुपुरसुष्णमा तथा रसिक गोविन्द जी ने अष्टदेश भाषा, पिंगल ग्रंथ, समय प्रबन्ध, रसिक गोविन्द, रामायणसूचनिका", कलिजुगरासी, युगलरसमाधुरी आदि ग्रंथों का प्रणयन किया।

बल्लभ सम्प्रदाय के कवि और काव्यों में सूर का नाम महत्वपूर्ण है। अनेक प्रमाणों के आधार पर इनकी जन्म तिथि संवत् १५३५ की वैशाख सुदी पंचमी मंगलवार मानी जाती है। अनेक सूचनाओं के आधार पर सूर की मुख्य कृतियां निम्न हैं : सूर सागर, सूर सारावली, साहित्य लहरी, दशम स्कन्ध भाषा, गोवर्धन लीला, सूर पचीसी आदि। इनमें सूर सागर विशेष महत्वपूर्ण है।

परमानन्द दास जी के प्राप्त ६३० पदों का विभाजन डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल ने चार शीर्षकों में किया है :

- १- वर्णात्सव के पद
- २- नित्य सेवा के पद
- ३- दीनता , विनय माहात्म्य आदि के पद
- ४- परिशिष्ट

परमानन्द सागर के पदों का यह वर्गीकरण पुष्टि सम्प्रदाय की सेवा पद्धति के अनुरूप हुआ है। परमानन्द सागर के लीला विषयक पदों और श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के वर्ण्य विषय में बहुत अंशों तक साम्य है। इसी प्रकार कृष्ण दास, कुम्भनदास, ह्रीत स्वामी, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास के पदों के संग्रह उपलब्ध हैं। नन्ददास जी की अवश्य ही कुछ रचनाएं ब्रकाश में आई हैं जैसे रास पंचाध्यायी, रूप मंजरी, रस मंजरी, अनेकार्थ मंजरी, विरह मंजरी, नाम मंजरी या नाम माला, दशम स्कन्ध भागवत, स्याम सगाई, सुदामा चरित आदि ।

अष्टकूप सम्प्रदाय के कृष्ण भक्त कवि और उनके काव्यों के पश्चात् चैतन्य सम्प्रदाय के प्रमुख भक्त कवियों और उनकी कृतियों को ग्रहण करते हैं। चैतन्य महाप्रभु का समय सोलहवीं शती माना जाता है। उन्होंने चाहे स्वयं किसी ग्रंथ विशेष की रचना न की हो परन्तु इनके कारण कृष्ण भक्ति काव्य में प्रचुर साहित्य का निर्माण हुआ । यह साहित्य कई प्रकार का है। चैतन्य के सहकारी और भक्तों में अन्य भक्त कवि हुए जिनमें नित्यानन्द अद्वैत प्रभु, हरिदास जी श्रीवासपंडित, नरहरि सरकार, गदाधर पट्ट, स्वरूप दामोदर, राय रामानन्द और लोकनाथ चक्रवर्ती आदि प्रमुख हैं।

हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य की प्रेरणा और प्रोत्साहन प्रदान करने वाले सम्प्रदायों में राधावल्लभ सम्प्रदाय अन्यतम है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हितहरिवंश थे। हित हरिवंश जी द्वारा रचित अनेक रचनाएं हैं जिनमें राधा सुधा निधि, हित चौरासी, यमुनाष्टक, स्फुटवाणी आदि प्रमुख हैं। हरिवंश जी के बाद श्री सेवक जी और श्री हरिराम व्यास जी का नाम आता है। श्री चतुर्भुजदास तथा 'ध्रुवदास' जी भी राधावल्लभ सम्प्रदाय के भक्त कवियों में अन्यतम रहे। चतुर्भुज दास जी ने द्वादस यश नामक ग्रंथ का प्रतिपादन किया जिसमें बारह पृथक् पृथक् यशों का वर्णन है। ध्रुवदास जी ने ब्यालीस ग्रंथों का निर्माण किया जो कि ब्यालीस लीला नाम से व्यवहृत होते हैं।

उपर्युक्त कृष्ण भक्तों के अतिरिक्त राधावल्लभ सम्प्रदाय में श्री नेहरी नागरीदास, श्री वृन्दावन दास, श्रीकल्याण पुजारी, रसिकदास आदि ने भी प्रेम भक्ति का प्रतिपादन करके सम्प्रदाय में महत्वपूर्ण योग दिया है। सभी सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी थे जिन्होंने अन्य भक्तों के समान ही पद रचना की। ये पद उन्होंने कवित्व प्रदर्शन के लिए नहीं अपितु हृदयोद्गारों के प्रकटीकरण के हेतु लिखे। इनके अतिरिक्त टिठल विपुल, विहारिनदास, नागरीदास, सरसदास, नवलदास, कृष्णदास, नरहरिदास आदि भी सभी सम्प्रदाय के कृष्ण भक्तों में प्रमुख रहे। इनमें अधिकतर भक्तों के भक्ति विषयक पद संग्रह उपलब्ध हैं।

सम्प्रदायबद्ध कवियों के अतिरिक्त कुछ सम्प्रदाय कृष्ण भक्त कृष्ण भक्त कवियों ने भी काव्य रचना की इनमें रसखान व मीरा प्रमुख हैं। रसखान द्वारा रचित दो छोटी पुस्तकें 'प्रेमबाटिका' और 'सुजानरसखान'

उपलब्ध होती है। मीराबाई की बहुत सी रचनाओं का पता चला है जो प्रकाश में नहीं आई है। उनके छोटे मोटे संग्रह बाजार पुस्तकों के रूप में उपलब्ध होते हैं।

प्रबन्ध का सप्तम अध्याय सूफी कवियों और कृष्ण भक्तों की प्रेम पद्धति के साम्य से सम्बन्धित है। सूफी कवियों एवं कृष्ण भक्तों की प्रेम पद्धति में भावात्मक एकता दृष्टिगत होती है। लौकिक प्रेम की अलौकिक प्रेम में परिणति पर दोनों सम्प्रदायों ने बल दिया है। ज्ञात के माध्यम से ही अज्ञात की कल्पना सम्भव है। लौकिक प्रेम उपेक्षाणीय नहीं है अपितु लौकिकता, सांसारिकता और मायिकता उपेक्षा के योग्य है तभी तो सूफियों ने इश्कमजाजी की इश्कहककीकी का प्रथम सीपान स्वीकार किया है। महाकवि जायसी ने अपने "पद्मावत" में पद्मावती के अनन्त सौंदर्य का वर्णन किया है :

“ नैन जो देखा कवल भा, निरमल नीर सरीर ।

हंसत जो देखा हंस भा, ज्योति दसन नगहीर ॥ ”

प्रेम के स्वरूप के व्यञ्जीकरण के हेतु ही सूफियों ने परम सत्ता को कण कण में व्याप्त दिखाया है। जीव जो ससीम है और न्यूनत्व से युक्त है उस असीम और पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त करना चाहता है जिसका वह बिन्दुमात्र है अतः व्यक्ति विशेष के प्रेम में पड़कर ही सूफी परम प्रेम का अनुभव तथा हुस्न परस्ती में अल्लाह के जमाल का साक्षात्कार करते हैं। इस साक्षात्कार के हेतु ही वे स्त्री की अपने प्रेम का प्रतीक स्वीकार करते हैं तभी तो सूफी प्रेम कथाओं में नायक नायिका के सौंदर्य पर

मुग्ध होकर मिलन के लिए व्याकुल हो जाता है और फिर लक्ष्य प्राप्ति हेतु सर्वस्व त्यागकर कठिनतम बाधाओं को सहर्ष सहन करने के लिए तत्पर हो जाता है। यह सौंदर्य ही साधक की साधना की ओर प्रेरित करता है और अन्त में इसी सौंदर्य की साधना उसे परमेश्वर में अवस्थित कर देती है।

सहजिया सम्प्रदाय वाले वैष्णवों की धारणा भी कुछ इसी प्रकार की है। वे अलौकिक प्रेम प्राप्ति हेतु परकीया भाव आवश्यक मानते हैं। यद्यपि वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियों ने स्वकीया के आदर्श को स्वीकार किया है, परन्तु व्यावहारिक क्षेत्र में वे भी बंगीय वैष्णव शाखा से प्रभावित जान पड़ते हैं। वेणु का स्वर सुनते ही गोपियों की वृत्ति जो संसार में रमण कर रही थी। आध्यात्मिकता की ओर लग गई। गोपियों का कृष्ण के समीप जाना अध्यात्म के क्षेत्र में जीवात्मा का परमात्मा की ओर उन्मुख होना है। रास लीला लौकिक पदा में यों तो प्रेमी और प्रेमिका का मिलन ही है परन्तु अलौकिक पदा में श्रीकृष्ण परमात्मा हैं और राधा तथा गोपियां अनेक जीवात्माएं। वृन्दावन सहस्र दल कमल है जहां आत्मा और परमात्मा का मिलन होता है। मुरली को भी आध्यात्मिक क्षेत्र में परब्रह्म का शब्द रूप माना है। रासलीला के सदृश ही माखनचोरी, चीर हरण, दान लीला को भी भागवतकार ने आध्यात्मिक रूपक प्रदान किया है। इस प्रकार वैष्णव भक्त कवियों ने भी लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना की है। पर सूफी कवियों और कृष्ण भक्तों की प्रेम पद्धति में यहां कुछ वैषम्य है। सूफियों ने जहां अलौकिक प्रेम प्राप्ति हेतु लौकिक पात्रों को चुना है, वहां कृष्ण भक्तों ने अपने पात्रों की अलौकिकता प्रदान की है।

सूफी तथा कृष्ण भक्त दोनों ही प्रेम के समदा

धार्मिक कर्मकाण्डों को व्यर्थ मानते हैं। सूफी हृदय की शुद्धि या कल्ब के परिमार्जन को महत्वपूर्ण मानते हैं। सारे कर्मकाण्ड, कर्तव्य, भावना या बुद्धि विलास का परित्याग कर वे हृदय में निरन्तर प्रियतम का ही ध्यान किया करते हैं। भक्ता, मदीने जाना, हज्ज करना और नमाज़ पढ़ना आदि समस्त कर्मकाण्ड व्यर्थ हैं, यदि हृदय शुद्ध नहीं है। सूफियों के अनुसार हृदय में प्रेम उत्पन्न हो जाने पर संसार का समस्त ज्ञान कुछ ही जाता है यहां तक कि वेद पुराणों का ज्ञान और कर्मकाण्ड सभी कुछ ह्य प्रतीत होते हैं। सूफी साधक जिह्र, फ़िह्र, नमाज़, समा, जियास्त, हज्ज, ज़कात, सोम, रोज़ा, क़राद, तिल्लवत आदि साधनों को महत्व अवश्य देते हैं परन्तु वहीं तक जहां तक ये साधन प्रिय प्राप्ति में बाधक नहीं। सूफियों की भांति वैष्णव भक्त कवि भी प्रेम में बाह्य विधि विधानों और कर्मकाण्डों को आवश्यक नहीं मानते। उनके निकट प्रेम ही सबसे बड़ा योग और तप है। समस्त चेतना का कृष्ण मय हो जाना ही वहां सच्चा ज्ञान है। लोक मयादि की दृष्टि से इस प्रकार का प्रेम निन्दनीय समझा जाता है परन्तु लगभग सभी वैष्णव भक्त कवियों ने इस प्रकार के भाव भरित प्रेम को महत्व प्रदान किया है। विधि निषेध के भावों की उपेक्षा कर वे इस पार्थिव संसार से ऊंचे उठ गये हैं। यही कारण है परिवार, समाज और शास्त्र के नियम भी यदि प्रेम पंथ में बाधक हों तो उनका उल्लंघन भी पाप नहीं बतलाया।

सूफियों और कृष्ण भक्तों दोनों के प्रेम में तीव्रता पाई जाती है। प्रेम की तीव्रता को स्थाई रखने के लिए सूफी मिलन से अधिक विरह को महत्व देते हैं। सच्चा प्रेम एक बार उत्पन्न होकर निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता है। रत्नसेन पद्मावती को प्राप्त करने के लिए गृह

त्याग कर देता है। मार्ग में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है पर वे बाधाएं उसके गन्तव्य से विचलित नहीं करतीं अपितु उसके प्रेम और पद्मावती को पाने की आकांक्षा को तीव्रतर कर देती है। सूफियों के समान वैष्णव भक्तों ने प्रेम में भी तीव्रता पाई जाती है। उन्होंने प्रेम की तीव्रता को बनाये रखने के लिए स्वकीया के साथ परकीया के प्रेम के आदर्श को भी सम्मिलित किया है। चैतन्यमतानुयायी परकीया प्रेम को ही अपने काव्य में स्थान देते हैं। "चैतन्य चरितामृत" में परकीया भाव को "रसैरउल्लास" कहा गया है।

सूफी साधक और कृष्ण भक्त दोनों ही प्रेम की एकनिष्ठता में विश्वास करते हैं। सूफी साधकों का विश्वास है कि अनन्य और एकनिष्ठ भाव से प्रिय का ध्यान करने पर ही प्रेम में गम्भीरता का आगमन सम्भव है। सूफी प्रेमास्थानों का मुख्य संदेश ही मानव को एकनिष्ठ और दृढ़ बनाना है। प्रेम की अनन्यता को प्रदर्शित करने के लिए ही सूफियों ने जल और मीन, स्वाति नद्यात्र की बूंद और चातक, कमल एवं भ्रमर, दीप और शलभ को ग्रहण किया है। निम्बार्क, चैतन्य, राधावल्लभ एवं बल्लभ सम्प्रदायों में भी इन उपमानों को ग्रहण किया गया है। वहां गोपियों में प्रेम की जी अनन्यता द्रष्टव्य है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रेम में विरह का होना सूफियों और कृष्ण भक्तों दोनों ने ही आवश्यक माना है। सूफियों ने प्रेम की पोर को जाग्रत रखने के लिए ही प्रिय के वियोग में जलना, कल्पना, बिसूरना और निराश होना आवश्यक माना है। कृष्ण भक्तों ने उसी प्रेम की वास्तविक माना है, जी

प्रिय से वियुक्त होने पर भी स्थायी रहे । सूफियों और कृष्ण भक्त दोनों ने ही विरह की लगभग सभी अन्तर्दशाओं का चित्रण अपने काव्य में किया है।

रहस्यवाद हृदय की वह दिव्य अनुभूति है जिसके भावा-
वेश में प्राणी ससीम और पार्थिव अस्तित्व से उस असीम और अपार्थिव महा-
अस्तित्व के साथ एकात्मा का अनुभव करने लगता है। सूफियों ने भावात्मक
रहस्यवाद को अपने काव्य में स्थान दिया है। जात में जन्म से लेकर ही जीवात्मा
परमात्मा से वियुक्त होगई, उससे पूर्व दोनों में अन्ध था । उस परमसत्ता का
सौंदर्य समस्त जात की सुन्दर वस्तुओं में आभासित होता है। सूफी कवियों
ने इस सौंदर्य की बड़ी भावपूर्ण भांकी संजोई है। सूफी कवियों के समान
कृष्ण भक्तों ने भी रहस्यवादी प्रणयमूला भक्ति को अपने काव्य में स्थान
दिया है। शब्द की जिस व्यंजना शक्ति को सूफी काम में लेते हैं वही शक्ति
कृष्ण भक्त कवियों में भी द्रष्टव्य है। यों तो कृष्ण भक्त कवि रहस्यवादी
नहीं कहे जा सकते फिर भी रहस्यात्मकता के विवेचन में वे सूफी कवियों
के साथ स्वर मिला देते हैं।

सूफियों और कृष्ण भक्तों में भावनात्मक साम्य
होने पर भी दोनों की प्रेम पद्धति के स्रोत पृथक् रहे । इसी पृथक्ता के आधार
पर दोनों में वैषम्य दृष्टिगत होता है और प्रबन्ध का अष्टम अध्याय इसी
वैषम्य से सम्बन्धित है। कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी प्रेम पद्धति के लिए श्री
मद्भागवत का अनुसरण किया है जबकि सूफियों ने फारसी मसनवियों की
अपनी प्रेम पद्धति का आधार बनाया है। फारसी में लैला मजनूं, शीरी फर-
हाद, तथा युसूफ जुलैखा को लेकर अनेक मसनवियों की सृष्टि हुई जिन्हें फारसी

प्रेमास्थानों की संज्ञा से अभिहित किया गया । मसनवियाँ साधारण रूप से सर्ग बढ़ जाती हैं। प्रथम सर्ग में ईश्वर का गुणानुवाद रहता है। द्वितीय में पैगम्बर की स्मरण किया जाता है तृतीय में पैगम्बर के भराज की चर्चा रहती है। उसके बाद वाले सर्ग में सुलतान या किसी महान् व्यक्तिकी प्रशंसा रहती है। इसके बाद एक ऐसा सर्ग होता है जिसमें साधारणतः कवि यह वर्णन करता है कि अमुक उद्देश्य से या अमुक मित्र की प्रेरणा प्राप्त कर उसने इस ग्रंथ का प्रणयन किया । इसके पश्चात् ही मूल काव्य ग्रंथ का प्रारम्भ होता है। काव्य-ग्रंथ के विभाग या सण्ड होते हैं जो मूलतः सर्गबद्ध होते हैं। प्रत्येक सर्ग के ऊपर उस सर्ग में वर्णित विषय संकेत रूप में रहता है। अन्त में कवि उपसंहार से ग्रंथ को समाप्त करता है। लोक कथाओं के माध्यम से क्लासिक प्रेम भावना की अभिव्यक्ति ही इन मसनवियों की विशेषता है। फारसी मसनवियों की उपर्युक्त लगभग सभी विशेषताएँ हिन्दी सूफी प्रेमास्थानों में उपलब्ध होती हैं। सूफियों की प्रेम गाथाएँ फारसी मसनवियों के समान या तो लोक प्रचलित कहानियों का रूप है या काल्पनिक हैं। इन लोक प्रचलित या काल्पनिक प्रेम कथाओं की सर्जना कर सूफियों ने गहरे प्रेम के माध्यम से ईश्वर के प्रति अपने गहरे और एकान्त प्रेम की अभिव्यक्ति की । कृष्ण भक्तों ने अपनी पद्धति के निर्माण हेतु पृथक् ही मार्ग की खोज की । उन्होंने सदियों से चली आती हुई परम्परा का अनुवर्तन किया । जिस माधुर्यमयी उपासना के अवलम्ब से उन्होंने अपने इष्टदेव कृष्ण को प्रसन्न किया वह उनकी दृष्टि में यों तो वेदों का सार स्वरूप ही थी परन्तु पुराण काल तक आते आते उसका विस्तार हो गया था और श्रीमद्भागवत में तो कृष्ण के ऐश्वर्य और माधुर्य रूपों का अद्भुत मिश्रण दृष्टिगत होता है। भागवत में वर्णित कृष्ण और गोपियों का प्रेम उच्च कोटि का है। कृष्ण प्रेम प्राप्त करने के लिए गोपियों ने अपना

सर्वस्व कृष्ण चरणों में अर्पित कर दिया एवं दुर्जर गृह बन्धनों की अवहेलना कर उन्होंने कृष्ण भक्ति या कृष्ण प्रेम प्राप्ति की ही अपना एक मात्र लक्ष्य बनाया । कृष्ण भी उस प्रेम बन्धन के बंधन की बाध्य होगये । प्रेम का यही उत्कट स्वरूप मध्ययुगीन कृष्ण भक्त कवियों में भी द्रष्टव्य है। अनेक कृष्ण भक्त कवियों ने भागवत के आधार पर अपने ग्रंथों का नामकरण भी किया है। निम्बार्क मत के आरदाण में शुक्देवाचार्य जी ने "सिद्धान्त प्रदीप" में सम्पूर्ण भागवत का विवेचन प्रस्तुत किया । चैतन्य मत के आचार्य सनातन गोस्वामी जी ने "वृहद् वैष्णव तापिनी" में भागवत के दशम स्कन्ध की वाध्यात्मिक टीकाएं प्रस्तुत कीं । तथा जीव गोस्वामी जी ने सम्पूर्ण भागवत की वाध्यात्मिक व्याख्या की और उसके अभिव्यक्तीकरण हेतु षट् सन्दर्भ हेतु नामक ६ सन्दर्भों की पृथक् से रचना की । आत्मार सन्तों के पदों में भी हमें गोपी कृष्ण की लीलाओं का आभास मिल जाता है परन्तु कृष्ण भक्तों की प्रेम पद्धति की आड़वार सन्तों की देन मानना नितान्त प्रेमपूर्ण होगा । वास्तव में गोपी कृष्ण लीलाओं की पूर्ण प्रतिष्ठा श्रीमद्भागवत में ही चुकी थी और मध्ययुगीन कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी प्रेम पद्धति में इन्हीं लीलाओं को अपनाया है। अतः सूफियों और कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी प्रेम पद्धति के लिए जिन परम्पराओं की ग्रहण किया है उनमें बहुत बड़ा अन्तर है एक फारसी मसनवियों का आधार लिए प्रमास्थानों की परंपरा है और दूसरी श्रीमद्भागवत की प्रेम लक्षणा भक्ति की परम्परा ।

परम्परा के वैभिन्न्य के साथ साथ सूफियों तथा कृष्ण भक्तों द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों, उपमानों एवं अप्रस्तुत योजना आदि में भी अन्तर पाया जाता है। सूफियों ने प्रतीकों का आश्रय अधिक ग्रहण

किया है कारण उनके प्रेमास्थान अधिकतर काल्पनिक हैं, यों भी अपनी प्रेम कथाओं के व्यापक प्रचार तथा अभिव्यक्ति के लिए तथा निराकार ब्रह्म को पाठक के समक्ष सरल तथा सुलभ रूप में प्रस्तुत करने के हेतु सूफियों ने प्रतीक व उपमानों की पर्याप्त योजना की है। जायसी का तो सम्पूर्ण पद्मावत ही प्रतीक रूप में है। सूफी कवियों द्वारा प्रयुक्त अधिकांश उपमान तो रुढ़िगत हैं एवं कुछ उपमानों पर फारसी प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। प्राचीन उपमानों के नवीन प्रयोग सूफी कवियों की कल्पना की उत्कृष्टता एवं सूक्ष्मता के परिचायक हैं परन्तु कृष्ण भक्त कवियों ने अधिकतर परम्परागत प्रतीकों और उपमानों को ग्रहण किया है। उनके उपमान अधिकतर संस्कृत आचार्यों द्वारा निर्धारित पद्धति पर आधारित हैं। किसी २ स्थल पर इन परम्परागत उपमानों में नूतनता और सजीवता का संचार अवश्य ही कर दिया है।

सूफी कवियों तथा कृष्ण भक्त कवियों की वर्णन पद्धति में भी अन्तर है और यह अन्तर परम्पराजन्य है। सूफी कवि जहाँ अपनी वर्णन पद्धति के लिए फारसी मसनवियों के कृणी हैं वहाँ कृष्ण भक्त कवियों ने भागवत आदि पुराणों को अपनी वर्णन पद्धति का आधार बनाया है।

सूफी प्रेमास्थानों की वर्णन पद्धति का मुख्य आधार प्रेम है, फारसी मसनवियों के समान वह वर्णनात्मक अधिक है एवं उन्हीं के समान काल्पनिक भी। परन्तु कृष्ण भक्त कवियों ने भागवतादि पौराणिक ग्रंथों के आधार पर अपने वर्णन प्रस्तुत किए हैं। अतः उनकी वर्णन पद्धति भी

उन्हीं ग्रंथों से प्रभावित है । फलतः उसमें न तो नूतन प्रतिपाद्य के आविष्कारक का स्थान है और न कल्पना का अधिक समन्वय । उसमें तो लौकिक अनुभूतियों के सहारे अपार्थिव जालम्बन का पार्थिवीकरण कल्पना के आश्रय से किया गया है। जबकि सूफी कवियों ने अपनी वर्णन पद्धति में स्वानुभूतियों को ज्ञात अपार्थिव के प्रति ज्ञात पार्थिव का आश्रय लेकर व्यक्त किया गया है।

सूफी कवियों और कृष्ण भक्त कवियों के काव्य रूपों में भी अन्तर है। सूफी कवियों की रचनाएं मसनवी शैली पर आधारित प्रबन्ध काव्य या खण्डकाव्य के रूप में प्राप्त होती हैं। परन्तु कृष्ण भक्त कवियों की अन्तर्भूतियों का निरूपण गीति काव्य के रूप में अधिक हुआ है। वात्माभिव्यक्ति गीतों के रूप में जितने सहज ढंग से हो सकती है उतनी अन्य ढंग से नहीं । अतः कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं के लिए गेय पद शैली को उपयुक्त माना । उन्होंने व्यक्तिगत रूप से अपने दृष्ट की आराधना की । प्रबन्धकार की दृष्टि व्यक्तिपरक न होकर समाजपरक होती है। वहां तो कथा चरित्र-चित्रण, भाव-व्यंजना आदि सभी का विशाल रूप होता है। सूफी कवियों की रचनाओं में प्रबन्ध काव्य के उपयुक्त यह समाजपरक भावना भली भांति दिखाई देती है जबकि कृष्ण काव्य का चरम विकास गीति पदों में हुआ । इन गीति पदों में अनुभूति की तीव्रता , तन्मयता तथा वात्मा की वह प्रभावमयी आवाज है जो सीधी हृदय को बध्ती है।

सूफी कवियों की रचनाओं के पात्र अधिकतर काल्पनिक हैं, जबकि कृष्ण भक्त कवियों में पौराणिक पात्रों के माध्यम से प्रेमा-

अभिव्यक्ति की। ऐतिहासिक कथानकों से सम्बन्धित प्रेम कथाओं में भी सूफी कवियों ने ऐतिहासिक कथानकों से सम्बन्धित पात्रों के साथ साथ काल्पनिक पात्रों की भी अवतारणा की है जैसे जायसी कृत पद्मावत में। इन्होंने काल्पनिक प्रेम कथाओं में काल्पनिक पात्रों की योजना अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए की है और इसके लिए उन्हें पौराणिक या ऐतिहासिक पात्रों का चयन नहीं जंचा और न उन्होंने इसकी आवश्यकता ही समझी परन्तु कृष्ण भक्त कवियों ने जहाँ अपने प्रेम की अभिव्यक्ति हेतु पौराणिक आस्थानों को चुना वहाँ पौराणिक पात्रों को ही उनके कथानकों के उपयुक्त समझा। उनके कृष्ण और गोपियां भागवतादि पुराणों के कृष्ण और गोपियां हैं। केवल अन्तर इतना है कि भागवतकार ने जहाँ कृष्ण के परम पुरुषत्व को सिद्ध करने के उद्देश्य से कृष्ण और गोपियों का चित्रण किया है वहाँ कृष्ण भक्तों ने केवल विलक्षण ढंग से उसकी व्यंजना की है।

सूफी कवियों और कृष्ण भक्त कवियों के दार्शनिक सिद्धान्तों में भी भेद है। वैसे तो सूफी कवि भी ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप के साथ साथ सगुण स्वरूप की भी स्वीकार करते हैं परन्तु वे कृष्ण भक्त कवियों के समान न तो उसे अवतार मानते हैं और न उसके रूप की ही चर्चा करते हैं। डा० गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार सूफियों का ब्रह्म निर्गुण होते हुए भी साधक के मनःदीप्त में सगुण हो जाता है। परन्तु उसे सगुण भक्तों के ब्रह्म की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता क्योंकि न तो वह उनके समान अवतार धारण करता है और न मानवीय गुणों से युक्त है। ब्रह्म के समान ही सूफी एवं कृष्ण भक्तों के जीव, ज्ञातृ, माया और मोक्ष सम्बन्धी सिद्धान्तों में

भी साम्य नहीं। सूफी अपने सिद्धान्त निरूपण के लिए कुरान की मान्यताओं से प्रभावित हैं। भारतीय अद्वैतवाद का भी उन पर प्रभाव पड़ा है पर अधिक नहीं। परमतत्त्व की कल्पना की इस्लाम के एकेश्वरवाद से प्रारम्भ करके अद्वैतवाद तक पहुँचाने की चेष्टा उन्होंने की है पर इस सम्मेलन में वे अधिक सफल नहीं हुए। उन पर कुरान के एकदेव वाद का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। अधिकांश सूफी कवि ईश्वर और जगत् का सम्बन्ध बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से स्वीकार करते हैं। बिम्ब ब्रह्म है और यह नाना रूपात्मक दृश्य जगत् उसका प्रतिबिम्ब। इस प्रतिबिम्ब पर दृष्टिपात करके ही साधक के हृदय में बिम्ब की और अंतर होने की लालसा उत्पन्न होती है और तभी सूफी कवि इश्क मजाजी के माध्यम से इश्क हकीकी की ओर कदम बढ़ाने का साहस कर उठता है। कृष्ण भक्ति के लगभग सभी सम्प्रदाय जगत् को पूर्ण ब्रह्म अंश का एक अंश स्वीकार करते हैं। ब्रह्म नित्य है और उसका अंश रूप जगत् और जीव भी नित्य है पर सूफी कवि ब्रह्म को नित्य स्वीकार करके भी जगत् और जीव को अनित्य मानते हैं।

माया की चर्चा जहाँ भी सूफी कवियों ने की है वहाँ इन्द्रियगत विषय भोगों के वाक्यांश और उसके दुष्प्रभाव का ही वर्णन अधिक है। माया का कोई सत्स्वरूप उन्हें मान्य नहीं। कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों में यों तो माया का उल्लेख ही नहीं है परन्तु जहाँ कहीं भी उसका वर्णन है दो रूपों में हुआ है। वल्लभ मत में माया के विषय और अविषय दो भेद माने गये हैं। मोक्ष के लिए सूफियों ने सिद्धान्त रूप से इस्लाम के फ़ना और बका शब्दों का तो प्रयोग नहीं किया पर आत्मा और परमात्मा के एकत्व की भावना उन्हें मान्य है। कृष्ण भक्त कवि विदेह मुक्ति की अवस्था को श्रेष्ठ मानते हैं, चार प्रकार की मुक्तियों में वे होयुज्य मुक्ति को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं क्योंकि इसी मुक्ति के द्वारा ब्रह्म और जीव एक भावापन्न हो सकता है।

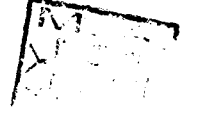
वतः सूफियों और कृष्ण भक्तों की प्रेम पद्धति
में भावनात्मक साध्य होने पर भी परम्परागत वैमिथ्य विद्यमान है।

सूफ़ी एवं कृष्ण भक्त-कवियों की प्रेम-पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन

[१५ से १७वीं शती तक]

(अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय को पी-एच०डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध)

१९६८



निर्देशक

प्रोफेसर डा० हरवंशलाल शर्मा

एम०ए०, पी एच०डी०, डी०लिट्

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़

प्रस्तुतकर्त्री

सुशीला देवी त्रिवेदी

एम०ए० (हिन्दी-संस्कृत)



T826

T826



4.12.200

CHECKED 1466-97

विशयानुक्रमिका

भूमिका

प्रथम अध्याय

पृष्ठ सं०

वालीच्यकालीन परिस्थितियां

१ — ३२

- (क) राजनीतिक परिस्थितियां,
- (ख) सामाजिक परिस्थितियां,
- (ग) धार्मिक परिस्थितियां,
- (घ) साहित्यिक परिस्थितियां

द्वितीय अध्याय

सूफीमत का आविर्भाव और विकास

३३ — ८०

- (क) 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति,
- (ख) सूफी मत का आविर्भाव,
- (ग) सूफी मत का विकास
 - (अ) अरब में सूफी मत
 - (आ) ईरान में सूफी मत
 - (इ) भारतवर्ष में सूफी मत
- (घ) भारत में सूफी सम्प्रदाय
 - (अ) चिश्तिया सम्प्रदाय
 - (आ) सुहरावदी सम्प्रदाय
 - (इ) कादिरि सम्प्रदाय
 - (ई) नक्शबन्दी सम्प्रदाय

(ड०) सूक्तियों के सामान्य सिद्धान्त

(अ) ईश्वर

(आ) जीव

(इ) जात

(ई) माया

(च) सूक्ति साधना

(अ) शरीयत (कर्मकाण्ड)

(आ) तरीक्त (उपासना काण्ड)

(इ) हकीक्त (ज्ञान निष्ठा)

(ई) मारिक्त या सिद्धावस्था (ज्ञान काण्ड)

तृतीय अध्याय

८९—९४२

कृष्ण भक्ति का उदय और विकास

(क) भागवत धर्म का उदय और विकास

(ख) भारतीय वाङ्मय में श्रीकृष्ण

(अ) भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति

(आ) भक्ति का विकास

(ग) कृष्ण भक्त कवियों के सामान्य सिद्धान्त

(अ) ब्रह्म

(आ) जीव

(इ) जात

(ई) माया

(उ) मोक्षा

चतुर्थ अध्याय

सूफियों की प्रेम साधना

१४३-१६०

(क) सूफियों के प्रेम के प्रमुख तत्त्व

- (ख) दुःख का प्रादुर्भाव
- (ग) दृढ़ता और एकनिष्ठता
- (घ) हृदय की पवित्रता
- (ङ) अहंकार शीघ्र और ईर्ष्या का लीप

(च) सूफि प्रेम मार्ग की मंजिलें

- (ख) नासूत
- (ग) मलकूत
- (घ) जवरूत
- (ङ) लाहूत

पंचम अध्याय

कृष्ण भक्त कवियों की प्रेम साधना

१६१-१८४

(क) भक्ति और प्रेम

- (ख) निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रेम का स्वरूप
- (ग) वल्लभ सम्प्रदाय में वर्णित प्रेम का स्वरूप
- (घ) चैतन्य सम्प्रदाय के प्रेम का स्वरूप
- (ङ०) राधावल्लभीय सम्प्रदाय के प्रेम का स्वरूप
- (च) हरिदासी सम्प्रदाय के प्रेम का स्वरूप

षष्ठ अध्याय

बालीच्यकालीन सूफी एवं कृष्ण भक्त कवियों तथा

उनकी रचनाओं का परिचय

(क) सूफी कवि और काव्य

(ख) कृष्ण भक्त कवि एवं काव्य

सप्तम अध्याय

सूफी प्रेम पद्धति और कृष्ण भक्त कवियों की प्रेम पद्धति में साम्य

(क) लौकिक प्रेम की जलौकिक प्रेम में परिणति

(ख) साधन निरपेक्षाता

(ग) प्रेम में तीव्रता

(घ) प्रेम में अनन्यता

(ङ०) प्रेम में विरह का प्राधान्य

(च) प्रेम में रहस्यात्मकता

अष्टम अध्याय

सूफी कवियों एवं कृष्ण भक्त कवियों की प्रेम पद्धति में वैषम्य

(क) परम्परा का वैभिन्य

(ख) प्रतीकों, उपमानों, अप्रस्तुत योजना आदि का वैभिन्य

- (ग) वर्णन-पद्धति में वैमिन्य
- (घ) काव्यरूपों में वैमिन्य
- (ङ०) पात्र चयन में वैमिन्य
- (च) सिद्धान्त निरूपण में वैमिन्य

उपसंहार

सहायक ग्रंथों की सूची

विश्व-साहित्य की प्रेम-काव्य परम्परा में हिन्दी के सूफी कवियों तथा कृष्ण-भक्त-कवियों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। अनेक विद्वानों ने इनकी अपने काव्य का आधार बनाया है, परन्तु उन्होंने सूफी कवियों तथा कृष्ण भक्तों के वर्ण्य विषय से सम्बन्धित सिद्धान्तों के विवेचन आदि पर ही विशेष बल दिया है, जिसके फलस्वरूप इनके द्वारा सूफी तथा कृष्ण भक्त कवियों की प्रेम-पद्धति का समुचित मूल्यांकन नहीं हो सका है। अतः सूफी तथा कृष्ण-भक्त-कवियों की प्रेम-पद्धति के सम्यक् अध्ययन की आवश्यकता हिन्दी में बनी हुई है। मैंने प्रस्तुत प्रबन्ध के माध्यम से इसी कमी को पूरा करने का किंचित् प्रयास किया है। सूफी तथा कृष्ण-भक्ति के सिद्धान्तों का विवेचन करते समय विद्वानों ने अपने बालीचनात्मक ग्रंथों में प्रेम-पद्धति के स्वरूप की भी चर्चा की है। अतः यहाँ इस प्रकार के प्रमुख बालीचनात्मक ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय दे देना उपयुक्त होगा ।

श्री परशुराम चतुर्वेदी ने अपनी मध्यकालीन प्रेम-साधना नामक पुस्तक में 'प्रेम' शब्द की व्याख्या करते हुए कृष्ण भक्तों तथा सूफी कवियों के प्रेम सिद्धान्तों का विवेचन किया है परन्तु उन्होंने दोनों के तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया है।

डा० दीन दयालु गुप्त ने अपने 'अष्टाक्षर और बल्लभ सम्प्रदाय' नामक ग्रंथ में बल्लभ सम्प्रदाय के भक्ति सिद्धान्तों का विवेचन व्यापक धरातल पर किया है। इसके साथ ही उन्होंने बल्लभ सम्प्रदाय में प्रचलित माधुर्य

भक्ति के स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुए अष्टछाप के कवियों की रचनाओं के आवश्यक उदाहरण भी दिए हैं। बल्सम सम्प्रदाय की माधुर्य भक्ति के मूल तत्वों की हृदयंगम करने के लिए यह अत्यन्त प्रामाणिक ग्रंथ है।

श्री बलदेव उपाध्याय जी ने " भागवत- सम्प्रदाय " में सभी सम्प्रदायों के भक्ति सिद्धान्तों को एक साथ प्रस्तुत किया है। उपासना-पदा से अधिक सिद्धान्त प्रतिपादन की वीर उनका ध्यान रहा है, पर उपासना पदा की उन्होंने नितान्त अवहेलना नहीं की है, इसके साथ ही साथ उन्होंने विभिन्न सम्प्रदायों के कृष्ण भक्त कवियों एवं उनकी रचनाओं का परिचय भी प्रस्तुत किया है।

प्रोफेसर डा० हरबंश लाल जी शर्मा ने अपने " सूर और उनका साहित्य " नामक पुस्तक में सूर के भक्ति-सिद्धान्तों की सम्यक् व्याख्या करते हुए उनकी मधुरा तथा प्रेमा भक्ति पर विशेष बल दिया है। सूर के भक्ति सिद्धान्तों की समझने के लिए उनका यह ग्रंथ अनुपम है।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त श्री चन्द्रबती पाण्डेय ने अपने " तसवुफ अथवा सूफीमत " में, डा० सरला शुक्ल ने " जायसी के परवती हिन्दी सूफी कवि और काव्य " नामक प्रबन्ध में, डा० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी ने अपने " हिन्दी साहित्य ", हिन्दी साहित्य की भूमिका " आदि ग्रंथों में एवं श्री रामपूजन तिवारी ने " सूफी मत- साधना और साहित्य " तथा " हिन्दू सूफी काव्य की भूमिका " में सूफी सिद्धान्तों का निर्देश करते हुए उनकी प्रेम पद्धति की भी यत्र तत्र चर्चा की है। सूफी सिद्धान्तों की समझने में तथा उनकी प्रेम पद्धति के दिशा-निर्देशन में इन विद्वानों का प्रयास स्तुत्य है।

अंग्रेजी में डा० ताराचन्द, निकल्सन, ब्राउन, शुस्तरी, हुज्जरी आदि ने अपने अपने ग्रंथों में इस्लामिक तथा सूफी सिद्धान्तों का विवेचन प्रस्तुत किया है। डा० सुशील कुमार डे ने अपने ग्रंथ "वैष्णव फथ एण्ड मूवमेण्ट इन बंगाल" में गौड़ीय सम्प्रदाय के भक्ति-सिद्धान्तों का परिचय दिया है। उनका यह ग्रंथ नितान्त मौलिक न होत हुए भी विषय प्रतिपादन की शैली की दृष्टि से अपूर्व है। इस प्रकार और भी अनेक ग्रंथों में इन सिद्धान्तों का एकांगी विवेचन हुआ है।

वस्तुतः उपर्युक्त आलोचनात्मक ग्रन्थों का मुख्य विषय प्रेम-पद्धति का विवेचन नहीं है। फलस्वरूप विद्वानों ने वर्ण्य विषय से सम्बन्धित सिद्धान्तों के विवेचन तक ही स्वयं को सीमित रखा है। हमने प्रस्तुत ग्रंथ में १५ वीं से १७ वीं शताब्दी के अन्तर्गत जाने वाले ब्रजमण्डलीय सम्प्रदायों की एवं हिन्दी सूफी कवियों की प्रेम-पद्धति के स्वरूप को प्रस्तुत कर उनके सिद्धान्तों की पारस्परिक तुलना द्वारा दोनों की प्रेम-पद्धति की व्यापक धरातल पर सम-झने का प्रयास किया है।

माधुर्य भक्ति का प्रचार एवं प्रसार करने वाले सूफी कवियों और कृष्ण भक्तों की मधुर उपासना का मूल भाव एक होत हुए भी उनमें मौलिक अन्तर है। यह अन्तर सूफी प्रेम-पद्धति एवं कृष्ण-भक्ति-तत्त्व की माधुर्यमयी उपासना की तुलनात्मक शैली द्वारा प्रस्तुत करने पर स्पष्ट हो सकता है।

वक्तः हमने अपने अध्ययन में तुलनात्मक दृष्टि को प्रमुख स्थान दिया है और यही इस ग्रंथ की मौलिकता है। सिद्धान्त-प्रतिपादन में

में अनुवाद ग्रंथों पर निर्भर न रहकर मूल संस्कृत अंग्रेजी ग्रंथों का विशेष रूप से अध्ययन किया है।

द्रष्टव्य यह है कि सूफी तथा कृष्ण भक्त कवियों के मूलतः दो विभिन्न स्रोत होते हुए भी, भावनात्मक स्तर पर उनकी प्रेम-पद्धति में बड़ा साम्य है। इनकी परम्पराएं अलग अलग हैं परन्तु लौकिक प्रेम की अलौकिक प्रेम प्राप्ति का साधन दोनों ही स्वीकार करते हैं। इनकी वर्णन पद्धति में वैषम्य है, किन्तु प्रेम की तीव्रता, अनन्यता तथा एकनिष्ठता में आस्था दोनों ही रखते हैं। पात्र-चयन तथा रस-निरूपण में विविधता के होते हुए भी दोनों प्रेम के समस्त धार्मिक कर्मकाण्डों को महत्वहीन मानते हैं।

विरह की तीव्रता और रहस्यात्मकता के दर्शन दोनों की रचनाओं में सुलभ हैं। इस प्रकार सूफी कवियों और कृष्ण भक्त कवियों की प्रेम पद्धति में जहां परम्परागत वैभिन्न्य है वहां दोनों का लक्ष्य एक ही है। यह और बात है कि लक्ष्य प्राप्ति के साधन पृथक् २ हैं। इन महत्वपूर्ण तथ्यों की दृष्टि में रखकर प्रस्तुत अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन दो सम्प्रदायों के मध्य पारस्परिक सौहार्द तथा भावनात्मक एकता की शक्ति प्रदान करेगा और इस दिशा में शोक-कार्य के हेतु मार्ग प्रशस्त कर सकेगा।

प्रस्तुत प्रबन्ध में १५ वीं से १७ वीं शताब्दी तक के हिन्दी सूफी कवियों और कृष्ण भक्त कवियों की प्रेम पद्धति का तुलनात्मक विवेचन करना ही अभीष्ट रहा है। सूफी और कृष्ण भक्ति साहित्य की व्यापकता की दृष्टि में रखते हुए तत्सम्बन्धी सभी कवियों को एक प्रबन्ध में समेट सकना बहुत ही दुष्कर कार्य था, फलस्वरूप १५ वीं से १७ वीं शताब्दी तक के केवल

प्रमुख कवियों की ही अध्ययन की सीमाओं में रखा गया है और उन्हीं की कृतियों के उद्धरण दिये गये हैं। इस प्रकार सम्यक् रूप से इन कवियों की प्रेम पद्धति का तुलनात्मक विवेचन इस प्रबन्ध के माध्यमसे होने के कारण इसकी उपादेयता स्वतः ही स्पष्ट है।

प्रबन्ध में कुल आठ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय आलोच्य-कालीन परिस्थितियों से सम्बद्ध है। साहित्यिक गतिविधियों और परम्परागत विचारधाराओं में उतार चढ़ाव में तत्कालीन परिस्थितियों का योग कुछ कम नहीं होता। १५ वीं शताब्दी से पूर्व देश की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक अवस्था विशुद्ध हो गई थी। इन टूटी हुई कड़ियों को शृंखलाबद्ध करने का कार्य सूफी कवियों ने किया। कृष्ण भक्तों ने घुमिल होती हुई धार्मिक वास्थाओं की प्रेम-रस से सिंचित करके नवजीवन प्रदान किया। इस प्रकार सूफियों और कृष्ण भक्तों के सक्रिय सहयोग से सम्पूर्ण देश का वातावरण प्रेममय हो गया। सांस्कृतिक स्तर पर पारस्परिक आदान-प्रदान की यह प्रवृत्ति कई दृष्टियों से स्वस्थ और महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में इन्हीं तथ्यों का विवेचन हुआ है।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत सूफी मत के आविर्भाव और विकास पर दृष्टिपात किया गया है। अध्याय के प्रारम्भ में सूफी शब्द का अभिप्राय, इस्लाम और तसव्वुफ का सम्बन्ध, सूफी मत के प्रचार और प्रसार का व्यापक क्षेत्र, भारतवर्ष में सूफी मत का आविर्भाव और उसकी अनेक शाखाएँ तथा प्रतिशाखाएँ आदि का विवेचन हुआ है। आगे चलकर भारतीय सूफी सम्प्रदायों की विशिष्टता, सुहरावदी, कादरी और नक्शबन्दी चार महत्वपूर्ण शाखाओं का अध्ययन करते हुए इनमें व्याप्त ईश्वर, जीव, माया और जगत् सम्बन्धी सामान्य सिद्धान्तों पर दृष्टिपात किया गया

है। तत्सम्बन्धित तथ्यों को एकत्र करने में यथासम्भव सावधानी बरती गयी है।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत सूफियों की प्रेम-पद्धति का विवेचन हुआ है। सूफियों ने लौकिक प्रेम पर विशेष बल देते हुए उसे अलौकिक प्रेम प्राप्ति का साधन स्वीकार किया है। उनकी यह मान्यता उन्हें कृष्ण-भक्त-कवियों के बहुत निकट ला देती है।

चतुर्थ अध्याय में कृष्ण भक्ति के उदय और विकास के विभिन्न सौपानों का विवेचन हुआ है। वैदिक काल से अप्रतिहत गति से चलती हुई भक्ति की यह धारा उपनिषदों ब्राह्मण ग्रंथों, स्मृतियों और पुराणों के परिवेश में सिमटती फैलती हुई ईसा की चौलहवीं शताब्दी तक किस प्रकार एक विशाल रूप धारण कर लेती है, यह अध्ययन रोचक होने के साथ साथ उपादेय भी है। भागवत धर्म से विकसित कृष्ण भक्ति का यह हरा भरा पौधा मध्ययुग में एक विशाल वृद्धा का रूप धारण कर अपनी छाया में समस्त भारतीय जनों को समेट लेना चाहता था, फलस्वरूप भागवत धर्म में आस्था न रखने वालों ने भी इस वृद्धा की छाया में आश्रय लेकर स्वयं को कृतकृत्य समझा। रसखान जैसे कवि इसका साक्षात् प्रमाण हैं। इस अध्याय में इसी बात की दृष्टि में रखकर भागवत धर्म का विस्तृत विवेचन करते हुए कृष्ण भक्ति के विकास पर प्रकाश डाला गया है।

पंचम अध्याय में कृष्ण भक्तों की प्रेम-पद्धति का अवलीकन किया गया है। लगभग सभी कृष्ण भक्तों ने प्रेम लदाणा भक्ति को अपने काव्य का आधार बनाया है। यह प्रेम लदाणा भक्ति उनकी मौलिक उपज नहीं अपितु

श्रीमद्भागवत का ही परम्परागत रूप है।

षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत आलोच्यकालीन प्रमुख सूफी कवियों एवं कृष्ण भक्त कवियों तथा उनकी रचनाओं का विवेचन प्रस्तुत है।

प्रबन्ध के सप्तम अध्याय में सूफी तथा कृष्ण भक्त कवियों की प्रेम पद्धति के वैषम्य पर प्रकाश डाला गया है। परम्पराओं में वैभिन्न्य होने के कारण यह वैषम्य स्वाभाविक है, किन्तु इस वैषम्य में भी साम्य की गंध का किसी सीमा तक आभास होता है। इस सगुण और निर्गुण ब्रह्म की प्रतिष्ठा करते समय दोनों ही सम्प्रदाय के कवियों का भावनात्मक स्तर पर एक सा स्वर प्रतीत होता है। परम्पराओं के वैभिन्न्य, प्रतीकों, उपमानों एवं अप्रस्तुत योजनाओं आदि के वैषम्य, वर्णन पद्धति, काव्य-रूप, पात्र-चयन तथा सिद्धान्त निरूपण आदि के बीच की अनेकरूपता का इस अध्याय के अन्तर्गत विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है।

अष्टम अध्याय में सूफी कवियों तथा कृष्ण-भक्त-कवियों की रचनाओं के अन्तर्गत विवेचित प्रेम-पद्धति के साम्य पर प्रकाश डाला गया है। भावनात्मक एकरूपता के कारण प्रेम के प्रमुख तत्वों में साम्य का पाया जाना स्वाभाविक सा प्रतीत होता है। लौकिक प्रेम की अलौकिक प्रेम के रूप में परिणति पर जिस प्रकार दोनों सम्प्रदाय के कवियों ने बल दिया है, प्रेम में वाह्य विधि-विधानों के तिरस्कार की जो प्रवृत्ति इनमें पायी जाती है, प्रेम की तीव्रता में जितनी गहरी आस्था इन कवियों की कृतियों में मिलती है और प्रेम की अनन्यता व एकनिष्ठता को जिस प्रकार इन कवियों ने प्रतिष्ठित किया है, इस अध्याय में उन सबका सूक्ष्म अध्ययन

प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। कृष्ण-भक्त-कवि रहस्यवादी नहीं कह जा सकते, किन्तु प्रेम की रहस्यात्मकता के विवेचन में वे सूफ़ी कवियों के साथ एक स्वर से परिलक्षित होते हैं। इस पक्ष पर भी विचार करना अपेक्षित समझा गया है।

सूफ़ी और कृष्ण-भक्त-कवियों की रचनाओं में उपलब्ध साम्य की दृष्टि-पथ में रखते हुए यह सहज ही कहा जा सकता है कि परम्परागत अनेकताओं के होते हुए भी भावनात्मक स्तर पर एकता की स्थापना की जा सकती है। सूफ़ी कवियों एवं कृष्ण भक्त कवियों ने इस दिशा में जो प्रयास किये हैं वे निश्चय ही स्तुत्य हैं। इस प्रबन्ध का योगदान इन्हीं दो प्रमुख सम्प्रदायों के कवियों की प्रेम-पद्धति का तुलनात्मक विवेचन करने में है।

यद्यपि इस अध्ययन के लिए मूल ग्रंथों का पारायण किया गया है तथापि जिन पूर्ववर्ती विद्वानों ने इस विषय में कुछ भी कार्य किया है उनसे भी यथास्थान लाभ उठाया है। फलस्वरूप उन सभी विद्वानों के प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शन करती हूँ।

अन्त में श्रेष्ठ गुरुवर प्रोफ़ेसर डा० हरबंश लाल जी शर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शन करती हूँ जिन्होंने पग पग पर मेरा पथ-प्रदर्शन किया है और जिनकी सद्भावना मुझे सदैव प्राप्त रही है। उनकी महती कृपा के बिना इस कार्य का सम्पादन और लिए सर्वथा असम्भव ही था ।

विनीता,

१ जून १९६८

सुशीला देवी त्रिवेदी

प्रथम अध्याय

आलोच्यकालीन परिस्थितियां

हिन्दी साहित्य का मध्य युग हिन्दी साहित्य के इतिहास का उत्कर्ष-काल है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने सामान्यतः १४०० वि० संवत् से १७०० वि० तक के समय को पूर्वमध्यकाल की संज्ञा प्रदान की है। इससे पूर्व यानि १२०० ई० से १४०० ई० तक का काल पुनर्जागरण वान्दोलन के साथ २ हिन्दी साहित्य के विकास का प्रारम्भिक चरण था। इस काल तक शेरशाह सूरी, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ आदि बादशाह भारत में पुनः विशाल साम्राज्य संगठित करने में सफल हुए। शेरशाह और अकबर की न्याय-प्रियता और सौहार्दता की धाक मुसलमानों पर ही नहीं अपितु हिन्दुओं के हृदयों पर भी जमी, फलस्वरूप दोनों जातियाँ एक दूसरे के सामीप्य लाभ की इच्छा करने लगीं। हिन्दुओं के मन में यह धारणा घर कर गई कि मुसलमानों की नींव भारत में इतनी दृढ़ हो चुकी है कि उन्हें भारत से भगाना अव्यक्त कठिन है, इसी प्रकार मुसलमान भी समझने लगे कि इन्हें इसी देश में यहीं के लोगों के साथ एक होकर रहना है, सभी हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान नहीं बनाया जा सकता। अतः इस काल के हिन्दू मुसलमानों का सम्पर्क घनिष्ठता तक पहुँच गया। राजनीतिक स्थिरता और वार्षिक सुदृढ़ता के फलस्वरूप इस काल में मध्य युग का और अधिक विकास हुआ। इस स्थिरता और सुदृढ़ता का चित्रण मध्ययुगीन कवियों के काव्य में यत्र तत्र हो गया है। अतः जिन परिस्थितियों ने मध्ययुगीन साहित्य को प्रभावित किया उनका सूक्ष्म पर्यवेक्षण आवश्यक है।

राजनीतिक परिस्थितियाँ :

राजनीतिक दृष्टि से तेरहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक का काल नितान्त विद्रुब्ध, अशान्त और संघर्षपूर्ण काल है। इसका प्रमुख कारण था बाहर से होने वाले आक्रमण। इन आक्रमणों के कारण

ही भारतीय राजनीति बस्थिर और अशान्त हो उठती थी। तेरहवीं शताब्दी से पूर्व वरबों ने अनेक बार भारत पर वाक्रमण किये। महमूद गजनवी ने भारत पर अनेक हमले किये और अपनी विजय यात्रा में मध्य देश के भी अनेक राज्यों को पराजित किया। उसने अपने सत्रह वाक्रमणों के द्वारा भारतीय राजनीति को जर्जरित करने का सर्वप्रथम प्रयास किया परन्तु उसके वाक्रमणों का स्थायी प्रभाव भारत पर न पड़ा, वह अपने मीथण व्याचारों से प्रजा को दुःखी और मर्यादित ही कर सका। एक शताब्दी बाद फिर मुहम्मद गौरी के वाक्रमण हुए, उसने महमूद गजनवी द्वारा हिलाई गई नींव को धराशायी करने का प्रयत्न किया। सिन्ध और मुल्तान को जीतने के बाद उसने गुजरात पर चढ़ाई की, पर उसे जीतने में वह सफल न हो सका। उसी भारत में उस समय चौहानों का राज्य प्रबलतम था, अपनी कूटनीतिज्ञों के द्वारा मुहम्मद गौरी ने उस पर भी बाधिपत्य स्थापित कर लिया और भारत की उन्नतिशील संस्कृति को अत्यधिक हानि पहुँचाई।

सन् १२०६ ई० से १५२६ ई० तक भारत में गुलाम, सिलजी, तुगलक, सैयद और लोदी वंशों का शासन रहा। इनमें गुलामवंश का शासन उत्तर भारत तक ही सीमित था। नर्मदा नदी के दक्षिण में इस वंश के सुल्तान अपनी शक्ति का प्रसार नहीं कर सके थे। कुतुबद्दीन ऐबक, मुहम्मद गौरी का गुलाम था जिसने अपने शासन के चार ही वर्षों में अनेक लड़ाईयाँ लड़ी और इस्लामी फाका को पूर्व की ओर फहराने में महत्वपूर्ण योग दिया। जिसके फलस्वरूप हिन्दू शक्ति की स्कन्हा अपनी अन्तिम चमक दिखाकर रसातल को चली गई और फिर सिलजी वंश बलाउद्दीन की कूरता के रूप में प्रकट हुआ। बलाउद्दीन ने दक्षिण में दूर तक विजय यात्रा की और वहाँ के प्राचीन राज-वंशों को युद्ध में पराजित किया। सन् १२६६ में उसने देवगिरि और दौलताबाद

पर वाक्रमण किये तथा इच्छानुसार उन्हें लूटा । 'बब्बुल बसाफ' नामक इतिहासकार ने 'तजोउल जसार' नामक इतिहास ग्रन्थ में लिखा है कि उसने सम्भार की साड़ी पर स्थित सम्भार नगर को जीतकर वहाँ के हिन्दुओं को मारकर रक्त की नदियाँ बहा दी थीं । अलाउद्दीन के पश्चात् सिलजी वंश में कोई पराक्रमी बादशाह नहीं हुआ । परिणामस्वरूप दिल्ली की राजसत्ता तुगलक वंश के निर्मम हाथों में गई । मुहम्मद तुगलक ने राजपूतों को पराभूत करने और दक्षिण में तुर्कों की शक्ति विस्तार का प्रयत्न किया । वह प्रत्येक ऐसी वस्तु की जड़ों पर प्रहार करता था, जो प्राचीन होने के कारण सामर्थ्यहीन हो चुकी होती थीं । मुहम्मद तुगलक के बाद फिरोजशाह तुगलक शासक पद पर वासीन हुआ । वह भी धर्मान्ध, क्रूर और नृशंस था । पंजाब से दिल्ली तक उसने क्रूर बर्त्याचार किये और अनेक निरपराध हिन्दुओं को काल-क्वलि कर दिया । यह विनाशकारी वाक्रमण अपने पीछे भीषण अकाल व भयंकर वराजकता छोड़ गया ।

तुगलक वंश के उच्चाधिकारी जयोग्य निकले फलस्वरूप तुगलकवंश शीघ्र ही नष्ट होगया । तुगलकवंश के बाद दिल्ली में सैयद वंश का राज्य स्थापित हुआ । सैयद वंश का भी शनैः शनैः पतन होगया । तत्पश्चात् सल्तनत लोदी वंश के हाथ में आगई । लोदी वंश का सुल्तान बहलोल लोदी वीर और उदारमना व्यक्ति था । उसने सल्तनत में शक्ति का संचार करने का प्रयत्न किया और अनेक प्रदेशों को फिर से दिल्ली के साम्राज्य में शामिल कर लिया । इसी बीच तैमूर ने भारत पर वाक्रमण किया जिससे भारतीय राज-नीति जर्जरिभूत होगई, वह बड़ा क्रूर और बर्त्याचारी था । उसने लाखों हिन्दुओं को मृत्यु के घाट उतार दिया । तैमूर के प्रत्यावर्तन के बाद दिल्ली की राज्य

सबा सिकन्दर लोदी के हाथ में जाई । उसके बत्याचारों की कहानियाँ बड़ी लोमहर्षक हैं। उसका शासन काल हिन्दुओं के लिए बड़े ही कष्ट, यातना और बत्याचार का काल था । हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाया जाता और उनके शोषण के लिये उन पर जजिया कर लगाया जाता था । हिन्दू जनता न तो पूजा वाराधना के विषय में ही स्वतन्त्र थी और न ब अपने धार्मिक उत्सवादि करने में ही । सिकन्दर लोदी के बाद उसका पुत्र इब्राहीम लोदी शासक बना जिसकी जयोग्यता से लाभ उठाकर बाबर ने भारत पर आक्रमण कर दिया । पंजाब को उसने सुगमता से अपने आधिपत्य में कर लिया । इब्राहीम लोदी ने उसके मार्ग को रोकने का बसफल प्रयत्न किया । पानीपत के युद्ध में विजयी होकर बाबर ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया । अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए बाबर को कई महत्वपूर्ण युद्ध लड़ने पड़े । सन् १५३० में वह मृत्यु को प्राप्त हुआ । बाबर की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र हुमायूँ विशाल मुगल साम्राज्य पूर्णरूपेण शक्तिशाली नहीं हो पाया था । शेरशाह सूरी ने मुगलों की इस विकीर्ण शक्ति से लाभ उठाया और चौसा के युद्ध हुमायूँ को पराजित करके स्वयं को भारत का शासक घोषित किया । शेरशाह की गणना भारतीय इतिहास के असाधारण शासकों में होती है। उसकी शासक- व्यवस्था और न्याय पद्धति उच्च कोटि की थी । दीर्घकालीन असन्तोष और अशान्ति के बाद दाशिक शान्ति और सन्तोष की स्थापना ने हिन्दू मुसलमानों के मध्य युग युग से बाँड़ी होती हुई खाई को पाटने में भरपूर सहायता दी । " पद्मावत " इसी काल की अमर कृति है। जायसी ने अपने इस काव्य में शेरशाह की न्यायप्रियता और सौहार्दता की प्रशंसा की है।

शेरशाह के उत्तराधिकारियों के जयोग्य होने के कारण राज्यसत्ता की बागडोर पुनः हुमायूँ के हाथों में जाई और हुमायूँ की मृत्यु के

बाद उसका पुत्र अकबर अपनी बल्पायु में ही इस विशाल राज्य का स्वामी बना। अकबर की नीति ने भी शान्ति स्थापना में हाथ बढ़ाया। उसने हिन्दुओं के प्रति उदार व्यवहार किया। उससे पूर्व तीर्थ यात्रियों से एक विशेष कर वसूल किया जाता था, अकबर ने उसे हटा दिया। यही नहीं उसने हिन्दुओं से जजिया कर वसूल करना भी बन्द कर दिया। इसका कर के हटा देने से मुगल साम्राज्य की हिन्दू और मुसलमान प्रायः में कोई अन्तर न रह गया। अकबर ने अपने शासन में हिन्दुओं को उच्च पद प्रदान किये तथा उनके राजपूत स्त्रियों से विवाह कर हिन्दू मुस्लिम मैदभाव को दूर करने का प्रयत्न किया। वह हिन्दू विद्वानों का आदर करता था और हिन्दुओं के पौराणिक ग्रंथों का अनुवाद फारसी में करने की उसने आज्ञा दे दी थी। उसके इस्लाम विरोधी कार्यों को करने से मुल्ला उससे इतने कुपित हुए कि उसे मुसलमान मानने से भी इनकार करने लगे। जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनकाल में भी अपेक्षाकृत शान्ति और सुव्यवस्था के युग रहे। जहाँगीर की धार्मिक नीति अकबर जैसी ही थी पर वह मुसलमानों के प्रति कुछ पदापात पूर्ण था।

जहाँगीर की मृत्यु के उपरान्त शाहजहाँ ने जैसे ही राज्यसत्ता हाथ में ली, उसे दक्षिण के सूबेदार सानजहाँ लोदी का विद्रोह दबाना पड़ा। कान्धार को पराजित करने के लिये उसने तीन बार प्रयत्न किया, पर सफल न हो सका। अतः स्पष्ट है वह अकबर के समान विजिता न था। परन्तु सौभाग्यवश अकबर द्वारा स्थापित विशाल साम्राज्य में इतनी सुसहाली थी कि उसे अधिक युद्धों का सामना नहीं करना पड़ा। उसका शासन

काल मुगल साम्राज्य का स्वर्ण युग कहलाना है। कारण उसके काल में मुगल साम्राज्य उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। देश में सर्वत्र सुख और शान्ति का साम्राज्य था। कालान्तर में शाहजहाँ के जीवन काल में ही अपने भाईयों को गृह-युद्ध में पराजित कर और पिता को कैद करके औरंगजेब मुगल साम्राज्य का अधिपति बना। औरंगजेब का राज्यकाल हिन्दुओं के जीवन की अत्यन्त कष्टाण कहानी है। उसने अकबर की नीति का परिवर्तन कर हिन्दुओं पर पुनः जजिया लगाया। हिन्दू मन्दिरों को तोड़ने की आशा जारी की, व्यापार व्यवसाय आदि में हिन्दू मुसलमानों में भेद भाव रखा, हिन्दुओं को उच्चराजकीय पदों से वृक्ष किया और उनके उत्सवों और त्योहारों पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया। औरंगजेब का इस हिन्दू विरोधी नीति के कारण हिन्दुओं ने स्थान स्थान पर विद्रोह करने प्रारम्भ कर दिये जिसको दबाने के लिए औरंगजेब को कड़ा प्रयत्न करना पड़ा। औरंगजेब के उच्चाधिकारी उन्ने सबल न थे, न उनमें अकबर जैसी नीति कुशलता थी और न औरंगजेब जैसा साहस ही। औरंगजेब की मृत्यु के बीस वर्ष बाद ईरान के बादशाह नादिर-शाह ने भारत पर आक्रमण किया। उस समय दिल्ली की राज्यसत्ता मुहम्मद शाह के निर्बल हाथों में थी। नादिरशाह ने उसे परास्त कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया। इससे मुगलों की अवशिष्ट शक्ति भी नष्ट प्रायः होगई।

सन् १७४३ में मराठों ने मातवा पर विजय प्राप्त की और १७५१ में उड़ीसा और बंगाल भी उनके आधीन होगये। अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर चार आक्रमण किये, चतुर्थ आक्रमण के बाद उसने पंजाब के मराठा सूबेदार को परास्त कर दिल्ली को एक बार फिर अपने अधिकार में कर लिया। इस प्रकार मध्य युग की घोर अनिश्चित व अशान्तिपूर्ण परिस्थितियों में दिल्ली के सिंहासन पर असीत्या बादशाह और अनेक वर्ष आये तथा अन्तिम के गर्म में वि-

लीन होगये । इस अशान्ति पूर्ण वातावरण के प्रभाव से तत्कालीन कवि भी अकुले न रह सके । तुलसीदास का 'कोउ नृप हीइ हमैं का हानी । बेरी हार्दि ना हीउब रानी' सामान्य जनता का राज सिंहासन पर आरुढ़ नृप के प्रति व्यक्त किया गया विचार है। श्री वल्लभाचार्य जी ने अपने 'कृष्णाश्रय' नामक ग्रंथ में मुसलमानों के आक्रमण की ओर संकेत किया है :

‘स्तेच्छाक्रान्तेषु देशेषु, पापैकनितयेषु च ।

सत्प्रीडात्पृथल्लोकेषु, कृष्णारव गतिर्मम ॥ १

अर्थात् मल्लिकों (मुसलमानों) से आक्रान्त देश अनेक प्रकार के पापों का स्थान बन गयी है। सत्पुरुष पीड़ित हैं तथा समस्त लोक व्यग्र है। ऐसी अवस्था में एक मात्र कृष्ण ही मेरी गति है।

तुलसी, सूर, कबीर और विद्यापति की रचनाओं में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के संकेत उपलब्ध होते हैं। सूफी कवियों ने अवश्य ही उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों के विषय में कुछ नहीं लिखा है। वे उन परिस्थितियों से प्रभावित अवश्य थे, कारण पारस्परिक विरोध से उकता कर उन्होंने अपनी प्रेम कथाओं में हिन्दू और मुसलमान दोनों की प्रणय भावना को बाँधने का प्रयास किया है। राजनीतिक परिस्थितियों के विषय में उनके चुप रहने का कारण शायद यह रहा हो कि सूफी मत के भारत में प्रवेश काल तक उसका राज्य सत्ता से विरोध समाप्त हो चुका था। जब सूफी मत इस्लाम धर्म का एक अंग था, इन सूफी कवियों के अनुसार राजनीतिक परिस्थितियाँ अनुकूल थीं। कारण उसमें धर्म के प्रसार का अवकाश तो

था ही। राजा की कनीति कीवोर उनका ध्यान न था, उसका धर्मान्ध रूप ही उन्हें प्रिय था। दूसरे धर्मानुयायियों पर राजा की भी कृपा दृष्टि थी कतः सूफ़ी कवियों ने धर्म की दृष्टि से जहाँ परिस्थिति की अनुकूलता का उल्लेख किया है, वहाँ उसके अन्य स्वरूपों की वोर उसका कोई ध्यान नहीं गया। परन्तु तुलसी, सूर, कबीर वादि ने तत्कालीन पशु तुल्य दास दासी उन पर किये गये अत्याचार, पद पद पर अपमानित वोर त्रस्त कृषक तथा काल महामारी वोर युद्ध वादि का बड़ा ही सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है जिनसे ऐसा प्रतीत होता है कि क्रूर तथा कठोर राजनीति के कारण बहुदिक् अशान्ति से वे व्यथित हो उठे थे।

सामाजिक परिस्थितियाँ :

समाज मनुष्यों की समष्टि की ही संज्ञा है। मैकाइवर ने लिखा है कि " हिन्दू समाज शब्द का भारतीय अर्थ है मानवों का वह समूह जो साथ साथ कार्य व्यवहार करता है— यथा हिन्दू समाज मनुष्यों का वह सामूहिक रूप है जो एक सामान्य सम्बन्ध समष्टि अथवा आचार विचार यथा वर्ण आश्रम वादि का अनुवर्तन करता है। "

इस प्रकार मानव जीवन के साथ समाज का वोर समाज के साथ मानव जीवन का अटूट सम्बन्ध है। समाज मानव जीवन के साथ ही उत्थान व विनाश के मार्ग की वोर अग्रसर होता है वोर मानव जीवन देश वोर काल की परिस्थितियों के अनुसार संवरण तथा विकृत होता है। इस प्रकार मानव जीवन, समाज वोर देश काल की परिस्थितियों में परस्पर संबध है। मध्य युग में क्योंकि राजनीतिक अस्थिरता थी, भारतीय समाज अमिश्रण-ग्रस्त था। समाज में नैतिक नियंत्रण ढीला होने के कारण उच्छ्वलता बढ़ गई थी।

सानवीं शताब्दी तक भारत में प्राचीन काल के समान चार वर्ग थे, ब्राह्मण पात्रिय, वैश्य और शूद्र । ब्राह्मण विशेषकर अध्ययन अध्यापन का कार्य करते थे तथा समाज में उन्हें सर्वोच्च स्थान प्राप्त था । इसकी भाँति वैदिक वाङ्मय में ही प्राप्त हो जाती है। चातुर्वर्ण्य में सबसे हीनदशा शूद्रों की थी । जीविकोपार्जन के लिए वे केवल सेवा कर सकते थे और सेवा के बदले उन्हें प्राप्त क्या होता था केवल फटे पुराने वस्त्र और उच्छिष्ट भोजन । शूद्रों के समान स्त्रियों की भी हीन दशा थी । हिन्दुओं में वाक्त्रम व्यवस्था का भी महत्व था । ब्रह्मचर्याश्रम, तथा गृहस्थाश्रम में पूर्णरूपेण प्रवृत्ति की प्रतिष्ठा थी । वानप्रस्थाश्रम में निवृत्ति का वार्षिक रूप से ग्रहण तथा चतुर्थ संन्यासाश्रम शुद्ध रूप से निवृत्तिपरक था । विदेशी जातियों शक, हूणादि के वाक्त्रमणों से भी वर्ण व्यवस्था वाक्त्रम, व्यवस्था तथा सामाजिक व्यवस्थाओं में विशेष केंद्र नहीं आया, वैसे समाज में कई प्रकार की विषमताएँ उत्पन्न हो गई थीं जैसे धनिक वर्ग तथा निर्धन वर्ग एवं पंडित वर्ग तथा मूर्ख वर्ग की । मुस्लिम वाक्त्रमणों के कारण ये सामाजिक व्यवस्थाएँ अत्यन्त शिथिल होगईं । ये वाक्त्रमणकारी अपने साथ भिन्न संस्कृति सामाजिक व्यवस्था तथा उपासना पद्धति लाये थे । इन्होंने भारतीय समाज में घुलने मिलने का प्रयत्न तो किया नहीं प्रत्युत तत्वार के बल पर अपनी संस्कृति, धर्म तथा राज्य का प्रसार करना प्रारम्भ किया । कालः हिन्दुओं में शासक वर्ग के प्रति भय की भावना आना स्वाभाविक था । ऐसी अवस्था में उनके मस्तिष्क में विरोधी भावनाएँ घर कर गईं , साथ ही धर्म के प्रति उन्हें अविश्वास भी होने लगा । बहुत से हिन्दू कुछ तो बल प्रयोग के आधार पर और कुछ स्वेच्छा से अपना धर्म त्यागकर इस्लाम धर्म में दीक्षित होगये । इस प्रकार उनमें वर्णसंकरता आगई । तत्कालीन समाज में राजाओं से लेकर सामन्त तक विलासिता की प्रतिमूर्ति थे । प्रजा की गाढ़ी कमाई का धन सहस्रों की संख्या में रहने वाली रानियों की सम्मानों और राज दरबारों

में रहने वाले कलाकार, कवि, संगीतज्ञ, चित्रकार, मूर्तिकार आदि पर व्यय किया जाता था। प्रजा की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता था जिसके फलस्वरूप साधारण सैनिक भी जीवन में विलास और वैभव की आकांक्षा रखता था^१। विश्वबन्धुत्व तथा सामाजिक समानता की ओर ध्यान वाकृष्ट कराने वाले मुसलमानों में भी विभिन्न वर्ग होगये थे। जैसे शैख, सैयद, मुगल, फठान आदि। साथ ही ऊँच, नीच की भावना भी तिरौहित न हो सकी थी, शिया, सुन्नी का भेद भाव गहरा था जो कभी कभी पारस्परिक संघर्ष का कारण भी जाया करता था। मुसलमानों में भी दास-प्रथा का प्रचलन था। मध्य युगीन सामन्तों और धनीमानी व्यक्तियों में वैभव का अनुमान दास दासियों की संख्या के आधार पर होता था, कठोर पश्चिम के पश्चात् उन्हें केवल जीवित रहने भर के लिए ही भोजन दिया जाता था।

मध्ययुगीन समाज का विभाजन सरलतापूर्वक तीन वर्गों में किया जा सकता है, प्रथम वर्ग के अन्तर्गत समाज के उच्च वर्ग के लोग मनसबदार तथा उच्च राज्य कर्मचारी सम्मिलित थे, द्वितीय वर्ग में मध्यम श्रेणी के लोग आते थे तथा तृतीय वर्ग में वे व्यक्ति थे जो पश्चिम की कमाई पर जीवन यापन करते थे। प्रथम वर्ग के लोग विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। इनका जीवन केवल आनन्द का जीवन था। उन्हें न प्रजा की सख सुविधाओं का ध्यान था और न राज्य व्यवस्था की चिन्ता। राजकीय शक्ति पर उनका गहरा प्रभाव था। सुल्तान कवर्य की विलासिता की मूर्ति थे फिर उनके कर्मचारी ही भला कार्यरत क्यों रहने लगे।

हिन्दू समाज के भी स्थूल रूप से इस समय तीन वर्ग

होगये। प्रथम राजा तथा धनिकों का वर्ग, जो अपने रहन सहन में सुल्तानों की जीवनशैलियों से प्रभावित था। यह वर्ग भोग विलास तथा ऐश्वर्य में ही मग्न रहा करता था। समाज की अन्य विन्ताओं से वह मुक्त था, द्वितीय साधारण जन वर्ग को कुछ कारणों वश मुस्लिम समाज से मिलने का बाध्य था, ये कारण थे अजिया कर से मुक्ति, समाज में उच्च स्थान प्राप्त करने की इच्छा अथवा राजदण्ड से मुक्त होना। यह वर्ग राजभय के कारण धन और बुद्धि से हीन समाज की रुढ़ियों से त्रस्त प्राणियों का था। तृतीय वर्ग उन पण्डितों का था, जो समाज की विवशता से पूर्णरूपेण परिचित हो चुके थे तथा जाति पालि एवं कर्म काण्ड के दुष्परिणामों को भी समझते थे। इनका प्रयास एक ओर तो इस विवशता तथा स्तरहीनता की निन्दा करके समाज को उधर से विमुक्त करना था दूसरी ओर उपासना के क्षेत्र में हरि भक्ति की कसौटी प्रस्तुत करके मानव मात्र में साम्य स्थापित करना था।

मध्य युग में नारियों की दशा भी हीन थी। अपमान से बचाने के लिये उनका अल्पायु में ही विवाह कर दिया जाता था। स्त्री का बलपूर्वक अपहरण करना साधारण सी बात थी, इस विषय को लेकर कभी कभी भयंकर युद्ध तक हो जाया करते थे। पूर्ववीराज और जयचन्द के मनमुटाव का कारण संयोगिता ही थी। हिन्दू स्त्रियों को अपने सतीत्व की बराबर चिन्ता रहती थी। जायसी ने अपने पदमावत में इस ओर संकेत किया है^१ पति की मृत्यु होने पर सहस्रों की संख्या में स्त्रियाँ सती हो जाया करती थीं। राजपूत स्त्रियाँ भोग विलास के वातावरण में रहते हुए भी वीर होती थी।

उनके युद्धों को गाथाओं और वात्सल्य सम्पर्ण के उदाहरणों से इतिहास बना पड़ा है। तत्कालीन कवियों पर भी उस युग की सामाजिक त्वस्था का प्रभाव पड़ा और उन्होंने उसे काव्य का रूप प्रदान किया। कबीर, सूर तथा तुलसी ने जहाँ नारी को प्रेम तथा त्याग की प्रतिमा कहा है, वहाँ वे उसे अवगुणों से पूर्ण भी मानते हैं :

“भ्राता, पिता, पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरख नारी।
होइ विकल सक मनहि न रौकी। जिमि रबि मनि द्रव रबिहि
बिलोकी ॥ १

“नारि सुभाउ सन्य कवि कहहीं। अवगुन जाठ सदा उर रहहीं ॥ २

इन कवियों ने जाति धर्म को महत्त्व न देकर भगवद् भक्ति को ही सर्वस्व माना। उनकी दृष्टि में भक्ति तथा भगवान् के समस्त सम्पूर्ण कर्म, समाज, कुटुम्ब तथा व्यक्ति महत्त्वहीन थे। इसका कारण तत्कालीन युग की अस्थिर सामाजिक परिस्थितियाँ थीं। एक ही परिवार के व्यक्ति कुछ हिन्दू रह जाते और कुछ मुसलमान हो जाते। धर्मान्ध व्यक्तियों के लिये यह सहन करना कठिन था। इसी कारण साम्प्रदायिकता, धर्मान्धता तथा कट्टरता जोर पकड़ रही थी। रुढ़ि प्रियता और रुढ़ि त्याग दोनों भावों का उस काल में हिन्दू समाज में समान रूप से आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। तत्कालीन सन्त वर्ग भी उस आन्दोलन से प्रभावित हुआ और उन्होंने जाति, पाँति के बन्धन को मान्यता न देकर ब्राह्मण उसी को माना जो कर्म से पवित्र हो, तथा ब्रह्म के ध्यान में निरन्तर संलग्न रहता हो, वात्सल्य विषा का मनन करता हो, काम, क्रोध, मद, मोह आदि से परे हो, दया को हृदय में धारण किये हो सर्व सत्य प्रिय और मृदु भाषी हो :

१- तुलसीदास कृत - रामचरित मानस अरण्य काण्ड दोहा १७

२- “ “ “ “ लंकाकाण्ड- दोहा १६

"बाम्हन सो जो ब्रह्म फिखाने,
 बाहर जाना भीतर जाने
 पाँचों बस करि झूठ न भासै
 दया जनेऊ हिरदै रासै ,
 जातम विद्या फरै पढ़ावै,
 परमात्म का ध्यान लगावै ।
 काम क्रोध मद लोभ न होई
 "चरनदास" कहै बाम्हन सोई ॥ "

इस प्रकार मगवान् को केन्द्र बनाकर भक्त लोग जाति
 पाँति तथा सामाजिक तत्त्वों की उपेक्षा करने लगे । कुछ राजाओं ने भी सामा-
 जिक सुश्रुतियों की ओर ध्यान देकर उनको दूर करने का प्रयास किया । सर्व-
 प्रथम कर्नूल ने इस ओर अपना ध्यान आकर्षित किया । उसने हिन्दू और मुसल-
 मानों के सीमित दायरे से पृथक् एक भारतीय समाज की स्थापना की । गोवध
 तथा सती प्रथा का उसने निषेध किया । भक्षण तथा वैश्यावृत्ति पर भी सामा-
 जिक नियन्त्रण लाये तथा विभिन्न साम्प्रदायिक भेद भाव मिटाने के लिये एक
 नवीन धर्म की स्थापना की । जजिया आदि करों को हटया तथा सभी को समान
 रूप से सरकारी पद देने प्रारम्भ किये । राजनीति और समाज का गहरा संबंध
 है अतः राजनीतिक परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ समाज में भी परिवर्तन
 होते गये । यदि कोई दयालु शासक देश की परिस्थितियों की ओर ध्यान देकर
 उन्हें सुधारने की ओर प्रयत्नशील होता तो उसके बाद के अन्धविश्वासी शासक
 उसके सुधारों को नष्ट कर देंगे । हिन्दू समाज शासक की दया पर निर्भर रहता,
 उसमें किसी प्रकार का उत्साह उस काल में नहीं रह गया था । अतः राजनीतिक
 और सामाजिक क्षेत्र में ह्रास, पराजय, संकीर्णता, रुढ़िवाद का व्यापक

प्रभाव उस युग में दिखाई देता था फलस्वरूप चिन्तन स्वातन्त्र्य का भी लोप हो गया था ।

धार्मिक परिस्थितियाँ :

मध्ययुगीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के हावाबोला होने पर धार्मिक परिस्थितियाँ भी स्थिर न रह सकीं । उच्च पश्चिम से आने वाले आक्रमणकारियों ने भारतीय समाज और धर्म पर इतने कठोर आघात किये कि भारतीय जनता अपनी समस्त मौलिकता, स्वातन्त्र्य और प्रातिशीलता को विस्मृत कर साधारण रूप से जीवन यापन करने में ही अपनी कुशलता समझती रही । तेरहवीं शताब्दी से १८ वीं शताब्दी तक भारतीय जनता निरन्तर मुस्लिम विजेताओं की तलवारों से आतंकित होती रही । इस आतंक से बचने का एक मात्र उपाय था इस्लाम धर्म अपनाना और यही उसने किया भी । इन वर्षों में भारत की शस्य श्यामला भूमि अनेक बार हिन्दुओं के रक्त से नहलाई गई । सिकन्दर लोदी, महमूद गजनवी, मुहम्मद गौरी, बाबर, हुमायूँ, शाहजहाँ आदि अनेक शक्तियों ने अपनी कठोरता से हिन्दुओं के दिलों को दहलाकर उनके जीवन को झुमर बना दिया । तुगलक और लोदी वंश का राज्य काल बड़ा ही अस्थिर रहा । कबीर सिकन्दर लोदी के समकालीन साधक थे, उन्होंने बड़ी ही उदार दृष्टि से अपनी समकालीन परिस्थितियों का अध्ययन किया और विकट अनुभव किये । उन्होंने देखा देश की तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक स्थितियाँ बड़ी विकृत हैं। जनता की आस्था सत्य से हटकर असत्य में संलग्न है। मानवता पथ भ्रष्ट हो चुकी है तथा मानव जीवन का कोई मूल्य ही नहीं है। राजनीति के आवरण से आच्छादित मानव पूर्णरूपेण परिवर्तित हो चुका है। कबीर के युग में हिन्दू धर्म बाह्य प्रभावों और दोषों से तो अभिशप्त

था ही, वास्तविक दोष भी उसे वाझान्त कर रहे थे। हिन्दू और मुसलमान अपने अपने धार्मिक नेताओं का बन्धानुकरण कर रहे थे। धर्म के नाम पर अधर्म मर और वाचार के नाम पर वनाचार का बोल बाला था। कबीर जैसे महान् सुधारक के लिये यह असह्य था। अतः उसने हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही समान रूप से फटकारा। बाबर और हुमायूँ के शासन में नौ भारत की धार्मिक स्थिति और भी विकृत होगई। हिन्दू जनता को धार्मिकता का दण्ड वहन करने के लिये अनेक प्रकार के कर देने पड़ते थे। इतिहासकारों का मत है कि हिन्दू जनता पर लगाये गये जजिया कर की दर बहुत अधिक थी। बाबर की आज्ञा से मीर बाकी ने हिन्दुओं और जैनियों के अनेक प्रसिद्ध मन्दिरों को ध्वंस करके उनके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण कराया^१। बाबर अपनी धार्मिक नीति में बड़ा कठोर था^२। हुमायूँ के बाद अकबर ने भारत के सिंहासन पर आसू होकर देश की धार्मिक नीति के प्रति उदारता का व्यवहार किया। जहाँगीर ने भी अकबर का ही अनुवर्तन किया पर वह अपने पिता के समान उदार न था। शाह-जहाँ के समय में भी देश की धार्मिक दशा उम्मी नहीं बिगड़ी थी पर औरंगजेब ने सिंहासन पर बैठते ही हिन्दुओं के साथ कठोर व्यवहार करना प्रारम्भ किया, औरंगजेब के शासन काल में हिन्दू जनता धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और वार्षिक सभी दृष्टियों से नष्ट प्रायः हो चुकी थी।

धार्मिक स्थिति के विकृत होने पर अनेक सम्प्रदाय और मत मतान्तर देश में फैलने लगे। सभी मतमतान्तर सामूहिक रूप से धर्म नाम से अभिहित किये जाते थे परन्तु धर्म के इन विविध वर्गों में परस्पर भेद स्पष्ट था।

1. The Short History of Muslim Rule in Indi- Dr. Ishwari Prasad pp 9

2. Ibid pp 9

3. Ibid pp 9

शैव मत में जहाँ शिव को ही परमेश्वर के रूप में प्रतिष्ठित किया गया था । नाथ सम्प्रदाय में ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान केन्द्रित करने निराकार की उपासना तथा कजपा जाप का महत्व प्रदर्शित किया गया था । जैन और बौद्ध धर्मों के अपने पृथक् ही सिद्धान्त थे । महात्मा बुद्ध के निर्वाण के उपरान्त बौद्ध धर्म को हीन-यान और महायान दो शाखायें हो गईं । हीनयान में दार्शनिक जटिलता थी , अतः लोगों की वास्था उस पर टिक न सकी । महायान के अन्तर्गत कालचक्रयान, वज्रयान, सहजयान और मन्त्रयान वादि की स्थापना हुई । कालचक्रयान के अनुसार यह समस्त संसार भूत, भविष्य और वर्तमान त्रिकाल के वशीभूत है। वज्रयान में शून्यता की स्थिति को महत्वप्रदान किया गया है। सहजयान में तंत्र, मंत्र का निषेध किया गया है। इसमें नृत्य संगीत वादि का परिवर्तित रूप भी उपलब्ध होता है । पासण्ड का यहाँ सण्डन हुवा और देवताओं को व्यर्थ ठहराया गया । मन्त्र ग्रान में तन्त्र मन्त्र जादू टोना वादि को मान्यता दी गई । मन्त्र तन्त्र की सहायता से सिद्ध लोग असाधारण शक्ति प्राप्त करके दिखाते थे । तान्त्रिक महायान ने नाथ पंथ और शैव मत में भी योग दिया । नाथ पंथ में सिद्धियों और चमत्कारों का स्थान है, नाथ पंथी योग साधन करके समाधि के अन्त में निर्विकल्पक आनन्द की अनुभूति करते हैं। तान्त्रिक और शैवमत के सम्पर्क से शाक्त-मत प्रादुर्भूत हुवा, इसमें शक्ति की उपासना पर बल दिया गया है। दार्शनिक दृष्टि से शाक्त मत इन्द्रियों की तृप्ति की उपेक्षा कर वासना का सहार करता है परन्तु मैरवी चक्र के अनुयायियों ने शाक्त मत के वाद्यों को दूषित कर उसमें वासना का समावेश कर दिया ।

इस प्रकार मध्य युग में बारहवीं तेरहवीं शती के अन्तर तन्त्र, मंत्र , जादू, टोना, सिद्धि तथा चमत्कार अपने पूर्ण वेग पर थे । पुरोहितवाद, मूर्ति पूजा तथा अन्य धार्मिक अन्ध विश्वासों की भी प्रतिष्ठा थी ।

ये बन्ध विश्वास हिन्दू धर्म में कुछ तो स्वयं ही विकसित होगये और कुछ ब्राह्मण जाति के सम्पर्क से आये। इन बन्ध विश्वासों और धार्मिक विकृतियों की प्रतिक्रिया-स्वरूप पन्द्रहवीं शताब्दी में रामानन्द सम्प्रदाय, कबीर षष्ठ और सोलहवीं शताब्दी में वल्लभ सम्प्रदाय, नानक षष्ठ और चैतन्य सम्प्रदाय आदि का प्रादुर्भाव पुनर्जागरण की चेतना की बाह्याभिव्यक्ति थी। इन नवीन सम्प्रदायों को निम्न वर्गीय जनता का आश्रय प्राप्त हुआ। अतः ये बान्दोलन, लोकाश्रित न थे। सामंत वर्ग से इन्हें कम सहायता मिली। कारण ये बान्दोलन वेद और शास्त्र के नियमों वगैरे व्यवस्था ब्राह्मण श्रेष्ठता, वेद प्रामाण्य पौराणिक वाच्य-विश्वासों पर आधारित आचार विचार आदि के विरोधी थे, दो सौ वर्षों के अन्तर इन सम्प्रदायों द्वारा प्रवर्तित पुनर्जागरण का यह बान्दोलन देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गया। सामान्य जनता इन सम्प्रदायों में दीक्षित होने लगी। और परम्परागत ब्राह्मण धर्म पृष्ठभूमि में चला गया। इन सम्प्रदायों में निर्गुण और सगुण का संघर्ष होने लगा। शक्तिर अद्वैती तथा नाथ षष्ठी योगियों के अनुयायी निर्गुणनियत सन्तों ने निर्गुण को माया रहित सर्वोपरि तत्त्व माना तथा सगुण को माया से युक्त मानकर हेय ठहराकर इसके विपरीत सगुणीपासक भक्तों ने निर्गुणमतवाद की मृदु तथा तीक्ष्ण आलोचनाएँ करते हुए सामान्य जनता के हेतु सगुण उपासना की प्रतिष्ठा की। इन्होंने निर्गुण को ज्ञान का विषय स्वीकार करते हुए सगुण साकार ब्रह्म को ही सर्वसाधारण के लिये सुलभ बतलाया। मर्यादावादी तुलसीदास, सूर, नन्ददास आदि ने सगुण ब्रह्म की ही उपादेयता प्रतिपादित की है। वेदों के द्वारा भी तुलसी ने राम के सगुण यश का निरूपण वर्णित किया है :

‘ जे ब्रह्म अज अद्वैत अनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं ।

ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं ॥ १

अष्टहापी भक्त सूरदास नन्ददास आदि ने ती मक्ति की हैयता सिद्ध करने के हेतु प्रेमर को माध्यम बनाकर अपने कौशल की सुन्दरतम अभिव्यक्ति की है। सगुण रूप में जनसाधारण का मन अधिक रमा, यही कारण था भगवान् के निर्गुण रूप की अपेक्षा सगुण को मान्यता प्राप्त हुई।

भारत में जिस समय जैन, बौद्ध, शैव और वैष्णव मत मतान्तरों का जोर था। इस्लाम धर्म ने भारत भूमि पर प्रवेश किया पर यहाँ इस्लाम धर्म को वह सफलता न मिली जो उसे ईरान अफगानिस्तान आदि देशों में मिल चुकी थी। अप्रत्यक्ष रूप से इस धर्म ने यहाँ की संस्कृति पर अपना प्रभाव अवश्य डाला। उस काल के निर्गुण प्रेममार्गी सूफी कवियों ने हिन्दू धर्म और इस्लाम की कुछ बातों में समानता दिसलाकर दोनों सम्प्रदायों को निकट लाने का प्रयास किया। उन्होंने अद्वैतवाद में इस्लाम के एकेश्वरवाद की सौज की। उस समय में प्रचलित धार्मिक सम्प्रदायों का प्रभाव उन पर स्पष्ट रूप से देस पड़ता है। प्रत्येक सूफी प्रेमास्थान में महेश या शिव की प्रतिष्ठा है, वैष्णव भक्ति का प्रभाव भी सूफियों पर पड़ा। वैष्णवों के समान बर्हिसा के वे पदापाती थे। और हृदय की शुद्धि पर कर्मकाण्ड की अपेक्षा अधिक जोर देते थे। नाथपंथियों का प्रभाव भी उनकी योग साधना में प्राप्त होता है। शारीरिक कष्ट सहन करने के उपरान्त ही साधकों को लक्ष्य की प्राप्ति होती है। यह इन प्रेमास्थानों में सर्वत्र दिखाई पड़ता है। हाथ में किंगरी, कान में कुण्डल, गले में रुद्राक्ष की माला, हाथ में कमण्डल, कन्ध पर व्याघ्र चर्म तथा पैरों में सड़ाऊँ धारण करके जब नाथ पंथी योगियों की वेश-भूषा से ही वर्तकृत दृष्टिगत होता है। इन सूफी कवियों के काव्य में विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों का भी वर्णन मिल जाता है।

इस प्रकार देश की धार्मिक स्थिति में, विवर्तित होने पर अनेक धार्मिक सम्प्रदाय उठ खड़े हुए शैव, शाक्त, जैन तथा बौद्ध धर्म धीरे-धीरे लोप हो गए पर वैष्णव धर्म जोर पकड़ता गया। वाचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, “ सेन राजाओं के प्रभाव से उड़ीसा होता हुआ वैष्णव धर्म दक्षिणी भारत से बंगाल आदि पूर्वी प्रान्तों में प्रविष्ट हुआ।” दक्षिण के वैष्णव धर्म ने उड़ीसा बंगाल आदि पूर्वी प्रान्तों में एक नया रूप ग्रहण किया, वाचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है, “ मक्ति के आन्दोलन की जो लहर दक्षिण से आई उसी ने उत्तर भारत की परिस्थिति के अनुरूप हिन्दू मुसलमान दोनों के लिये एक सामान्य मक्ति मार्ग की भावना कुछ लोगों में जगाई।” मुसलमान भी बक्ति की इस लहर से प्रभावित हुए बिना न रह सके और ईश्वरी की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में दक्षिण के मक्ति आन्दोलन ने पूरे वेग से समस्त उत्तर भारत को अधिकृत कर लिया।

साहित्यिक परिस्थितियाँ :

मध्यकालीन पुनर्जागरण के आन्दोलन का सर्वाधिक प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर लक्षित होता है। धार्मिक आन्दोलन के नेताओं ने अपने विचारों को जनता तक पहुँचाने के लिये अधिकतर लोक भाषा का आश्रय लिया। यद्यपि इस काल में संस्कृत साहित्य की रचना हुई और अनेक धार्मिक सम्प्रदायों विशेषकर ब्राह्मण विचारधारा के सम्प्रदायों ने अपने ग्रंथों की रचना संस्कृत भाषा में की पर अपने मत के प्रचार और स्तुति गान के हेतु उन्होंने

१- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य का विकास - पृ० ३८

२- वाचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ० ५६

लोक भाषाओं को ही चुना । मध्ययुगीन धार्मिक साहित्य को लोकाश्रयी साहित्य ने बहुत ज़ोरों तक प्रभावित किया । विद्यापति और तुलसी के गीतों में लोक गीतों का स्वर है, जायसी के प्रेमास्थान की आधार शिला एक लोक कहानी है, गोरस और कबीर की उक्तियाँ लोक का समर्थन या लोकोक्ति बन गईं । तुलसी की ग्रामवधूँ और सूर की गोप गोपिकायें लोक जीवन से ही सम्बद्ध हैं। विभिन्न विद्वानों द्वारा जो लोक गीतों के संग्रह प्रस्तुत किये गये हैं, उन्हें देखने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि बहुत से गीतों की रचना निर्दोश मुस्लिम सामन्तों के शासन काल में हुई होगी । हिन्दी प्रदेश की ज़ेक बोलियों में ऐसी सनी साध्वी के छोटे मोटे गीत जास्थानों के रूप में उपलब्ध होते हैं, जिसमें उनके रूप लोसुप दूर सामन्त व्याचारियों से सतीत्व की रक्षा के हेतु उनके सनी होने का वर्णन है। लोक साहित्य पथ बढ़ ही अधिक उपलब्ध होता है। कारण इस काल में गद्य साहित्य का निर्माण प्रचुर मात्रा में नहीं हुआ था । इस काल का समस्त धार्मिक और साम्प्रदायिक साहित्य प्रायः लोकाश्रित था । बहुत कम राजा और सामन्त इन सम्प्रदायों में दीक्षित हुए । सैत और भक्त जो राजाश्रय में रहना नहीं चाहते थे, वे इन सम्प्रदायों में प्रविष्ट होगये । सब पूछा जाये तो उस समय के लोकाश्रित और धर्माश्रित काव्य को एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता । धर्माश्रित काव्य के अनिश्चित एक प्रकार का अन्य काव्य इस काल में प्राप्त होता है जिसे राज्याश्रित साहित्य की सीला से अभिहित किया जाता है ।

तत्कालीन राज्याश्रित साहित्य पर पुनर्जागरण के बान्दोलन का प्रभाव बहुत कम पड़ा है, सामन्ती प्रभाव उस पर अधिक है । सन् १२०६ ई० से १५२६ ईस्वी तक गुलाम वंश, सिलजी, तुगलक, सैयद और

लोदी वंश के शासकों ने देश पर शासन किया, यह युग घोर संघर्ष का है। ऐसी स्थिति में राज्याश्रयी साहित्य को विकास का अवसर नहीं मिला। गुलाम वंश के प्रसिद्ध बादशाह बलवन के वाश्रय में अमीर खुसरो (१२५४-१३२५ ई०) का साहित्य रचा गया। इसके बाद बहुत काल तक किसी राज्याश्रयी कवि का उल्लेख नहीं मिलता। जौनपुर और बंगाल में स्थापित मुस्लिम राज्यों में मुख्य रूप से अरबी, फारसी के कवियों को प्रोत्साहन दिया गया। महाकवि विद्यापति ने मिथिला के राजा शिवसिंह के वाश्रय में (१३६८-१४७५ ई०) अपनी काव्य कला को विकसित किया। सन् १५२६ ई० में दिल्ली की सत्ता मुगलों के हाथ में आई, परन्तु साहित्यिक वातावरण का निर्माण बाबर और हुमायूँ के पश्चात् अकबर के काल में ही हुआ। रहमिम (१५५३-१६२७ ई०), गंग (१५३८-१६२९ ई०), बीरबल (१५८५ ई० ई मृत्यु), नरहरि, टीडरमल आदि कवियों को अकबर का वाश्रय प्राप्त था। अकबर ने हिन्दू कवियों का भी सम्मान किया और उनके द्वारा प्रस्तुत की गई रचनाओं को हृदयंगम कर उनकी प्रशंसा की। अकबर के समकालीन जोरहा नरेश महाराज इन्द्रजीत सिंह के वाश्रय में आचार्य केशव की काव्य कला विकसित हुई, प्रसिद्ध कवि पद्माकर तो जयपुर के महाराज जगतसिंह, उदयपुर के महाराज भीम सिंह आदि कई राजाओं के वाश्रित रहकर कविता करते रहे। अकबर के बाद जहांगीर और शाहजहाँ के दरबार में हिन्दू कवियों को वह सम्मान नहीं मिला जो अर्पित था। शाहजहाँ के वाश्रित सुन्दर कवि (१६३९ ई० कविता काल) का उल्लेख मिलता है। ये राज्याश्रित कवि अपने वाश्रितों को प्रसन्न करने के लिए अधिकतर विलासपूर्ण काव्य का ही सृजन किया करते थे, परन्तु पन्द्रहवीं, सोलहवीं शताब्दियों में धार्मिक और सांस्कृतिक वातावरण होने पर जनता में नव-चेतना का उदय हुआ तो शिवाजी और छत्रसाल के वाश्रय में रहने वाले कवि

फड़क उठे, उनके वाग्नित भूषण, सूदन और लाल ने शुद्ध वीर काव्य का सृजन किया। राणा प्रताप के शौर्य से प्रभावित दुरसा जी चारण ने "प्रताप चौहरी" का निर्माण किया^१। इस प्रकार राज्य के वानावरण में परिवर्तन होने पर राज्याश्रयी साहित्य में भी परिवर्तन होता रहा परन्तु यह साहित्य सदा ही जन जीवन से दूर रहकर राज्याश्रय में फसला फूलता रहा। जनजीवन से दूर रहने के कारण यह साहित्य तत्कालीन साहित्य धारा से मेल नहीं खाता था, यही काल था आगामी शताब्दियों में यह अधिक महत्वपूर्ण नहीं रह गया।

धार्मिक सम्प्रदायों में दीक्षित होने के लिए जानि पांति का कोई भेद नहीं था। तत्कालीन साहित्य मध्यमर्गीय चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति करता है। इस युग के धर्माश्रयी साहित्य को प्रमुख रूप से दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है कि प्रथम नाना पुराण निगमागम सम्मत सगुण भक्ति धारा और द्वितीय जैनियों, बौद्धों, योगियों, सूफियों आदि सम्मिलित प्रभाव को लेकर चलने वाली निर्गुण भक्ति धारा।

दक्षिण के आत्मार भक्तों ने सर्वप्रथम विष्णु के दोनों रूपों राम और कृष्ण के प्रति व्यक्तिगत रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करके निष्काम भाव से उनकी उपासना की। इनकी भक्ति दास्य, वात्सल्य और कान्ता तीनों रूपों की थी। ग्यारहवीं शताब्दी में रामानुजाचार्य ने आठवर भक्ति को वेद सम्मत सिद्ध किया, और इसके बाद ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक होने वाले सभी आचार्यों रामानुज, मध्व (११६६-१३०३ ई०) निम्बार्क (११६२ ई०) विष्णु स्वामी और वल्लभ ने भक्ति को वेद सम्मत सिद्ध किया। इन आचार्यों ने समस्त उत्तरी भारत

N. Panigrahy
 में भक्ति का प्रचार किया, इस प्रकार दक्षिण से उमड़ने वाली भक्ति का प्रबल प्रवाह प्राचीन पंचरात्रिक भक्ति से समन्वित हो समस्त उर्वरी भारत पर छा गया। पन्द्रहवीं शताब्दी में रामानुजाचार्य के शिष्य रामानन्द ने विष्णु के स्थान पर रामोपासना पर बल दिया। दूसरी ओर वल्लभाचार्य जी ने प्रेममूर्ति कृष्ण को लेकर समस्त जनता को रसाप्लावित कर दिया। राम और कृष्ण को लेकर अनेक भक्त कवियों ने शाश्वत साहित्य का सृजन किया। तुलसीदास ने अपने काव्य के द्वारा सामाजिक विरुद्धता नष्ट करने और जीवन में समरसता स्थापित करने का प्रयास किया। सूरदास ने स्फुट पदों में ब्रज भाषा के माध्यम से कृष्ण लीला का गान किया। प्रमाणाँ के जमाव में सूर को ही ब्रज भाषा का वादि कवि स्वीकार किया जाता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने भी ब्रज भाषा का वास्तविक प्रारम्भ सूरदास से ही स्वीकार किया है। उन्होंने लिखा है, " ब्रजभाषा और उसके साहित्य का वास्तविक प्रारम्भ उस तिथि से होता है, जब गौवर्धन में श्रीनाथ जी के मन्दिर का निर्माण पूर्ण हुआ और महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भगवान् के स्वरूप के सम्पुल्ल नियमित रूप से कीर्तन की व्यवस्था करने का संकल्प किया। सूरदास ब्रजभाषा के सर्वप्रथम तथा सर्वप्रधान कवि हैं।" डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने स्पष्ट रूप से तो सूर को ब्रज भाषा का प्रथम कवि स्वीकार नहीं किया, परन्तु ब्रज भाषा का उदयकाल १६ वीं शताब्दी स्वीकार कर उन्होंने सूर को ही प्रथम कवि मानने का प्रयत्न किया है।^२ ब्रजभाषा से पूर्व शौरसेनी अपभ्रंश, अवहट्ठ तथा फिल भाषाएँ प्रचलित थीं, इन सभी भाषाओं की उत्तराधिकारिणी ब्रज भाषा हुई। अपभ्रंश भाषा की रचनाएँ सातवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक

१- ब्रजभाषा - धीरेन्द्र वर्मा- हिन्दुस्तानी स्कैडेमी, प्रयाग १९५४ पृ० २१, २२

२- भारतीय वार्य भाषा और हिन्दी- सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या - पृ० १९५४

उपलब्ध होती हैं, परन्तु दसवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक का अपभ्रंश साहित्य विशेष उन्नतिशील प्रतीत होता है। ग्यारहवीं शताब्दी के पश्चात् की जो सामग्री प्राप्त होती है, उसमें हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण के दोहे सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। अधिकांश दोहों में मार्मिक व्योक्ति द्वारा जीवन की सहज अभिव्यक्ति हुई है। भुज और मृणालवती से सम्बन्धित दोहे किसी प्रवर्तित कथा के वर्ण रूप प्रतीत होते हैं। इन दोहों में वीर और शृंगार दोनों रसों की चर्चा विशेष रूप से प्राप्त होती है। जिस अपभ्रंश का परिवय हेमचन्द्र ने अपने दोहों में दिया है, वह निश्चित रूप से उनसे पहले से ही चली जा रही थी। परन्तु गुलेरी जी हेमचन्द्र की अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी मानते हैं, उन्होंने स्पष्टतः कहा है कि "विक्रम की सातवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश की प्रधानता रही, और फिर वह पुरानी हिन्दी में परिणत होगई"। शौरसेनी अपभ्रंश जब विकसित होकर राष्ट्र भर में व्याप्त हो गई तो उसका परिवर्द्धित रूप ही बाद में अवहट्ठ नाम से अभिहित हुआ। अपभ्रंश का विकसित रूप अवहट्ठ राजस्थान में फाल नाम से प्रसिद्ध था। अब्दुर्रहमान कृत सदेशरासक "अपभ्रंश में रचित महत्वपूर्ण रचना है। इस रचना की भाषा लेखक की अति साहित्यिक और पाण्डित्यपूर्ण रुचि के कारण अत्यन्त परिनिष्ठित और दृढ़ है। इसमें लेखक ने एक वियोगिनी की विरहगाथा तीव्र भावाकुल संवेदना की अभिव्यक्ति हेतु दो सौ छन्दों में चित्रित की है। शौरसेनी अपभ्रंश का कनिष्ठ रूप अवहट्ठ पूर्वी प्रान्तों में साहित्यिक रचना का माध्यम हो गया था। अवहट्ठ में कवि विद्यापति की कीर्तिलता, कुछ फुटकल प्रशस्तियाँ एवं बंगाल, बिहार में फैले सिद्धों के दोहे और गान उपलब्ध होते हैं। कवि विद्यापति ने जब जनता के मनोभावों के अनुसार प्रेम, शृंगार या भक्ति पूर्ण गीतों

का सृजन किया तो अपनी लोक भाषा का ही प्रयोग किया, पर जब राज स्तुति हेतु काव्य निर्माण किया तो उस काल की पद्धति के अनुकूल ब्रज भाषा की चारण शैली और उसके तत्कालीन अवदृढ रूप को ही अपनाया। फिगल भाषा का सौंदर्य, 'प्राकृत फालम्' के कुटकल पदों में दृष्टिगत होता है; पर इस सौंदर्य का निखार 'पृथ्वीराज रासो' में पूर्ण हुआ है। इसके अतिरिक्त कई अन्य रासो काव्य भी फिगल भाषा में लिखे गए, जिनमें नल्लसिंह का विजय पाल रासो एवं नरपति नाल्ल का 'वीरलदेव रासो' विशेष महत्वपूर्ण हैं।

ब्रज भाषा के प्राप्त ग्रन्थों में सर्व प्राचीन अग्रवाल कवि कृत 'प्रथुम्न चरित' है, जिसका निर्माण काल १३५४ ईस्वी है, और जिसका छप्पा नागरी प्रचारिणी सभा की सौज रिपोर्टों के अनुसार १९२३-२५ में लगा। 'प्रथुम्न चरित' के अनन्तर 'हरिचन्दपुराण' के विषय में ज्ञात हुआ परन्तु तब से लेकर आज तक ब्रज भाषा के इतने ग्रंथों की सूचना मिल चुकी है कि हरिचन्द पुराण और उसके लेखक के विषय में जानने की न किसी ने आवश्यकता समझी और न किसी को अवकाश ही मिला। 'विष्णु दास' भी ब्रजभाषा के मुख्य कवि थे। सूर से पूर्व न ब्रज भाषा में शक्ति थी और न माधुर्य ही, विष्णु दास जी ने कृष्ण भक्ति के मधुर और मार्मिक काव्य के हेतु पृष्ठभूमि तैयार की। १९२६-२८ ई० की नागरी प्रचारिणी सभा की सौज रिपोर्टों के अनुसार विष्णुदास की 'रुक्मणि मंगल' और 'स्नेह लीला' दो रचनाएँ प्रकाश में आईं। ईस्वी सन् १९०० की नागरी प्रचारिणी सभा की सौज रिपोर्टों के अनुसार कवि दामोदर कृत 'लक्ष्मणसेन पद्मावती कथा' के विषय में ज्ञात हुआ। सौज रिपोर्ट में इस प्रति का लिपि काल संवत् १६६६ उल्लिखित है। दामोदर की भाषा प्राचीन ब्रजभाषा है, पर

उस पर राजस्थानी का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। दामो के बाद ईंगर बावनी, मानिक कवि, कवि ठक्कुरसी आदि का पता चलता है, पर उनकी रचनाएँ उतनी महत्वपूर्ण नहीं। 'क्षिताई वार्ता' 'ब्रज भाषा की उत्कृष्ट महत्वपूर्ण रचना है। चतुर्भुज दास कृत मधुमालती भी महत्वपूर्ण है, जिसका रचनाकाल संवत् १५५० विक्रमी के अन्तर ठहरता है।

सिद्ध और नाथों के युग में ही एक दूसरी धार्मिक काव्यधारा भी विकसित हुई जो जैन काव्यधारा कहलाई। अप्रभंश के अधिकांश ग्रंथ जैन साहित्य से ही सम्बन्धित हैं। इन ग्रन्थों में जनजीवन का यथार्थ चित्रण उपलब्ध है, पर शृंगार और प्रेम की भावना से भी ये अछूते नहीं। नारी के शृंगारिक रूप, यौवन तथा कृज्जन्य कामोन्मत्तता आदि का चित्रण भी यहाँ बड़ी सूक्ष्मता और बारीकी से हुआ है। अप्रभंश के ये प्रबन्ध चरित या 'चरित' नाम से विख्यात हैं : जैसे - पञ्च चरित, जसहर चरित, करकण्ठ चरित, सनत्कुमार चरित, नैमिनाथ चरित एवं कुमारपाल चरित आदि। अप्रभंश के इन चरित काव्यों के प्रेम का प्रारम्भ एक ही तरह से होता है। गुण चर्चा सुनकर, चित्र दर्शन या साक्षात् दर्शन से नायक की ओर से थोड़ा बहुत प्रयत्न करने पर नायक नायिका का विवाह सम्पन्न हो जाता है। अप्रभंश के सिद्ध साहित्य में गुरु-माहात्म्य, रुद्धि सण्डन, जाति भेद पर प्रहार, सहज रस का गुण गान और शून्य संवरण आदि की मिश्रित भावनार्य वर्णित हैं। ये वर्णन या तो धर्म प्रचारक नीरस काव्यों के रूप में उपलब्ध होते हैं या फिर तत्कालीन लोक गीतों के अंश प्रतीत होते हैं।

जिस समय देश में वज्रयानी और सहजयानी तान्त्रिकों की गृह्य साधनावर्गों का प्रचार हो रहा था, सिद्ध और नाथ पंथी योगियों की आचार निष्ठा का बोल बाला था। चौदहवीं शताब्दी के अन्तर दक्षिण

से प्रान्तिशील रामभक्ति की जीवन प्रेरणा ग्रहण कर राघवाचार्य ने उत्तर भारत में ^{पठारपर्वत त्रिज्या । उत्तरी भारत में} भक्ति आन्दोलन की स्थापना करने वाले रामानन्द जी इन्हीं के शिष्य थे । रामानन्द जी ने उत्तरी भारत के योग और दक्षिण की भक्ति का समन्वय कर निर्गुण भक्ति का बीजारोपण किया । महात्मा कबीर इन्हीं के शिष्य थे जिन्होंने जन परिचित भाषा के माध्यम से अपनी आवाज जनता तक पहुँचाकर जनता में जागृति उत्पन्न करने का अमूल्य प्रयत्न किया । कबीर के साथ नानक, पीपा, सैत, रैदास आदि सन्तों ने जन जागृति का संकरीला मार्ग अपनाया ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ईश्वरी सन् की सातवीं शताब्दी से अफसस निरन्तर प्रवाहित होती हुई हिन्दी काव्य धारा में भक्ति का प्रवाह मन्दाकिनी वत् जनता के तन और मन दोनों को शान्ति और शुभ्रता प्रदान करता रहा । राजनीतिक और सामाजिक विध्वंसकारकों के युग में जनता को जब जब निराशा का अनुभव हुआ, तब तब भक्ति की प्रशान्तमयी क्रोड़ में आकर उसने शान्ति लाभ किया । अतः जिस प्रकार ब्रज भाषा का प्रादुर्भाव सूर के युग में अचानक ही नहीं हो गया, वह शैरसेनी अपभ्रंश, पिंगल आदि रूपों में पहले से ही वर्तमान थी उसी प्रकार ब्रजभाषा में निर्मित कृष्ण भक्ति साहित्य भी सूर के युग में अचानक ही प्रकट नहीं हो गया, वह उनसे पूर्व से चली जाती हुई परम्परा की देन है। ब्रजभाषा से पूर्व की भाषा शैर-सेनी अपभ्रंश में श्रीकृष्ण सम्बन्धी अनेक काव्यों का सृजन हुआ । इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना पुण्यदन्त कवि का महापुराण है, जिसका निर्माण मागवत के आधार पर हुआ है, एवं जो कृष्ण जीवन के विशद चित्रों से परिपूर्ण है।

पुण्यदन्त ने अपने महापुराण में काव्य सम्बन्धी नवर्स, नायक नायिका भेद आदि की भी योजना की है। १२ वीं शताब्दी में हेमचन्द्र द्वारा संकलित दोहों में भी कुछेक दोहे कृष्ण चर्चा से सम्बन्धित हैं। कृष्ण भक्ति काव्य का वास्तविक स्वरूप फिंल ब्रज भाषा के माध्यम से १४ वीं शती के आस पास प्रकट होने लगा। 'प्राकृत पैंगलम्' में जिसका रचना काल चौदहवीं शती से पूर्व स्वीकार किया जाता है, कृष्ण सम्बन्धी कई पद प्राप्त होते हैं। कुछ पदों में प्रेम भक्ति का भी अति सुन्दर विवेचन मिलता है। ब्रज भाषा में कृष्ण भक्ति सम्बन्धी काव्य का दूसरा रूप सन्त कवियों की रचनाओं में द्रष्टव्य है। सन्त कवि प्रायः निर्गुण मत के माने जाते हैं, पर सगुण भक्तों के समान भगवान् के प्रेम की प्राप्ति ही उनका भी विवेच्य रहा है।

वतः ब्रज भाषा में कृष्ण भक्ति काव्य सूर के समय में एकाएक ही प्रादुर्भूत नहीं हुआ, वरन् इसकी परम्परा अति प्राचीन है। ब्रज भाषा के कृष्ण काव्य का प्रारम्भ जयदेव और विद्यापति से प्राचीन नहीं, तो कम से कम उनके समय से तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। 'प्राकृत पैंगलम्' की रचनाओं को दृष्टि में रखते हुए अगर यह कहें कि हिन्दी प्रदेश की किसी भी बोली में इतना प्राचीन कृष्ण काव्य नहीं मिलेगा। जैसा ब्रजभाषा में है तो अतिशयोक्ति न होगी। मध्ययुगीन कृष्ण भक्त कवियों की प्रतिभा अपूर्व है, उनके काव्य में माधुर्य सौष्ठव और अभिव्यक्ति कौशल की कमी नहीं, यह मानना पड़ेगा, परन्तु उनकी कविता में जो शक्ति स्फूर्ति और मृदुता है, वह केवल उनकी साधना का ही परिणाम नहीं, वरन् दसवीं शताब्दी से चली आती हुई कृष्ण काव्य की अविच्छिन्न परम्परा का भी उसमें योगदान है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "कृष्ण का वर्तमान रूप नाना, वैदिक, अवैदिक, आर्य, अनार्य धाराओं के मिश्रण से बना है और

इस प्रकार शताब्दियों के उलट फेर के बाद प्रेम, ज्ञान, वात्सल्य, दास्य वादि विविध भावों के मधुर बालम्बन पूर्ण ब्रज श्रीकृष्ण रचित हुए। माधुर्य के वन्निरिक्त उद्ग्रेक से प्रेम और भक्ति का प्याला लबालब भर गया। इसी समय ब्रजभाषा का साहित्य बनना शुरू हुआ^१। परन्तु जयदेव के गीत गोविन्द से पूर्व का कोई साहित्य उपलब्ध न होने के कारण भक्ति साहित्य का प्रारम्भ जयदेव से ही माने जाने लगा। डा० शिव प्रसाद सिंह ब्रज भाषा में कृष्ण काव्य की परम्परा का प्रारम्भ कम से कम १२ वीं शताब्दी से स्वीकार करते हैं^२। वैसे भागवत तो कृष्ण काव्य का उपजीव्य ग्रंथ है ही, जिसके अनुकरण पर आगे जाने वाले अनेक कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य का सृजन किया।

भक्ति के साथ २ शृंगारिक भाव भी मध्ययुगीन कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं में उपलब्ध होते हैं। वे भी छठवीं सान्नी के वाङ्मय में दृष्टिगत होते हैं। हाल की गाथा सप्तशती में शृंगार के दोनों पदों का जो मिश्रण प्रस्तुत किया गया है, वह इतना मार्मिक है कि परवर्ती कालीन सूर वादि कवियों ने उन्हें बिल्कुल अपना सा लिया। हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण में संकलित दोहों में भी प्रेम और शृंगार की सुन्दरतम अभिव्यक्ति हुई है। विरह वर्णन की उक्तियाँ भी स्वाभाविक बन बढ़ी हैं। वैसी ही उक्तियाँ सूर की गोपियों के विरह वर्णन में भी उपलब्ध होती हैं। रासो काव्यों में वर्णित नख शिख शैली का प्रभाव भी सूर वादि पर कम नहीं पड़ा। संदेश रासक में नायिका का रूप चित्रण रूढ़ शैली पर आधारित है, पर उसमें उपमानों के चयन में कवि की अन्तर्दृष्टि और सूक्ष्म बुद्धि का आभास होता है।

अतः मध्ययुगीन कृष्ण भक्ति साहित्य अपनी भाषा

१- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी- सूर साहित्य- संशोधित संस्करण-१९५६

पृ० ११ तथा १६

२- शिव प्रसाद सिंह - सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य- पृ० २६०

और भावों के लिए पूर्ववर्ती साहित्य का कृणी है। पूर्ववर्ती युग में जैसे जैसे राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियाँ परिवर्तित होती गईं, वैसे वैसे साहित्यिक परिस्थितियों में भी अन्तर आता गया। परन्तु मध्य युग में सूर के समय तक तत्कालीन काव्य रूपों और साहित्य में पर्याप्त निसार आ गया था। फलस्वरूप मध्य युगीन कवियों के काव्य से वह सौष्ठव स्पष्ट लक्षित होने लगा। अष्टकापी कवियों ने रास लीला का जो सौंदर्यपूर्ण वर्णन किया है, उस पर पूर्ववर्ती लीला काव्यों की ह्राप दृष्टिगत होती है। डा० दशरथ जोषा ने ब्रजभाषा के लीला काव्यों के विकास के सम्बन्ध में लिखा है, बारहवीं शताब्दी में वीप देव रचित श्रीमद्भागवत में कृष्ण रास लीला के प्रमाण से तथा राजस्थानी रास की उपलब्धि से तत्कालीन कृष्ण रास लीला की रास पद्धति का अनुमान किया जा सकता है।^१

चौदहवीं शताब्दी में 'प्राकृत फैलम्' में भी कृष्ण लीला से सम्बन्धित पद आता है। इसी रास लीला का वर्णन आगे चल कर मध्य युगीन कृष्ण भक्तों ने किया है। इसी प्रकार षड्कृत और बारहमास का जो वर्णन नन्ददास आदि कवियों ने अपने विरह काव्यों में किया है, वह रासो ग्रंथ एवं प्राकृत फैलम् आदि के दोहों में भी द्रष्टव्य है। वस्तुतः कृष्ण भक्ति काव्य भागवत, गीतगोविन्द और विद्यापति की प्रेरणा का ही परिणाम नहीं है, अपितु रासो ग्रंथ, हेम व्याकरण के दोहों एवं प्राकृत फैलम् की रचनाओं में भी उसके बीज उपलब्ध हैं। इसी प्रकार ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में शृंगारिक चेतनज्ञ भी जयदेव से प्राचीन है, जो सूर आदि के काव्य में पल्लवित विकसित हुई।

कृष्ण मन्त्रों के समान ही सूफी सन्त कवियों की प्रेम पद्धति भी पूर्ववर्ती कवियों की वर्णन पद्धति से बहुत अंश तक साम्य रखती है। भारत में सूफी प्रेमास्थानों की प्राप्ति के पूर्व भी हिन्दी में प्रेम गाथाओं का प्रचार था। ये प्रेम गाथाएँ मुख्य रूप से पौराणिक रचना या लोक गीतों के रूप में ही प्रचलित थीं। इनका स्वरूप या तो शुद्ध प्रेम कथा है, या फिर इनके द्वारा चमत्कारपूर्ण अलौकिक घटनाओं के माध्यम से कौतूहल जाग्रत कर सुन्दर ढंग से धार्मिक उपदेशों की व्याख्या की गई है। विरहणियों के सन्देशों को लेकर संस्कृत में मेघदूत, हंसदूत, पवन दूत एवं वसन्तश साहित्य में सन्देश रासक की रचना हुई। पौराणिक रचनाओं के रूप में जो प्रेम गाथाएँ उपलब्ध हैं, उनमें ऊष्णा वनिरुद्ध, नलदमयन्ती, अमिशान शाकुन्तलम् आदि प्रमुख हैं। सूफी प्रेम कथार्थ इस परम्परागत प्रेम कथाओं से पूर्ण रूपेण प्रभावित हुई। चरित काव्यों की निजन्धरी कथाओं, रोमांचक व काल्पनिक घटनाओं एवं ऐन्द्र-जालिकता का प्रभाव भी सूफी प्रेम कथाओं पर लक्षित होता है। इसके अतिरिक्त बहुत सी कथानक रुढ़ियाँ जैसे कहानी कहने वाला सुग्गा (जायसी कृत 'पद्मावत में हीरामन) स्वप्न में प्रियदर्शन (नूर मुहम्मद कृत इन्द्रावती) षड्कृत तथा बारहमास के माध्यम से विरह वर्णन (पद्मावत में नागमती विरह वर्णन) सिंहल यात्रा वर्णन (करकण्ठ चरित तथा पद्मावत में सिंहल यात्रा वर्णन उपलब्ध है)। पशु पक्षियों की भाषा सम्भरना (मधु मालत) उजाड़नगर में किसी सुन्दरी से साक्षात्कार तथा उसकी रक्षा हेतु राजास का वध (मधु मालत में प्रेमा से) आदि भी सूफी रचनाओं में चरित काव्यों के समान ही हैं। रासी साहित्य में भी प्रेम कथार्थ हैं, परन्तु उनका सम्बन्ध वीर रस पूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं से रहता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कृष्ण भक्त कवियों की रवनार्य व सूफियों की प्रेम कहानियाँ स्वतः प्रादुर्भूत नहीं होगईं उनके गर्भ में सदियों से चली जाती हुई परम्परा निहित है, साथ ही न तो ये दूसरे देशों की देन हैं और न उनके प्रभाव से प्रभावित हो। यह बात दूसरी है कि विभिन्न परिस्थितियों के प्रभावों को फलते हुए इनका निष्कलुष स्वरूप मध्य युग में ही प्रकट व विकसित हो पाया हो।

द्वितीय अध्याय

सूफी मत का आविर्भाव और विकास

सूफीमत का वाणिर्माण और विकास :

इस्लाम की प्रमुख भाषाओं अरबी, फारसी और तुर्की में रहस्यवादियों को ही 'सूफी' नाम से अभिहित किया गया है और उन रहस्यवादियों अथवा सूफियों के दर्शन को ही 'तसव्वुफ' अथवा सूफीमत कहा गया है। 'तसव्वुफ' अथवा सूफीमत की अनेक परिभाषाएँ की गई हैं।

फरीदुद्दीन अक्बर ने सन्तों के जीवन सम्बन्धी अपनी पुस्तक 'तज किरातुल औलिया' में सूफीमत की सत्तर परिभाषाओं का विवेचन किया है। वास्तव में ईश्वरीय सत्य का उद्घाटन करना और मानवीय वस्तु का त्याग ही सूफी धर्म का सार है। निकल्सन के अनुसार यह परिभाषा ही सूफी धर्म की सम्भवतः सबसे प्राचीन परिभाषा है। हुज्वीरी ने अपने कश्फुल महजुब में सूफियों की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहा है कि 'सच्चा सूफी वही है जो अपवित्रता को पीछे छोड़ आया है।' सूफी सिद्धान्तों पर दृष्टिपात करते हुए वे आगे कहते हैं, 'सूफियों के लिए सूफी सिद्धान्त सूर्य से भी अधिक स्पष्ट है उन्हें किसी प्रकार की व्याख्या की अपेक्षा नहीं फिर भी समस्त विश्व उसकी अपने अपने ढंग से व्याख्या करता है यह दूसरी बात है कि उसने उनका अर्थ सम्झा है अथवा नहीं।'

जूल- नून मिस्त्री ने सूफी वास्तव में उसी को माना

१- इस्लाम के सूफी साधक- निकल्सन अनु० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी पृ० १०

२- Litray History of the Arabs- R.A. Nicholson pp 385

3. Kashf-Al Mahjab- Hujwiri- pp 32

4. ,, ,, pp 34

है जो अपनी भाषा द्वारा ही अपनी अवस्था का परिचय देता है, जो कुछ वह नहीं है, उसके विषय में कुछ नहीं कहता और जब वह शान्त रहता है तो उसका चरित्र ही उसकी अवस्था को बताता है, उसकी अवस्था ही यह घोषित करती है कि उसने समस्त सांसारिक बन्धनों से विच्छेद कर दिया है।

जुनैद ने बतलाया है कि "तसव्वुफ" का तात्पर्य है कि ईश्वर तुम्हें निज स्वार्थ हेतु जीवन धारण न करने देकर ऐसा बनादे कि तुम उसी के लिये जीवन धारण करो।^२

अबुल हसन तूरी सूफी मत की परिभाषा देने हुए कहते हैं कि "सूफी मत से तात्पर्य समस्त निजी आनन्दों का परित्याग करना है"^३ और सूफी उसी को स्वीकार करते हैं जो न तो स्वयं किसी पर अधिकार रखता है और न किसी के अधिकार में ही रहता है। इब्न अल्जीली सूफी मत को बिना आकार का तत्त्व मानते हैं।^४

इस प्रकार सूफीमत की विभिन्न परिभाषाएँ हैं। परिभाषाओं के समान ही सूफीमत के मूल श्रोत के विषय में भी मत भेद हैं। विद्वानों ने इसकी व्युत्पत्ति के विषय में विभिन्न मन्तव्य प्रकट किये हैं। अरब विद्वान् अलबरुनी^५, प्रो० इनायत खाँ तथा हुज्वीरी सूफी शब्द की उत्पत्ति "सफ़ा" से मानते हैं। उनके अनुसार पवित्र लोग ही सूफी कहलाते।

१- Kashf Al Mahjub - Hujwiri pp 36

२- Ibid pp 37

३- Ibid pp 37

४- Ibid pp 37

५- Ibid pp 37

६- अलबरुनीज ईडियॉ अनु० सवाऊ - पृ० ३३

७- A sufi message of spiritual liberty- Inayat Khan pp 26

८- Kashf Al Mahjub- Hujwiri pp 32

प्रो० शुस्तर्री ने उन लोगों को सूफी माना है जिन दरेविश व्यक्तियों ने मदीना में मुहम्मद साहब द्वारा निर्मित मस्जिद के बाहर 'सूफ़कः' अर्थात् चबूतरे पर शरण ली थी और जो पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए ईश्वर चिन्तन में लीन रहते थे। ब्राउन, आरबेरी, मीरवली-उद्दीन, सुईमासिजो, अबूबक्र अलकलाबाधी, एवं अबू नस्त्रजलसरजि ने 'सूफ' (ऊन) से सूफी शब्द की उत्पत्ति मानी है। सरजि ने अपनी पुस्तक 'किताबजलुमा' में 'सूफी' शब्द पर विचार करते हुए बतलाया है, कि 'सूफी' शब्द अरबी के 'सूफ' शब्द से निकलकर है जिसका अर्थ ऊन है। भाषाशास्त्री भी इस व्युत्पत्ति को ठीक मानते हैं। ब्राउन ने इस मत की पुष्टि में कहा है कि पर्सिया में इन रहस्यवादी साधकों को 'पश्मीना पोश' (ऊन धारण करने वाला) कहा गया है। नोएल्डके ने भी इसी व्युत्पत्ति को उचित ठहराते हुए कहा है कि इस्लाम की प्रथम दो शताब्दियों में वस्तुतः लोग ऊनी वस्त्र का व्यवहार करते थे और विशेष रूप से संन्यासी इसका प्रयोग करते थे। सूफी अनुभव सिद्ध ज्ञान को महत्व देने हैं और ग्रीक शब्द सोफिया का अर्थ ही ज्ञान है इस कारण सोफिया से भी सूफी शब्द की व्युत्पत्ति बतलाई जाती है। परन्तु अधिकांश मत 'सूफ' से ही 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति मानने के पक्ष में हैं।

-
1. Outlines of Islamic culture by A.M.A Shushetery pp 347
 2. Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol. XII pp 10
 3. Encyclopaedia of Islam pp 681
 4. A literary History of Persia- E.G. Brown Vol. I pp 417
 5. Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol. XII pp 10
 6. Encyclopaedia of Islam Vol. IV pp 681

‘सूफी’ शब्द किसी व्यक्ति के नाम के साथ उपाधि रूप में जुड़ा हुआ कब से प्राप्य है इसका ठीक २ फत्ता नहीं चलता पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह शब्द मुहम्मद साहब के बिधन के पश्चात् ही प्रचलित हुआ क्योंकि सूफी मत का पर्यायवाची शब्द तसव्वुफ़ खिजरी स० ३१२ में संगृहीत सिताह शब्दकोश में वर्तमान नहीं है। जामी का कथन है कि सर्वप्रथम इस शब्द को अपने नाम के साथ जोड़ने वाले कूफ़ा के अबू हाशिम थे। निकलसन का कहना है कि अरबी लेखकों में सर्वप्रथम बसरा के जाहिज़ द्वारा सूफी शब्द का प्रयोग हुआ। इस प्रकार सूफी शब्द का मूल उद्गम कूफ़ा और बसरा ही माना जाता है। धीरे धीरे रहस्यवादी प्रवृत्ति वृद्धि को प्राप्त होने लगी एवं अब्बासी खलीफ़ों के शासन काल तक तो यह प्रवृत्ति अत्यधिक व्याप्त हो उठी और ‘सूफी’ शब्द का प्रसार अधिक से अधिक होता गया। पहले जहाँ यह शब्द व्यक्तियों के नाम के साथ जुड़ा मिलता था वहाँ क्वास वर्णों के भीतर इसका प्रयोग सम्पूर्ण ईराक के रहस्यवादी साधकों के लिये होने लगा और दो सौ वर्षों के भीतर तो सभी मुस्लिम रहस्यवादी साधकों के लिये इसका व्यवहार होने लगा।

सभी सूफी मुस्लिम रहस्यवादी साधक थे इसी आधार पर कुछ लेखकों का विश्वास है कि सूफी मत का मूल ग्रन्थ कुरान ही है। यही कारण है कि निकलसन आदि विद्वानों ने सूफी मत पर बाह्य प्रभाव स्वीकार करते हुए भी उसे इस्लाम का ही धार्मिक तत्त्व मान बतलाया।

१- Islamic Sufism - Sirdar Iqbal Ali Shah pp 10

2. Nafahat Ul Urs-Ed. W. Nassau lees, Calcutta- pp 34

3. Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol. XII(1921) pp10

4. Studies in Islamic Mysticism- R.A. Nicholson pp 65

सूफी मत के कुछ आधारभूत सिद्धान्त कुरान में प्राप्त हैं। कुरान के अनुसार ईश्वर का वैभव महान् है, इस वैभव के समस्त देव भी नत हैं। इस महान् शक्ति का एक शब्द ही सृष्टि के आदि और अन्त का कारण हो सकता है प्रकृति की अनेक रूपता में उसी के वैभव के दर्शन होते हैं। वह पापियों को कठोर दण्ड देता है और पुण्यात्माओं के समीप है। जो मनुष्य सन्मार्ग पर चलते हैं उन पर वह आनन्द की वृष्टि करता है। ईश्वर परम सौंदर्य रूप है। अल्लाह के सिवाय समस्त वस्तुएँ नाशवान् हैं। कुरान की इस भावना ने ईश्वर से सादा-त्कार की इच्छा जाग्रत की और इस इच्छा को पूर्ण करने के हेतु ईश्वर के आदर्श पुरुष के प्रति प्रेम का आविर्भाव हुआ एवं सांसारिक रति भाव वैवी रति भाव में परिणत होगया। इस प्रकार सूफी मत का मूल ही कुरान में निहित है। इतना होने पर भी सूफी मत के उद्भव में अन्य मतों ने भी योगदान दिया।

कुछ विद्वानों ने लिखा है कि सूफी मत का आविर्भाव बाह्य प्रभाव का प्रतिकूल था। निकल्सन^४ एवं ब्राउन^५ ने सूफी मत के आविर्भाव में नास्तिक मत तथा यूनानी और नवअफलातूनी दर्शन का योग स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त निकल्सन ने ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म आदि अन्य विचार

-
1. The Glorious quran- Translated by Marmderke Pickthall pp 5.8.29
 2. Ibid pp 5.57.4
 3. The Encyclopaedia of Islam pp 684
 4. Literary History of Arab-R.A. Nicholson pp 389
 5. Literary History of Persia- Brown pp 420

धाराओं से भी इसको प्रभावित होना माना है। कुछ विद्वान् सूफी मत को आर्य जाति के धार्मिक विकास के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ स्वीकार करते हैं तो कुछ इसके आविर्भाव को शामी धर्म की विजय के विरुद्ध आर्यों की प्रतिक्रिया मानते हैं।

इस प्रकार सूफी मत के आविर्भाव में किसी एक भावना ने योगदान नहीं दिया। अफितु इसमें योगदान करने वाले बहुत से तत्व हैं। कोई भी मत पूर्ण रूप से सूफी मत का उद्गम स्थल नहीं माना जा सकता। निकल्सन और ब्राउन सूफी मत का उद्भव यूनानी और नवअफलातूनी दर्शन से मानते हैं। उनके अनुसार प्रारम्भ से ही यूनानी संस्कृति से इस्लाम का संपर्क बना रहा और यूनानी दर्शन साहित्य और चिकित्सा शास्त्र का अनुवाद अरबी भाषा में होना रहा। उनका कथन है कि "यूनानी प्रभाव के कारण ही इस्लाम के प्रारम्भिक संन्यास में रहस्यवादी प्रवृत्तियों का समावेश हुआ एवं संन्यास जीवन के क्रिया कलापों को आत्मा की शुद्धि का साधन मात्र माना जाने लगा। सूफी मत को यूनानी संस्कृति से प्रभावित अवश्य माना जा सकता है पर उसके उद्भव का श्रेय पूर्ण रूप से यूनान को नहीं दिया जा सकता। ब्राउन के इस मत का कि "सूफी मत नवअफलातूनी दर्शन की उत्पत्ति है, इकबाल जली शाह ने अपने इस्लामिक सूफिज्म में इस प्रकार स्पष्टन किया है। नव अफला-

1. Encyclopaedia of Religion and ethics - Vol. XII

2. Oriental Mysticism- E.H. Patmer PP 11

3. Literary History of Persia- Brown pp 419

4. Literary History of Arabs- R.A. Nicholson pp 388

5. The Idea of personality in Sufism- Nicholson pp 8

6. Islamic Sufism- Sirdar Iqbal Ali Shah pp 17, 18

तूनी मत भी पूर्ण रूप से सूफी मत का उद्गम स्थल नहीं माना जा सकता कारण मुसलमानों ने नववफलातूनी मत का अध्ययन हिजरी सन् की तीसरी शताब्दी में प्रारम्भ किया था। जो विद्वान् सूफी मत को आर्य जाति के धार्मिक विकास के फलस्वरूप उत्पन्न हुवा मानते हैं एवं जो इसे शामी धर्म की विजय के विरुद्ध आर्यों की प्रतिक्रिया मानते हैं। उनके इन मतों का सफ़्फन करते हुए निकल्सन ने कहा है, “ यदि सूफी मत आर्यों की विरोधी भावना मात्र था तो इस तथ्य की व्याख्या होनी कठिन है कि प्रारम्भिक काल में इस्लाम धर्म के कुछ प्रमुख रहस्यवादी सीरिया तथा मिस्र के रहने वाले थे और अरब थे। ”

सूफी मत में भारतीय योग की क्रियाओं की स्पष्ट छाप है जैसे सूफियों की जिद्द की क्रियाओं में हिन्दू योगियों के कुछ क्रिया-कलाप निहित हैं। प्राणायाम आदि क्रियाएँ सूफी मत को भारतीय हठयोग की देन है। इन्हें देखकर ही शोपेनह्वर² आदि सूफी मत को सम्पूर्ण तथा भारतीय मानते हैं पर निकल्सन के अनुसार वे यह भूल जाते हैं कि इस्लामी सभ्यता पर भारतीय प्रभाव की मुख्य धारा बाद के काल की है तथा मुस्लिम धर्म शास्त्र एवं दर्शन सर्वप्रथम एक ऐसी भूमि में अंकुरित हुए जो यूनानी संस्कृति से सिंचित थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि निकल्सन ने भारतीय प्रभाव को सूफी मत के विकास में सहायक तो माना है पर उसका उद्गम स्थल ही भारतीय है इसके मानने में

1. The Mystics of Islam- R.A. Nicholson pp 9

2. Journal Royal Asiatic Society(1904) pp 131

3. The Mystics of Islam- R.A. Nicholson pp 9

संकोच है। बाद में यह प्रभाव इस्लामी जगत् पर पड़ा इसे वे स्वीकार करते हैं। इसी बात को स्पष्ट रूप से उन्होंने कहा भी है “ ईसाई धर्म एवं नव अफलातूनी दर्शन के साथ साथ बौद्ध धर्म और भारतीय विचारधारा सूफी मत के विकास में सहायक हुए हैं इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । कुछ विद्वान् विचार स्वातंत्र्य को भी सूफी मत के आविर्भाव में सहायक मानते हैं। कहीं कहीं सूफी मत में शरीयत की मर्यादा को लांघ कर विचार स्वातन्त्र्य को प्रथम दिया गया है तथापि अनेक बातें सूफियों ने शरीयत के अनुसार ही ग्रहण की हैं। इस प्रकार सूफीमत के आविर्भाव में किसी एक भावना को कारण नहीं माना जा सकता । शुस्तर^३ी के कथनानुसार ” हम मुस्लिम तत्त्वज्ञान को पूर्वी और पश्चिमी विचारों का सम्मिश्रण मानते हैं जिसमें मुस्लिम सिद्धान्तों का प्राधान्य है। सूफी मत भी इस्लाम का एक धार्मिक तत्त्व ज्ञान ही है। ”

सूफी मत का विकास :

अरब में सूफीमत :

सूफी मत के विकास को समझने के लिये ईसा की सातवीं शताब्दी के पहले तथा बाद की एक दो सदियों में अरब की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक अवस्था को जानना परमावश्यक है। मुहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् सलीफाओं का युग आया और इसी युग में नवीन इस्लाम मत

1. Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol. XII pp 411
2. A literary History of Persia- Browne pp 421
3. Outlines of Islamic Culture - A.M.A. Shushtery Vol.II

पूर्ण प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ । जैसे २ इस्लाम का प्रसार होता गयो उन सलीफावों की शक्ति बढ़ती गई । इसका कारण यह था कि उनके हाथ में राजनीतिक और धार्मिक शक्तियाँ केन्द्रित थीं । धीरे २ सलीफावों की शक्ति क्षीण होती गई और इस्लाम धर्मानुयायी होते हुए भी बहुत से छोटे २ देश स्वयं ही स्वतन्त्र होगये । परन्तु धार्मिक प्रवृत्तिवाले मुसलमानों और सूफियों में सलीफावों के प्रति बहुत अधिक सम्मान के भाव हैं इसका कारण है कि इनका जीवन भी हजरत मुहम्मद के समान ही धर्म परायण और आदर्श का जीवन माना जाता है। सलीफावों के युग में संन्यास और रहस्यवादी वृत्ति को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ । उस युग के साधक सांसारिक विषयों से स्वयं को पूर्ण रूप से रूढ़ थे और ईश्वर से मय होते थे । वे गरीबी में अपना समय व्यतीत करते थे एवं बड़े ही विनम्र थे । परन्तु सलीफावों के पश्चात् उमैय्या सलीफावों का युग आया इस युग के आते आते शासन व्यवस्था उर्ध्वमुख हो गई और शासकों में अत्याचारप्रियता वृद्धि को प्राप्त होगई । ईसा की आठवीं शताब्दी में सुरासान राजनीतिक और धार्मिक आन्दोलनों का मुख्य केन्द्र बन गया । बसरा और कुफा से संन्यास की जो लहर उठी, सुरासान उससे भी बहुत अधिक प्रभावित हुआ । उमैय्या सलीफावों को हराकर अब्बासी सलीफावों के हाथ में शासन की बागडोर आई । इस काल में कुछ प्रमुख साधक हुये जिनके नाम इस प्रकार हैं : " इब्राहीम बिन अद्यम (सन् ७७७ के लगभग) फुजायल बिन अयाज (सन् ८०३ के लगभग) राबिया अल अदाविया (मृत्यु सन् ८०२ के लगभग) । इस काल के साधक वैयक्तिक रूप से अपनी साधना में रत रहते थे वे किसी प्रकार के सम्प्रदाय से सम्बन्धित न थे । इन साधकों में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ थीं , प्रथम तो यह कि वे साधना को बाह्योच्चार की वस्तु न मानकर अन्तर की वस्तु स्वीकार करते थे , यह प्रवृत्ति बसरा के साधकों में

थी और सीरिया के साधक साधना को बाह्य आढम्बर की वस्तु मानते थे । प्रवृत्तियों की यह भिन्नता होते हुए भी सभी सूफी साधक परम्परागत धर्म की पाबन्दी और उसके नियम कानूनों को मानकर ही चलते थे । उस समय तक सूफी सिद्धान्तों का विकास नहीं हुआ था केवल वे 'ख़्वा' शब्द पर विश्वास करते थे जिसका अर्थ है जो कुछ प्राप्त हो उसी से सन्तोष कर लेना । अक्वासी सलीफाजों के ही युग में और ईसा की आठवीं शताब्दी के अन्तिम वर्गों में ही सूफी साधना का मानसिक पदार्थ प्रबल होता गया और सूफी साधकों को ईश्वर की सर्वव्यापकता दृष्टिगत होने लगी तथा प्रत्येक वस्तु में परमसत्ता के दर्शन होने लगे । अक्वासी सलीफाजों के दरबार में विद्वानों का सम्मान और ईसाइयों, बौद्धों तथा मुसलमानों के मध्य आस्त्रार्थ हुआ करता था जिसका प्रभाव सूफी साधकों पर पड़ना स्वाभाविक था ।

ईसा की आठवीं और नवीं शताब्दी में अरब में सूफी मत का विकास एक नवीन दिशा की ओर हुआ । उस काल के प्रमुख सूफी साधकों में दार्शनिकता का समावेश हुआ । इन सूफी साधकों में मारुफ अल-कारखी, जूलून पिस्त्री, बायज़ीद अल-बिस्तामी, मंसूर अल-हल्लाज आदि प्रमुख हैं । ये सूफी साधक केवल बाह्याचार को ही महत्त्व नहीं देते थे अपितु सम्पूर्ण धार्मिक कृत्यों का उद्देश्य वे केवल प्रियतम का प्रेम पाना ही मानते थे । ईश्वर के ध्यान, स्मरण आदि में रत रहकर उन्हें को भुला देना ही उनकी साधना का मुख्य उद्देश्य था । परन्तु ईश्वर के प्रति प्रेम और भाव विह्वलता का उन्हें महंगा मूल्य चुकाना पड़ा कारण इस्लाम के कट्टर अनुयायियों और शासकों से उनका विरोध बढ़ गया । उन्होंने सूफियों के आचार साधना पद्धति और सिद्धान्त सभी का कट्टर विरोध किया । सूफियों के

विरोधी मुसलमानों के विभिन्न सम्प्रदाय होगये जिनमें खारीजी और इमामी प्रमुख हैं। इन सम्प्रदायों की धारणा थी कि सूफियों के सिद्धान्त इस्लामिक प्रवृत्ति के विरुद्ध हैं। सूफियों ने इस विरोध को दूर करने का प्रयास किया और इसके लिये उन्होंने कुरान शरीफ की व्याख्या रूपकों की भाषा में की। इसका इतना प्रभाव सनातन पंथियों पर पड़ा कि उनमें सूफी मत के प्रति श्रद्धा भाव उत्पन्न होगया। 'लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ़ अरब्स' में सन् १८६८ विन अब्दुल्ला अल तस्तरी ने कुछ बातों पर जोर दिया है जिन्हें सनातनपंथी मुसलमान और सूफी साधक लगभग समान भाव से स्वीकार करते थे, वे इस प्रकार हैं, क़ुरान मुहम्मद के वादशों पर चलना, कुरान में वास्था रखना, हराम वस्तुओं का परित्याग, धर्म सम्मत भोजन को ही ग्रहण करना, दूसरों को कष्ट नहीं पहुँचाना एवं नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करना। इन सभी बातों को स्वीकारते हुए भी सूफियों का सिद्धान्तों के विषय में सनातन पंथियों से मन्मैद बना ही रहा और इस प्रकार सूफियों का सनातन पंथियों से पूर्ण ही मत चल पड़ा।

ईरान में सूफीमत :

यद्यपि इस्लाम का प्रादुर्भाव अरब देश में ही हुआ, पर धीरे २ वह ईरान श्याम, फिलीस्तीन, भारत आदि देशों में पहुँच गया। ईरान का स्थान इस्लामी सम्यता और संस्कृति की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। कारण ईरानी साहित्य और परम्परा ने इस्लामी विचार धारा को अत्यधिक प्रभावित किया है। सासानी वंश वालों के राजत्व काल

में इस्लाम धर्म का प्रवेश ईरान में हुआ^१। और धीरे धीरे इस्लाम धर्म ही नहीं बल्कि अरबी भाषा और लिपि तक को ईरानियों ने उत्साहपूर्वक अपनाया। कहा जाता है कि इस्लाम का जो पौधा ईरान में लगा वह सूफी मत के विकसित रूप में अपना फल लाया^२। अरबों ने ईरान को हराया परन्तु ईरानियों ने अरबों की इस्लामिक संस्कृति पर विजय प्राप्त की। जिस समय इस्लाम ने ईरान में प्रवेश किया वहाँ मानी मत का प्रचार था। मानी मत में संसार को दुःख का कारण और सम्पूर्णतया माया, मोह और कलुष से मरा हुआ माना गया है। बुराइयों से बचाव के लिये इस धर्म में संन्यास और ब्रह्मचर्य को महत्व प्रदान किया गया है। बौद्ध धर्म के बहुत से सिद्धान्त इस मत में प्राप्य हैं। सूफियों ने मानी मत की बहुत सी अच्छाइयों को अपनाया। समन्वयवादी प्रवृत्ति जो मानी मत का प्राण है, सूफी मत में प्राप्ति है। सूफियों का स्वतन्त्र दल, जो इस्लामानुयायियों द्वारा जिन्दीक नाम से विख्यात है, मानी मत का अनुकरणकर्ता है।

मानी की तरह ही ईरान में ईसा की पाँचवी शताब्दी में मजदक का आविर्भाव हुआ। बहुसंख्यक ईरानियों ने मजदक के सिद्धान्तों को मान्यता प्रदान की। मजदक मत में ईर्ष्या, क्रोध और लोभ को संसार की समस्त बुराइयों की जड़ माना है। मजदक के सिद्धान्तों को भी सूफियों ने अपनाया। यह मत ईरान में इतना प्रभावशाली होगया कि अक्बासी सलीफाओं को इसका दमन करना कठिन होगया। इस मत का समर्थक होने के कारण मसूर अलहल्लाज को विद्रोह का सामना करना पड़ा। पर इस समय तक सूफीमत काफी विक-

१- A literary History of Persia - Browne pp 130

२- सूफी मत और हिन्दी साहित्य- डा० विमल कुमार जैन - पृ० ३८

सित होगया था । सूफी सिद्धान्तों का परिचय देने वाले और सूफी मत का विवेचन करने वाले ग्रंथ भी लिखे जाने प्रारम्भ होगये थे । इन ग्रंथों में अलसरजि लिखित किताबुल लुमा तथा अबू तालिब द्वारा लिखित कुतुल-कुसुब प्रमुख हैं। ईसा की दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी तक तो सूफी मत दर्शन शास्त्र और साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त विकास को प्राप्त हो जाता है। इस काल के सूफी साधकों ने शरीअत का पालन करना और हकीकत के सिद्धान्तों के साथ उसका मेल बैठाना प्रारम्भ कर दिया था । ईसा की तेरहवीं शताब्दी में 'इब्नुल अरबी' ने सर्वप्रथम अद्वैत का प्रतिपादन किया । उनका 'वहदतुलवजुद' का सिद्धान्त सूफी मत तथा इस्लामी दर्शन में अति महत्वपूर्ण है। इसी कारण अरबी का स्थान सूफी मत के विकास में महत्व का है। वागे चलकर जीली ने अरबी के ही सिद्धान्त को आधार बनाकर उसमें कुछ परिवर्तन किये ।

काव्य की दृष्टि से भी ईरानी साहित्य महत्वपूर्ण है। अरबी में तो कम पर फारसी साहित्य में बड़े बड़े सूफी कवि हुए । फारसी साहित्य के प्रमुख कवियों में फरीदुद्दीन अवार, जलालुद्दीन रूमी और शैख सादी के नाम आते हैं। शबिस्तरी, हाफिज और जामी भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

भारतवर्ष में सूफीमत :

भारतवर्ष के साथ अरब देशों का सम्बन्ध अति प्राचीन काल से था , इसीलिये सूफी मत का भारत में प्रवेश पाना बहुत आश्चर्यजनक नहीं फिर भी भारत में इसके प्रवेश की निश्चित तिथि बताना अत्यन्त कठिन है। सर्वप्रथम ये सिन्ध, पंजाब और पश्चिमोत्तर प्रदेशों में आये परन्तु धीरे २

this head comes here

सम्पूर्ण देश इन सूफी साधकों से प्रभावित हुए बिना न रहा। इनके भारत में प्रवेश के तीन ही मार्ग थे। जल मार्ग, स्थल मार्ग और खैबर का दर्रा। इतिहास के अनुसार भारत में इस्लाम से सर्वप्रथम अरब व्यापारियों के साथ मालाबार तट पर पहुँचा।

सूफी साधक भी भारतीय धार्मिक विचारधारा से प्रभावित हुए इसका पता इसी बात से चलता है कि उन्होंने योगियों के आसन और प्राणायाम को अपना लिया था। सूफी साधक ही भारतीय विचार धारा से प्रभावित नहीं हुए अपितु भारतीय जन भी उनकी उदारता और संतों जैसे जीवन से प्रभावित हुए। फलस्वरूप इन सूफी साधकों के प्रति लोगों की श्रद्धा बढ़ी। यह युग सिद्धों, तान्त्रिकों और नाथपंथियों का युग था। सूफियों को इनके विषय में जानने की जिज्ञासा प्रबल हुई और उन्होंने उसे शान्त करने के लिये चमत्कारिक रहस्यों का अध्ययन करना और आध्यात्मिक विवरण लेना प्रारम्भ कर दिया।

सम्भवतः बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सूफी मत का भारत में प्रवेश हुआ। शैख इस्माईल को भारत में जाने वाले धर्म प्रचारकों में प्रमुख बनाया जाता है। इसके बाद सन् १०३६ में अबुल हसन बिन उस्मान अली जल हुज्वरी के लाहौर में जाने का पता चलता है। इसके दो सौ वर्षों बाद

१- Mystics of Islam - R.A. Nicholson pp 15, 16

२- Ibid Introduction

३- Indian Islam- Titus pp 43

४- Preachings of Islam -T.W. Arnold pp 280

५- ,, ,, 281

६- कश्फ़ुल मल्हूब- निकल्सन

खाजा मुहंमदीन चिश्ती भारत आये। वे सनातन पंथी इस्लाम के मानने वाले थे। उन्होंने सूफी मत और सनातन पंथी इस्लाम के मध्य सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की। ईसा की तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी तक तो मुस्लिम धर्म प्रचारक और सूफी साधक देश के सभी भागों में फैल गये। पंजाब, काश्मीर, दक्षिण और पूर्वी भाग तो सूफियों के धर्म प्रचार की दृष्टि से इन दो शताब्दियों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। सिन्ध और पंजाब में तो मारम्भ से ही सूफी साधक और धर्म प्रचारक आते रहे हैं। सिंध और पंजाब से वे समस्त उचरी भारत और देश के अन्य भागों में फैल गये।

भारत में सूफी सम्प्रदाय :

सूफियों ने अपने धर्म प्रचार के लिये विभिन्न सम्प्रदाय संगठित किये। (यू) तो इन विभिन्न सम्प्रदायों का आविर्भाव इस्लाम के साथ ही होगया था। इस्लाम के सम्प्रदायों में सबसे प्राचीन और सर्वप्रथम संगठित होने वाले दो सम्प्रदाय हैं- सारिजी और शिया। इन दोनों सम्प्रदायों का आविर्भाव तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति के परिणाम स्वरूप हुआ, बाद में ये धार्मिक सम्प्रदायों के रूप में परिवर्तित होगये।

सारिजी सम्प्रदाय के संस्थापक अबू सैयद सारिजी थे। सूफी मत के बहुत से सिद्धान्त इस सम्प्रदाय में प्राप्त हैं। जैसे रोजा रखना, नमाज पढ़ना और इसी प्रकार के धार्मिक कृत्यों का समुचित पालन करना, प्रत्येक मुस्लिम का कर्तव्य है एवं अगर कोई मुसलमान किसी पाप का प्रायश्चित्त

किये बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो जाये तो उसे सदैव के लिये नरकाग्नि में दग्ध होना पड़ेगा^१। शिया सम्प्रदाय सारिजी का विरोधी है, सूफी मत के सिद्धान्तों से भी इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त विरोध करते हैं।

इस प्रकार सम्प्रदायों का वाविर्भाव तो इस्लाम के साथ ही होगया था परन्तु आगे चलकर सूफी मत के विकास के साथ साथ साधकों के शिष्य प्रशिष्य होते गये और उन्हीं के नामों के आधार पर भिन्न भिन्न सम्प्रदायों और उपसम्प्रदायों का वाविर्भाव हुआ। अरब और ईरान में तो ये सम्प्रदाय पहले से ही चल रहे थे पर भारतवर्ष में सूफी सम्प्रदायों का प्रवेश ईसा की बारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्णों में हुआ^२।

सभी सूफी सम्प्रदायों का वाविर्भाव हजरत मुहम्मद से माना जाता है। और हजरत मुहम्मद के बाद चौथे खलीफा हजरत अली से वे सम्बन्धित हैं, केवल तीन सम्प्रदाय विस्तामी, बख्शी और नवशबन्दी के अतिरिक्त लगभग सभी सूफी सम्प्रदाय हजरत अली से अपनी सम्बन्ध स्थापित करते हैं। विस्तामी, बख्शी और नवशबन्दी अबू बक्र से सम्बन्धित हैं। सभी सूफी सम्प्रदाय प्रारम्भ से खानवाद (परिवार) कहलाते थे। कारण प्रारम्भ में सूफी साधक एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करते थे, ख्याति प्राप्त साधकों के साथ अन्य साधकों का दल रहा करता था और उन्हीं ख्याति प्राप्त साधकों के नाम पर दल का नामकरण हो जाता था। ये दल ही खान-

१- Outlines of Islamic Culture-A.M.A. Shushty pp 351

२- Indian Islam- Titus pp 117

वाद कहलाते थे। इस प्रकार भिन्न २ देशों में शिष्य प्रशिष्यों के नाम पर सम्प्रदाय और उप सम्प्रदाय होते थे। इन सम्प्रदायों और उपसम्प्रदायों की अपनी २ विशेषताएँ होती थीं। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक वे अपने गुरुजों का उपदेश मानते थे और यही उपदेश अमुक सम्प्रदाय की विशेषता सम्झी जाती थी। सभी सम्प्रदायों का आविर्भाव हजरत मुन्जा वली, खाजा हसनबसरी खाजा, हबीब आजमी और अब्दुल वाहिद बिन जैद सूफी^१ इन चार पीरों से माना जाता है। कुछ लोग^२ कमिल, इमाम हसन, इमाम हुसैन और खाजा हसन बसरी को सम्प्रदायों के आविर्भावकर्ता चार पीर स्वीकार करते हैं। इन चारों पीरों से ही विभिन्न सम्प्रदाय और उनके विभिन्न उप-सम्प्रदाय निर्मित हुए।

भारत में सूफी सम्प्रदायों के प्रचार के विषय में जान-र-सुमान का मत^३ है कि भारत में सूफी मत का प्रवेश हुज्वोरी के आगमन के साथ हुआ पर भारत में सूफी मत का क्रमबद्ध इतिहास खाजा मुईनुद्दीन चिश्ती से प्रारम्भ होता है। चिश्तिया सम्प्रदाय खाजामुईनुद्दीन चिश्ती से ही भारत में आया। चिश्तिया सम्प्रदाय के अतिरिक्त अन्य तीन सम्प्रदाय भी भारत में आये जो इस प्रकार हैं सुहरावर्दी, कादरी और नबशबन्दो। इन सम्प्रदायों के भारत में आने का समय इस प्रकार है :

चिश्तिया सम्प्रदाय : सन् बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध

सुहरावर्दी सम्प्रदाय : सन् तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध

१- Merklots Islam in India -William Crooke pp 288

२- Glossary of Punjab Tribes and Castes(1919) pp 287

३- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- ले० डा० रामकुमार वर्मा
पृ० ३०४, ३०५

कादरी सम्प्रदाय : सन् पन्द्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध

नबशबन्दी सम्प्रदाय : सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध

ये सम्प्रदाय तुर्किस्तान, ईराक और ईरान के विभिन्न सूफियों द्वारा अलग ठिल रूप में भारत में लाये गये पर वाचरण की शुद्धता और सात्विकता के कारण यहाँ ये बहुत प्रचलित हुए। डा० रामकुमार वर्मा ने इन सम्प्रदायों के विषय में लिखा है, ये चारों सम्प्रदाय अपने मूल सिद्धांतों में समान थे। धार्मिक और सामाजिक पदार्थों में ये अन्यन्त उदार थे अनेक देववाद के विपरीत ईश्वर की एकता और सर्वोपरिता सर्वमान्य है और केवल वाचारात्मक दृष्टिकोण से इन सम्प्रदायों में नाम मात्र का भेद है। कहीं ईश्वर के गुण जोर से कहे जाते हैं, कहीं मौन रूप से स्मरण किये जाते हैं और कहीं गाकर कहे जाते हैं इत्यादि। चिश्ती और कादरी सम्प्रदाय में संगीत का जो महत्त्व है वह सुहरावर्दी और नबशबन्दी सम्प्रदाय में नहीं है।

चिश्तिया सम्प्रदाय :

भारतवर्ष के चार प्रमुख सूफि सम्प्रदायों में चिश्तिया सम्प्रदाय से जनता सर्वाधिक प्रभावित हुई। इस सम्प्रदाय के वादि प्रवर्तक के विषय में मतभेद है। कुछ लोग^१ स्वाजा इसहाक शामी चिश्ती को इसका वादि प्रवर्तक स्वीकार करते हैं, कुछ^२ स्वाजा अबू अब्दाल चिश्ती को और कुछ^३ स्वाजा

१- सूफिज्म - जान० ए० सुमान - पृ० १७४

२- Glossary of Punjab Tribes and castes (1919) pp 528

३- सूफिज्म - जान० ए० सुमान - पृ० १७८

मुर्शिदाबादी को इस सम्प्रदाय का संस्थापक मानते हैं। इस सम्प्रदाय के चार प्रमुख सूफी इस प्रकार माने जाते हैं।^१ स्वाजा अबू अहमद (मृत्यु काल ६६६ ईस्वी) , स्वाजा अबू मुहम्मद (मृत्यु काल १०२० ई०) स्वाजा अबू युसूफ (मृत्युकाल १०६७ ई०) और स्वाजा मवदूद (मृत्यु काल ११३३ ई०) स्वाजा मुर्शिदाबादी चिन्ती इनकी चौथी पीढ़ी में हैं।

विश्विया सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक कोई भी नहीं, पर भारतवर्ष में इस सम्प्रदाय का प्रवेश स्वाजा मुर्शिदाबादी चिन्ती के साथ हुआ । इस सम्प्रदाय की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

इस सम्प्रदाय में ' चिल्' का प्रचलन है जिसके अनुसार साधक चालीस दिन तक मस्जिद में अथवा किसी कमरे में स्वर्य को सीमित रखते हैं। इन दिनों में अल्पाहार करते हैं और इस दिन इबादत करते हैं। इस सम्प्रदाय की दूसरी विशेषता इसमें संगीत की प्रधानता है। स्वाजा मुर्शिदाबादी ने संगीत को भावाविष्टावस्था प्राप्त करने का साधन माना है। उनके अनुसार संगीत आत्मा का मोजन है।^२

मुर्शिदाबादी चिन्ती के पश्चात् इस सम्प्रदाय के प्रचारक स्वाजा कुतुबुद्दीन हुए थे भी अन्यत्न लोकप्रिय रहे । स्वाजा कुतुबुद्दीन के बाद फरीदुद्दीन शकरगंज ने इस सम्प्रदाय के प्रचार में योगदान किया । उनके दो शिष्य बहुत प्रसिद्ध हुए । दिल्ली के हजरत निजामुद्दीन औलिया और हजरत मखदूम अलाउद्दीन अली अहमद साबिर । इन दोनों के गृह् २ सम्प्रदाय होगये,

१- इस्लाम के सूफी साधक (निकल्सन) अनु० नमर्देश्वर चतुर्वेदी पृ० २२

२- Herklots Islam in India- William Crooke pp 289

निजामुद्दीन औलिया से निजामी सम्प्रदाय एवं अली अहमद से साबिरी सम्प्रदाय । आगे चलकर निजामी शाखा भी हिसामी और हम्मसाही दो उपविभागों में विभक्त होगई । हिसामी शाखा के प्रवर्तक हिसामुद्दीन थे तथा हम्मसाही शाखा के प्रवर्तक बहाउद्दीन ज़करिया के पंशज शैख इम्रान थे ।

चिश्तिया सम्प्रदाय का भारत में अत्यन्त प्रचार हुआ । ईसा की सोलहवीं शताब्दी में इस सम्प्रदाय की सन्त परम्परा में एक बहुत बड़े साधक हुये जिनका नाम शैख सलीम चिश्ती था । इनके बाद इस सम्प्रदाय की क्वनति होती गई । अठारहवीं शताब्दी के अन्त में खाना नूर अहमद ने इसे पुनर्जीवित करने का प्रयास किया । इसके पश्चात् चिश्ती सम्प्रदाय का जो रूप उपलब्ध है वह भारतीय ही है।

सुहरावर्दी सम्प्रदाय :

सूफ़ी सिद्धान्तों का प्रचार करने में सुहरावर्दी सम्प्रदाय विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इस सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी थे पर भारत में इसको सर्वप्रथम प्रचारित करने का श्रेय बहाउद्दीन ज़करिया को है। डा० रामकुमार वर्मा ने सैयद जलालुद्दीन सुसंपोश को भारत में इस सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना है।

इस सम्प्रदाय की कुछ प्रमुख विशेषणार्थें इस प्रकार हैं।

१- Glossory of Punjab Tribes and Castes (1919) pp 544

२- Durrashes- Rose pp 159

३- डा० रामकुमार वर्मा- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास -पृ० ३०४

इस सम्प्रदाय में दीक्षा होने वाले को प्रथम गुरु के आदेश से पापों का प्रायश्चित्त करना पड़ता है इसके बाद पाँच कल्मा पढ़ना और धर्म पर पूर्ण-स्थिरा ईमान लाना भी उसके लिये आवश्यक है। नमाज़ और रोज़ा रखना इस सम्प्रदाय के अनुसार अव्यावश्यक है। इस सम्प्रदाय में साधक स्वयं को जैकानिक वस्त्रों से आच्छादित किये रहता है। शैख बहाउद्दीन के बाद भी भारत में इस सम्प्रदाय के प्रचारक हुए जिनमें शैख सदरुद्दीन (मृ० १२८३ ई०) शैख बहमद मासूम (मृ० १३२० ई०) सैयद जलालुद्दीन मखदूम (मृ० १३८३ ई०) आदि प्रमुख हैं।

सुहरावर्दी सम्प्रदाय के अन्तर्गत कई उप सम्प्रदायों का जन्म हुआ। जलाली सम्प्रदाय उनमें से एक है। जलाली सम्प्रदाय से एक और सम्प्रदाय का वाधिर्माण हुआ। इसका नाम "विहल्लन" है। डा० जान० ए० सुमान ने अपनी पुस्तक "सूफिज्म इन्स रेन्ड्स एण्ड आइन्स" में सुहरावर्दी के अन्तर्गत जलाली के अतिरिक्त मखदूमों, मीरानशाही, इस्माइल शाही और दौलाशाही आदि सम्प्रदायों की वर्ण की है। इन सम्प्रदायों के प्रवर्तक क्रमशः सईद जलाल बुखारी, मीर सईद जलालुद्दीन मखदूम, मीरान सुहम्मद शाह, हाफिज सुहम्मद इस्माइल और दौलाशाह थे। इन उप सम्प्रदायों का जन्म बाश्शरा (वैध) बेशरा (जैध) सुहरावर्दी के अन्तर्गत हुआ। बाश्शरा सुहरावर्दी के अन्तर्गत उपर्युक्त शाखाएँ जाती हैं एवं बेशरा के अन्तर्गत लाल शाह नाविया और रसूलशाही दो शाखाएँ जाती हैं जिनके प्रवर्तक क्रमशः बहाउद्दीन अक रिया के शिष्य लाल शाह नाव और रसूलशाह थे। सुहरावर्दी की कुछ अन्य शाखाएँ बाद में होगई जिनमें फिरदौसिया शाखा प्रमुख हैं।

कादिरि सम्प्रदाय :

इस सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक अब्दुल कादिर जिलानी थे। उनकी जन्म सन् १०७८ और मृत्यु ११६६ ई० में हुई^१। उनकी मृत्यु लगभग तीन सौ वर्षों बाद इस सम्प्रदाय का प्रवेश भारत में हुआ। भारत में इस सम्प्रदाय के प्रचारक सैयद मुहम्मद गौस थे जो अब्दुल कादिर जिलानी के वंशज ही थे। ~~इस सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं। इस सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं।~~ इस सम्प्रदाय में संगीत का स्थान नहीं है और इस सम्प्रदाय के लोग हर रंग की फाड़ी बांधी रहते हैं उनके वस्त्रों में से एक गेरुवा वस्त्र अवश्य होना चाहिये^२। जिन्हे जली और जिन्हे सफ़ी दोनों इस सम्प्रदाय में प्रचलित हैं। इस सम्प्रदाय में ईश्वर की आराधना करने की चार विधियाँ बताई गई हैं^३। प्रथम विधि के अनुसार साधक अपने हृदय और गले से अल्लाह शब्द का उच्चारण करता है यह अवस्था "एक जरबी" कहलाती है। दूसरी विधि के अनुसार साधक नमाज पढ़ते समय जैसा बैठता है वैसा ही बैठा रहता है और अल्लाह का नाम लेता है यह अवस्था "दू जरबी" कहलाती है, तीसरे तरीके के अनुसार साधक पालथी मारकर बैठता है और एक बार दायीं ओर, फिर बायीं ओर फिर हृदय की ओर सिर करके अल्लाह कहता है। यह अवस्था "से जरबी" कहलाती है। चतुर्थ विधि के अनुसार वह "से जरबी" की तरह ही रहता है लेकिन हृदय की ओर सिर करने के बाद वह अपने सामने की ओर जोर से फिर "अल्लाह" कहता है। यह अवस्था "चहार जरबी" कहलाती है।

१- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डा० रामकुमार वर्मा -

पृ० ३०५

२- Herklots Islam in India- William Crooke pp 288

3. Glossory of Punjab Tribes and castes(1919) I Vol.

pp 539, 540

कादिरी सम्प्रदाय के अन्तर्गत कई उपसम्प्रदाय होगये ।
जिनमें कुमेशिया , बहलूलशाही, मुकीमशाही, नौशाही, हुसैनशाही और मिर्या
खेल प्रसिद्ध है जिनके प्रवर्तक क्रमशः शाह कुमेश, बहलूलशाह, मुकीमशाह , मुकीम
शाह, हाजी मुहम्मद, शाहलाल हुसैन और मिर्या मीर हैं। इस सम्प्रदाय के लोग
हरे रंग की फाड़ी धारण करते हैं। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक कादिर अलजिलानी
ने बताया है कि साधक जिन्न के समय अल्लाह के सात नामों का उच्चारण
करता है उन्होंने नामोच्चारण और प्रार्थना की विधि का भी उल्लेख किया
है।

नवशबन्दी सम्प्रदाय :

इस सम्प्रदाय के वादि प्रवर्तक खाजा बहाउद्दीन
नवशबन्द (मृत्युकाल १३८६ ई०) थे । पर इस सम्प्रदाय को भारत में लाने
वाले खाजा साहब की ही पीढ़ी के खाजा बाकीनिल्ला बैरंग थे । जहमद
फारुखी ने भी इसके सिद्धान्तों के प्रसार में बहुत योगदान दिया इस कारण
उन्हें भारत में इस सम्प्रदाय का प्रचारक माना जाता है।

इस सम्प्रदाय के साधकों ने आत्मा और परमात्मा
के विषय में अनेक प्रकार के मत प्रकट किये हैं। किसी का कथन है कि शरीर
के नष्ट होने के पश्चात् आत्मा पुनः दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो इस संसार
में लौट आता है। कोई साधक ईश्वर के ध्यान पर जोर देता है। इस सम्प्रदाय
में जिन्न की विभिन्न क्रियाओं का भी उल्लेख है। सीति को इस सम्प्रदाय में

1. Glossory of Punjab tribes and castes (1919) Vol. I

pp 549

2. Journal Royal Asiatic Society(1919) pp 75

धर्म विरुद्ध बतलाया गया है। अहमद फारुखी ने 'तुजू दिया' और 'शुद्ध-
दिया' शब्दों में मतभेद स्थापित किया। उन्होंने तुजू दिया को साधक की
प्रारम्भिक अवस्था एवं शुद्ध दिया विचारधारा को साधक के लिये अन्तिम मार्ग-
दर्शक बतलाया। उन्होंने सन्तों और उनकी मजार पर दीप आदि जलाने को
भी धर्म विरुद्ध ठहराया।

अहमद फारुखी ने स्वयं को तथा अपने बाद के
तीन उच्चाधिकारियों को भी 'कयूम' कहा। 'अल कयूम' ईश्वर का
नाम है और 'कयूम' का अर्थ अविनाशी है। 'कयूम' को उन्होंने मानव
और ईश्वर के सम्बन्धों का माध्यम स्वीकार किया है। मनुष्य की कोई प्रार्थना
ईश्वर तक नहीं पहुँच सकती जब तक उसे 'कयूम' स्वीकार न करे। सभी साधक
और उपासक 'कयूम' की इच्छा के विरुद्ध साधना पथ की ओर अग्रसर नहीं
हो सकते। इस प्रकार 'कयूम' सब पर शासन करना है और साधक को ईश्वर
तक पहुँचाने में सहायता करना है।

अहमद फारुखी के अतिरिक्त दूसरे कयूम और इस
सम्प्रदाय के प्रचारक मुहम्मद मासूम, खाजा नक़्शबन्द हुज्जतुल्ला और जुबैर हुए।

उपर्युक्त सम्प्रदायों के अतिरिक्त और भी अनेक सम्प्रदाय
हैं जिनका फल उनके मूल प्रवर्तकों के साथ ठीक २ नहीं चलता। मूल प्रवर्तकों के
अभाव में उनका सम्बन्ध मुहम्मद साहब अथवा किसी प्रचलित पीर के साथ साथ
जोड़कर काम चला लिया जाता है। श्तारी सम्प्रदाय इन सम्प्रदायों में मुख्य
है। भारतवर्ष में इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक फारस के अबदुल्ला श्तारी थे। उनकी
मृत्यु स० १४०६ में हुई। ये सुप्रसिद्ध सन्त शहाबुद्दीन सुहरावर्दी के वंश के थे।

इस सम्प्रदाय के अतिरिक्त उबैसी, मद्दारी, कलन्दरी और मलामती आदि छोटे छोटे उपसम्प्रदायों का भी प्रचार भारत में हुआ।

सूफियों के सामान्य सिद्धान्त :

सूफियों के सामान्य सिद्धान्तों के अन्तर्गत उनके ईश्वर, जीव, माया और जगत् सम्बन्धी सिद्धान्त आते हैं।

ईश्वर :

सूफी ईश्वर की सत्ता को महत्ता प्रदान करते हैं। वे अब्दुल्लाह को समस्त शक्तियों, ऐश्वर्यों और सद्गुणों का साहाय्य मानते हैं, इसी आधार पर जिली ने ईश्वर के गुणों को चार वर्गों में विभक्त किया है।

जान- ईश्वर की सत्ता सम्बन्धी गुण

जमाल - ईश्वर के माधुर्य बोध गुण

जलाल- ईश्वर के ऐश्वर्य बोधक गुण

कमाल - ईश्वर की अद्भुत शक्ति के व्यक्त गुण

इस प्रकार ईश्वर के समस्त गुण जान, जमाल, जलाल और कमाल के अन्तर्गत आ जाते हैं। कुरान में जान और कमाल की पूरी व्याख्या नहीं मिलती है। जमाल और जलाल के अनेकों प्रसंग हैं। परन्तु सूफियों ने बात

और कमाल को ही विशेष महत्व प्रदान किया और कुरान के कथित संकेतों का आश्रय ग्रहण कर इस्लाम में वास्तविक आध्यात्म का प्रसार किया ।

यूँ तो सनातन पंथी मुसलमान और सूफी दोनों ही यह स्वीकार करते हैं कि ईश्वर एक है परन्तु दोनों की मान्यताएँ पृथक् हैं, कट्टरपन्थी मुसलमानों के अनुसार ईश्वर अपने जैसा आप है, उसके समान कोई अन्य नहीं । ज्ञान (सत्ता) सिफत (गुण) और कर्म में परमात्मा अद्वितीय है। सृष्टि के सभी पदार्थों से वह भिन्न है। लेकिन सूफी यह स्वीकार करते हुए भी कि ईश्वर एक है, यह मानते हैं कि “ ईश्वर एक वास्तविक सत्ता है, जो सम्पूर्ण जगत् में परिव्याप्त है। ” यह मानने का अर्थ यह हो जाता है कि अगर ईश्वर को छोड़कर अन्य वस्तु की सत्ता नहीं है तो यह समस्त विश्व उसी के साथ है और अन्य जितनी भी सत्ताएँ हैं उसी एक मात्र वास्तविक सत्ता परमात्मा में अन्तर्निहित हैं।

इस विषय में जामी ने एक स्थान पर कहा भी है,
 “ निरपेक्षा, अनोचर, अपरिमित और नानात्व से परे सम्पन्न जाने वाला वह विलक्षण सत्य ही परम सत्य (अल- हक) है। दूसरी ओर अपने नानात्व और अनेकत्व में जब वह सभी गोचर वस्तुओं में स्वयं को प्रकट करता है तो यह सम्पूर्ण रची हुई सृष्टि वही है अतएव यह सृष्टि उस परम सत्य की दृश्यमान बाह्य अभिव्यक्ति है और वह परम सत्य इस सृष्टि का आम्प्यान्तर अदृश्य सत्य है। यह सृष्टि दिखाई देने से पहले उसी परम सत्य के समान थी और गोचर होने के पश्चात् उस परम सत्य का इस सृष्टि के साथ सादृश्य है। ”

इस प्रकार सूफी साधकों ने एकेश्वरवाद को अपनाया है। एकेश्वरवाद में एक देव की सत्ता पर विश्वास किया जाता है और उसे ही समस्त श्रेष्ठ गुणों का अधिकारी माना जाता है। क़ैतवाद एकेश्वरवाद से कुछ भिन्न है। उसके अनुसार दृश्य जगत् के मूल रूप में एक अव्यक्त नित्य तत्त्व है। और वही सत्य है। आत्मा, परमात्मा में विशेष भेद नहीं। इस दृश्य जगत् के विभिन्न रूपों में उत्पत्ति एक अव्यक्त का व्यक्त आभास पाया जाता है। सूफियों ने एकेश्वरवाद को अपनाया है पर साथ ही क़ैतवाद को विलुप्त छोड़ नहीं दिया परन्तु इस्लाम के एकेश्वरवाद में क़ैतवाद के लिये कोई स्थान नहीं। कुरान की आयतों से यह स्पष्ट है। कुरान में अल्लाह को "सृष्टि को उत्पन्न करने वाला उसका विस्तार व पालन करने वाला माना गया है। ईश्वर समस्त गुणों और ऐश्वर्यों का अधिकारी है। स्वर्ग और पृथ्वी पर जो कुछ विद्यमान है ईश्वर के ऐश्वर्य का सूचक है। वह महान् शक्तिशाली एवं बुद्धिमान है। इसके अतिरिक्त कुरान में ईश्वर को "पृथ्वी और स्वर्ग का प्रकाश" कहा गया है।

सूफियों ने ईश्वर चिन्तन के तीन मुख्य अंग माने हैं। "कल्ब" (हृदय) जो ईश्वर को जानता है, "रुह" (जीव) जो अल्लाह से प्रेम करता है एवं "सिर" (अन्तरात्मा) जो ईश्वर का चिन्तन करता है। इन तीनों के कार्यान्वित होने पर ही ईश्वर प्राप्ति सम्भव हो

१- Early development of Mohammedanism- Margotowth pp 99

२- हुवत्ताहुत सलैकुल वारेउत मुस्सविरो, लहुल अस्माउल दुस्ना, यूसब्वही, लहूमाफिससमावाति वल अरबि बहुवल अजीबुल हकीम ।

३- अल्लाही नूरुस्समावाति वल अर्द - कुरान

४- इस्लाम के सूफी साधक- अतु० नमर्दश्वर चतुर्वेदी - पृ० ५८

सकती है परन्तु फिर भी इनमें 'कल्म' क्यांत हृदय सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि वह सब वस्तुओं का सार तत्त्व समझने की क्षमता रखता है और वही सर्वप्रथम ईश्वर को जानने का प्रयास करता है। सूक्तियों के अनुसार जो स्वयं को जानता है वही ईश्वर को जानता है क्योंकि हृदय एक ऐसा दर्पण है जिसमें प्रत्येक ईश्वरीय गुण प्रतिबिम्बित होता है और जिस रूप में हम ईश्वर की उपासना करते हैं उसी रूप में वह हमें दृष्टिगत होता है। इब्नुल वरबी का कथन है^१ " ईश्वर की उपासना सूर्य रूप में करने पर यह सूर्य रूप में, जीवित वस्तुओं के रूप में करने पर जीवधारी के रूप में, निर्जीव पदार्थों में करने पर निर्जीव पदार्थ के रूप में एवं विलक्षण और अद्वितीय सत्ता के रूप में उसकी वाराधना करने पर वह उसी रूप में दृष्टिगत होता है। " वस्तुतः सर्वशक्तिमान् परमात्मा किसी एक धर्म में सीमित नहीं क्योंकि वह कहता है, तुम जिधर में अपना मुँह फेरो वल्लाह का चेहरा है। " इब्नुल वरबी का परमात्मा सम्बन्धी सिद्धान्त इस प्रकार है। मनुष्य कथवा यह संसार ईश्वर के मस्तिष्क की उपज है। मनुष्य ईश्वर के ज्ञान से उत्पन्न होकर इस संसार में जाता है, और यहाँ के अनुभव प्राप्त कर फिर लौट जाता है। जिस प्रकार किसी निर्माता के मस्तिष्क में योजनाओं का अस्तित्व रहता है और वह समय पाकर उन्हें कार्यान्वित करता रहता है इसी प्रकार परमात्मा के मस्तिष्क में संसार विद्यमान है। वस्तुतः परमात्मा का ज्ञान और उसकी सत्ता दोनों वनादि हैं। इब्नुल वरबी के ईश्वर सम्बन्धी इस सिद्धान्त को विश्वात्मवाद समझ लिया जाता है पर यह ठीक नहीं है।^४

१- इस्लाम के सूफी साधक- अनु० नमैश्वर चतुर्वेदी - पृ० ७५०

२- " " " ७५

३- Studies on Tasawwuf- Khaja Khan pp 8

4. Ibid pp 3

सूफियों ने ईश्वर को क्वां, पालक और सहाय मानने के साथ ही उसे सृष्टि में व्याप्त और परम सत्य माना है। इसी विचार प्रणाली के आधार पर उन्होंने ब्रह्म सम्बन्धी विचारों को 'वहदतुल तुजुद' या कबू दिया और 'वहदतुलशुदुद' या शुदू दिया दो वर्गों में विभक्त किया। वहदतुलतुजुद सिद्धान्त के प्रवर्तक मुहिउद्दीन इब्नुल अरबी थे। इस सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर को सृष्टि रूप में प्रसारित मानते हैं इस कारण इस जगत् को भी वे प्रतिबिम्ब मात्र या आभास मात्र नहीं मानते। ईश्वर और जगत् में साम्य होने पर भी यह जगत् वही नहीं है। ईश्वर और जगत् की यह साम्यता ज्ञात और सिद्ध की है। यह संसार ईश्वर का प्रतिबिम्ब मात्र नहीं वरन् ईश्वर के गुणों (सिद्ध) की अभिव्यक्ति है। इस विचार धारा के अनुसार ईश्वर ही एक मात्र सच्चा है और अन्य सभी पदार्थ उसकी अभिव्यक्ति हैं। इस प्रकार उस वास्तविक सच्चा को चाहे कोई ईश्वर कह ले या जगत् कच्चा दोनों में अंतर दिखाने की असमर्थता प्रकट करे पर वह है एक ही। शबिस्तारी ने अपने ग्रंथ 'गुल्लेनराज' में इसी सत्य का उद्घाटन किया है एवं इनायत खां ने अपने ग्रंथ 'मिस्टीज्म आफ साउन्ड' में इस प्रकार कहा है, "परमात्मा एक अवस्था में सदैव स्थित है एवं दृष्टिगत होने वाली समस्त सृष्टि उस ईश्वर रूपी केन्द्र से अनेकानेक स्वर लहरियों की भाँति उत्पन्न होती है और ये स्वर लहरियाँ अन्यान्य स्वर लहरियों को उद्भूत कर वातावरण को अशान्त बना देती हैं।"

अतः 'वहदतुलतुजुद' या कबू दिया सिद्धान्त के अनुसार

१- Mujaddid's conception of Tawhid- Second Ed. -Burhan

Ahmad Faruqi pp 58

2. Mysticism of Sound- Inyat Khan pp 18

ईश्वर और जगत् दोनों में साम्य ही नहीं वरन् एकत्व है कारण कि यह जगत् उस परमसत्ता की अभिव्यक्ति है उसका प्रतिबिम्ब नहीं ।

‘वहदतुलशुद्ध’ शुद्ध दिया जाता है प्रवर्तक शैख करीम जीली थे । उनके अनुसार यह सृष्टि उस परम सत्ता का प्रतिबिम्ब मात्र है । प्रतिबिम्ब होने के कारण यह सृष्टि सत्य नहीं है। शुद्ध दिया विचारधारा के अनुसार परमात्मा की महानता के सम्मुख सृष्टि के अन्य पदार्थ तुच्छ हैं। शुद्ध दिया विचारधारा वाले परमार्थ और अपरमार्थ दो सत्ताये माने हैं। परमार्थ सत्ता ब्रह्म की और अपरमार्थ सत्ता जीव की । जीव की सत्ता शून्य होती है उसे अपने अस्तित्व के लिये परमार्थ सत्ता की अपेक्षा होती है। इसी परमार्थ सत्ता का वाग्राय ग्रहण कर अपरमार्थ सत्ता व्यक्त होती है अतः अपरमार्थ सत्ता को उस परमसत्ता का प्रतिबिम्ब माना जाता है। इस प्रकार सृष्टि और ब्रह्म का सम्बन्ध कैसा कैसी भाव को न होकर बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव का है। जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबिम्ब दृष्टिगत होता है उसी प्रकार उस परम सत्ता का प्रतिबिम्ब सृष्टि रूप में दृष्टिगोचर होता है।

ईश्वर की अभिव्यक्ति और सृष्टि प्रक्रिया के सम्बन्ध में सूफियों में एक अन्य सिद्धान्त भी प्रचलित है जिसे वे ‘तन्जुल’ का सिद्धान्त कहते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार उसकी जात (सत्ता) सिफत (गुण) सृष्टिकर्ता (रब) एवं सृष्टि (कब्द) के सम्बन्धों पर दृष्टिपात किया गया है। इसमें तीन अवस्थायें बतलाई गई हैं। प्रथम अवस्था के अनुसार वह परमसत्ता केवल सत्ता मात्र है। यह अवस्था ‘वलकुद्दल मुतलक’ कहलाती

^१- Sufism : its saints and Shrines- John A Sukhan pp 54

है। दूसरी अवस्था को 'हकीकतुल मुहम्मदिया' कहते हैं। इस अवस्था में जात (सत्ता) से भिन्नत्व नहीं होता। तृतीय अवस्था 'वाहिदीयत' है। जो परमसत्ता के जगत् प्रपञ्च में अभिव्यक्त होने की अवस्था है।

मुहम्मद साहब का महत्त्व भी इस्लाम में सर्वाधिक है। सूफी भी उन्हें ईश्वर और मनुष्य का सन्धि स्थल मानते हैं। सूफियों का विश्वास है कि उस परमसत्ता से ही 'तुरुस मुहम्मदिया' या 'मुहम्मदीय जालोक' मुहम्मद के रूप में प्रकट हुआ। जीलों का तो यहाँ तक कहना है कि मुहम्मद साहब ही समयानुकूल वेश धारण करते हैं और वही पूर्ण मानव के पद पर प्रतिष्ठित होने के अधिकारी हैं। पूर्ण मानव को सृष्टि का चरमोत्कर्ष और ईश्वर के स्वरूप की पूर्ण अभिव्यक्ति माना जाता है। पूर्ण मानव वही है जो सांसारिक सुख, सम्पत्ति, वैभव और ऐश्वर्य का त्याग कर हक से मिलने का प्रयास करता है। अतः वह परमसत्ता का ही एक अंश माना जाता है जो पृथ्वी के जीवों को सत्त्व करने के लिये अवतरित होता है। अधिकांश सूफी मुहम्मद साहब को ही पूर्ण मानव के पद पर प्रतिष्ठित करते हैं।

सूफियों के ईश्वर सम्बन्धी सिद्धान्तों के बाद उनके 'जीव' सम्बन्धी सिद्धान्तों पर दृष्टिपात करते हैं। ईश्वर के अनन्तर जीव का स्थान है क्योंकि वह ब्रह्म का अंश है और प्रत्येक शरीर में विद्यमान है। इसी जीव की विद्यमानता से शरीर जीवित है और प्रत्येक इन्द्रिय अपने अपने कार्य सम्पादन में समर्थ है। अतः जीव का महत्त्व अत्यधिक है। यूँ तो मुसलमान

और सूफी दोनों ही ईश्वर के एकत्व पर एक मत है पर जीव के विषय में दोनों में मतभेद है। इस्लाम में ईश्वर को उसके स्वत्व, गुणों और कार्यों के कारण जीवों से सर्वथा भिन्न माना गया है जबकि सूफियों का मत इससे भिन्नता रखता है वे ईश्वर को एक वास्तविक सत्ता मानते हैं और उसे संपूर्ण दृश्य जगत् में व्याप्त मानते हैं और इसी वाधार पर जीव और ईश्वर के पृथक्कीकरण के पक्षपाती नहीं।

सूफियों के अनुसार जीव की उत्पत्ति ईश्वर से बिना उसकी एकता नष्ट किये उसी प्रकार होती है जिस प्रकार सूर्य से राशियाँ निकलती हैं। अतः जीव ईश्वर से अभिन्न है। सूफियों ने भारतीय कर्तृवाद का समर्थन किया और वेदान्तियों की तरह "अन-अल-हक" पर जोर दिया। "मैं एक हूँ" जीव ही ब्रह्म है। इस तरह जीव एक होगया और वह सत्य, नित्य, एक मान लिया गया। भारतीय कर्तृ की तरह सूफियों के कर्तृ के भी कई पक्ष हैं। हल्लाज की दृष्टि में जीव सर्वथा ब्रह्म नहीं बन सकता उसकी सत्ता बनी अवश्य रहती है, कभी उसका पूर्णतः लोप नहीं होता। स्मी के अनुसार ब्रह्म और जीव देखने में भिन्न हैं पर उन दोनों में एक ही वात्मा का निवास है। जिली का कथन है कि प्रेमी और प्रिय एक ही वात्मा हैं पर दो शरीरों में निवास करती हैं। फारिज भी जिली का समर्थक है। अल-गजाली का कथन है कि ईश्वर ने ही सब कुछ प्रदर्शित किया है अतः दृश्य द्रष्टा से पृथक् नहीं किया जा सकता। अतः स्पष्ट है कि सूफी कर्तृवादी हैं पर उनका कर्तृवाद केवल, विशिष्ट, शुद्ध अथवा द्वैताद्वैत किस श्रेणी का है, स्पष्ट

1. Studies in Islamic Mysticism -R.A. Nicholson pp 80

2. Ibid pp 80

3. Al-Ghazzali : The Mystic- Margaret Smith pp 235, 236

रूप से नहीं कहा जा सकता । भाव प्रधान होकर भी साधना पदा में वह केवलार्थ के निकट है। जीव के सम्बन्ध में भी सूफियों का अद्वैत भाव प्रधान ही रहा यही कारण है कि भारतीय अद्वैतवाद की तरह वे स्पष्ट रूप से, सत्य ब्रह्म जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ^१ नहीं कह सके ।

सभी सूफी जीव को ईश्वर का ही रूप स्वीकार करते हैं। मल, विदोष, स्वार्थ आदि आवरणों से विमुक्त हो जाने पर आत्मा सत्य की ओर प्रवृत्त होती है और यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि जीव कल्ब (दिल) रह (जान) और सिर (अन्तःकरण) के द्वारा वाध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो । कल्ब ईश्वर को जानता है, रह उससे प्रेम करता है और सिर ईश्वर का चिन्तन करता है, यह सिर ही जीव का वास्तविक भाग है जहाँ सूफी साधक परमात्मा का दर्शन लाभ करते हैं। यहाँ किसी प्रकार का मालिग प्रवेश नहीं कर सकता । यहीं पर ईश्वर जीव से पूर्ण परिचय प्राप्त करता है और मनुष्य यही परमात्मा का ज्ञान क प्राप्त करते हैं। रह ईश्वर के प्रेम का आश्रय स्थल है, सूफियों ने रह को अत्यधिक पवित्र माना है यहाँ तक कि जीली ने तो रह को ' इकीकतुलमुहम्मदिया ' और देवदूत की संज्ञा प्रदान की है। जीली के अनुसार परमात्मा ने अपनी ज्योति से रह की सृष्टि की और फिर उससे जगत् का निर्माण किया । जीली ने रह के अतिरिक्त एक रहलकुद्स (पवित्र आत्मा) को भी मानव शरीर में सर्वश्रेष्ठ वाध्यात्मिक इन्द्रिय माना है। इस पवित्र आत्मा को जीली ने अनित्य और परमात्मा द्वारा ही उत्पन्न माना है। जो केवल हृदय के नेत्र से देखा जा सकता है। ईश्वर जीव और रह को मिलाता है। ये दोनों पूर्ण २ पदार्थ हैं,

1. Studies in Islamic Mysticism- R.A. Nicholson pp 128

2. The Kashf-Al-Mahjub- Hujwiri pp 264

जो ईश्वर द्वारा निर्मित है, जीव तो ईश्वर का एक र्श है। ईश्वर जब अपने र्श जीव को जगत् पर भेजता है तो उसमें र्ह फूंक देता है। र्ह के अतिरिक्त 'नफ़स' को जीव के अन्नःकरण की वृत्ति मानते हैं। र्ह सद्वृत्तियों का उद्गम स्थल होने के कारण विवेक द्वारा परिचालित होती है और नफ़स सुप्रवृत्तियों का स्थल होने के कारण भावावेग द्वारा। ये दोनों जीव को विपरीत दिशाओं की ओर खींचते हैं और दोनों में जो जीव का आश्रय स्थल बनने में सफल हो जाता है वही विजयी होता है।

र्ह, नफ़स, कल्ब और सिर के अतिरिक्त अबल का भी निवास मनुष्य में है पर सूफ़ी अबल को महत्त्व नहीं देते। वे कल्ब की सुनते हैं और समस्त विश्व को उसी ईश्वर का प्रतिबिम्ब स्वीकार करते हैं एवं जीव और ईश्वर में मूलतः कोई विभेद नहीं मानते। उनके अनुसार दोनों की भिन्नता वास्तविक न होकर व्यावहारिक है। जीव को वे ईश्वर का पूर्ण प्रतिरूप और जगत् को केवल उसकी वार्षिक कृति मानते हैं।

जगत् :

सूफ़ी अपने निर्दिष्ट प्राप्ति के लिये चार अवस्थायें पार करना आवश्यक मानते हैं। ये हैं शरीयत, तरीक़त, मारिफ़त और हकीक़त। इन्हीं अवस्थाओं से मिलते जुलते चार जगत् वालमें नामूल (भौतिक जगत्) वालमें मलकूत (चित्त जगत्) वालमें जबस्त (द्रव्यातीत आनन्द जगत्) एवं वालमें लाहूत (सत् या पारिमार्थिक ब्रह्म जगत्) की कल्पना वे करते हैं।

प्रथम लोकनासूत मानव लोक है, द्वितीय मलकूत अदृश्य लोक है, तृतीय जबलून उच्चतम लोक है तथा चतुर्थ लाहूत परमलोक है। कुछ सूफी जाल में मिसाल या समलोक की भी कल्पना करते हैं जिसके ठीक ठीक प्रतिबिम्ब के लिये कस्ब का स्वच्छ होना परमावश्यक है और यह जिह्वा (नामस्मरण) तथा मुराकबत (ध्यान) के बिना संभव नहीं ।

सूफी इस दृश्यमान जगत् को कस्ब मानते हैं^१ उनका कथन है कि दृश्यमान जगत् का वाकस्मिक अस्तित्व, ईश्वर के गुणों से, जो इसमें प्रतिबिम्बित होते हैं, प्राप्त होते हैं। ईश्वर इस दृश्यमान जगत् में युक्त है या इससे नितान्त परे है इस सम्बन्ध में सूफियों में मतभेद नहीं । अधिकशः सूफी इस मत के पदापाती हैं कि ईश्वर जगत् से पर रहकर भी उसमें लीन है। "शविस्तारी" ने "गुल्लनैराज" में स्पष्ट कहा है, " यूँ तो परमात्मा का सौंदर्य अणु परमाणु में लक्षित होता है पर इसका नात्पर्य यह नहीं कि साधक लाहूत (ईश्वरत्व) और नासूत (मनुष्यत्व) में भिन्नत्व ही न रहे । शविस्तारी " सब कुछ ईश्वर है " यह न मानकर ईश्वर के आधिक्य को मान्यता प्रदान करते हैं। ईश्वर और जगत् शराब और पानी के समान हैं जो मिलने पर भी एकत्व को प्राप्त नहीं होते । जिली जगत् को ईश्वर से भिन्न सत्ता नहीं मानता । जिली के अनुसार^२ दृश्यमान् यह जगत् अल्लाह रूपी चन्द्रकान्त मणि के कटाका से पिघला उसी के स्वच्छ स्वत्व का जल है। इन्ज वरबी ईश्वर और जगत् एक दूसरे में सम परिमाण में व्याप्त हैं, यह मानता है। वे^३ ईश्वर को

१-Sufism its Saints and Shrines- John A. Subhan pp 57

2. Studies in Islamic Mysticism- Nicholson pp 121, 122

3. ,, pp 150

परमसत्ता न मानकर उपास्यदेव मानते हैं और उपास्यदेव की उपासना के लिये उपासक का होना परमावश्यक है, इस प्रकार जगत् की सत्ता को अस्वीकार करने पर किसी उपास्य की उद्भावना नहीं हो सकती। अतः अरबी जगत् और ईश्वर को एक दूसरे में समपरिमाण में व्याप्त मानते हैं। "कश्फुलमख़ूब" के लेखक हुज्वरी का मत बिल्कुल पृथक् है। वे ईश्वर और जगत् को भिन्न मानकर दोनों का पृथक् अस्तित्व मानते हैं। हमी का मत है कि ईश्वर इस जगत् में एक साथ ही भीतर और बाहर दोनों प्रकार से रह सकता है। परन्तु यह उसे ही ज्ञात होता है जिसकी आँखों से आवरण दूर हो जाता है और जिसकी अन्तर्दृष्टि अज्ञानान्धकार से दूर हो मार्जन हो जाती है। हल्लाज के अनुसार सृष्टि से पूर्व ईश्वर स्वयं को प्यार करता था और इसी प्रेम के कारण उसने अपने लिए स्वयं को प्रकट किया। अतः भी इस दृश्य जगत् को ईश्वर की सृज का साधन मात्र मानते हैं और जगत् की पृथक् सत्ता नहीं मानते। इस प्रकार ईश्वर और जगत् की एकता के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं पर अधिकारिणः इस विश्व को उसी महान् विभूति का प्रदर्शन मात्र ही मानते हैं।

सूफियों में जगत् क्रम इस प्रकार प्रचलित है कि जगत् के द्वारा स्वयं को अभिव्यक्त करने की इच्छा जब ईश्वर को हुई तो उसने अपनी ही ज्योति से एक ज्योति का निर्माण किया यही ज्योति नूर मुहम्मद कही जाती है। ईश्वर इस ज्योति के "जमाल" पर मुग्ध हो गया और इसी

-
1. Persian Mystics- F. Hadtard Davis-Jalāluddin Rahim pp63
 2. Encyclopaedia of Religious and Ethics Vol. 12 pp 14, 15
 3. The Persian Mystics- Attar pp 21
 4. Studies in Islamic Mysticism-R.A.Nicholson pp 135

ज्योति के लिये उसने जगत् की रचना की। यही ज्योति सृष्टि का वादि कारण मानी जाती है। इस ज्योति से सर्वप्रथम 'नुरुल मुहम्मदिया' का निर्माण किया। इसी कारण 'नुरुल मुहम्मदिया' से ईश्वर का साक्षात् सम्बन्ध माना जाता है। 'वादि भूत' 'नुरुल मुहम्मदिया' के द्वारा ही ईश्वर ने ब्रह्माण्ड का निर्माण किया। इसी से मौलिक तत्त्व स्वर्ग, चार तत्त्व (अग्नि, हवा, जल, पृथ्वी) तथा वाकाश वादि का आविर्भाव हुआ, दृश्यमान जगत् में सर्वप्रथम रूप ग्रहण करने वाले ये ही तत्त्व थे। इस प्रकार ईश्वर ने मुहम्मद की ज्योति से समस्त जगत् की रचना की।

ईश्वर से आविर्भूत इस दृश्य जगत् की नित्यता और अनित्यता के सम्बन्ध में सूफियों में कई विचार प्रचलित हैं। इस्लाम में इस विषय में अधिक वाद विवाद नहीं हुआ। सूफियों में इस विषय पर दो पक्ष हो गये हैं। प्रथम मत के अनुसार यह जगत् नित्य है कारण इसका प्रसार परम सत्ता से हुआ है, दूसरे मत के अनुसार यह दृश्यमान जगत् अनित्य है, एक न एक दिन नष्ट होकर यह उसी परम सत्ता में लीन हो जायेगा। जो सूफी इस जगत् को नित्य मानते हैं वे इसके मूल रूप में ईश्वर को अवस्थित मानते हैं। जामी के अनुसार विश्व सत्य का प्रब प्रत्यक्षा रूप है और वह परमसत्ता विश्व का परीक्षा भीतरी मूल तत्त्व 'गुलनैराज के लेखक शविस्तारी' ने भी अपने 'हिकमतउल औलिया' ग्रंथ में भी इसी जोर से किये हैं। यह वाह्य जगत् कोई भी चेष्टा करने में असमर्थ है इसके सारे कार्य व्यापार उस परम सत्ता के हैं जो इसमें चैतन रूप से अवस्थित है। बरबो और जिली में इस जगत् को नित्य ही मानते हैं परन्तु वाचार्य हुज्विरी को यह मत सर्वथा

1. The Mystics of Islam- Nicholson pp 80

2. Early Development of Muhammedanism-D.S. Margliant pp 99

3. Studies in Islamic Mysticism- Nicholson pp 40

वमान्य है वे इस जगत् को अनित्य मानते हैं और परमसत्ता को नित्य कारण वे जगत् को परमसत्ता से भिन्न स्वीकार करते हैं।

माया :

सूफी भी भारतीय वेदान्त की तरह ईश्वर और जीव के सम्मिलन में एक बाधक स्वीकार करते हैं पर वे माया के स्थान पर 'नफ़स' को मानते हैं। सूफियों के अनुसार नफ़स भी ईश्वर और जीव के मिलन में माया का ही कार्य करती है।

सूफियों ने माया की कल्पना केवल अविद्या माया के रूप में की है कारण माया का कोई सत्स्वरूप उन्हें मान्य नहीं। नफ़स और शैतान को ही उन्होंने माया का रूप प्रदान किया है और माया के इस स्वरूप की चर्चा उन्होंने जहाँ कहीं भी की है वहाँ इन्द्रियगत विषयमोहों के आकर्षण और उनके दुष्प्रभाव का ही वर्णन किया है। यही नफ़स जीव को गर्व की ओर ले जाता है और नफ़स के कारण ही साधक को ईश्वर का साक्षात् नहीं हो पाता। नफ़स का जानना और उस पर विजय प्राप्त करना सूफी के लिये परमावश्यक है क्योंकि इसके बिना ईश्वर से मिलन संभव नहीं। सूफी साधकों ने इससे बचने के लिये निरन्तर सावधान किया है। जुनेद का कथन है कि 'नफ़स के द्वारा परिचालित होने वाला व्यक्ति काफिर है, वह इस्लाम विरुद्ध आचरण करने वाला है। जितनी इक्सीस को नफ़स से उत्पन्न हुआ मानते हैं और इसे ही सब बुराइयों की उत्पत्ति का कारण स्वीकार करते हैं।

अतः नफ़्स या माया को वशीभूत करके ही जीव ईश्वर से मिल सकता है सभी सूफ़ी साधक इस बात पर एक मत हैं कि कोई भी शिष्य जो माया को वशीभूत करने के उद्देश्य से ३ विमुक्त होता है, सूफ़ी मत के मूल तत्त्वों को कभी नहीं सीख सकता। और यह तभी सम्भव है जबकि जीव उन वस्तुओं से विमुक्त हो जिनका वह व्यस्त है, अभिमान को चूर्ण कर तथा दुःख व बलेश के माध्यम से भी मौलिक प्रकृति की नीचता और कार्यों की अपवित्रता को नष्ट करे। सूफ़ी साधक इसे उपवास, मौन व्रत और स्कान्त सेवन से ही सम्भव मानते हैं। ज्ञान बुद्ध सूफ़ियों का विचार है कि वात्म संयम मनुष्य की अन्तरात्मा के नैतिक परिवर्तन की क्रिया है। अज्ञान, अभिमान, ईर्ष्या आदि माया के आकर्षण के मूल कारण हैं अतः इनसे छुटकारा पाने पर ही माया से छुटकारा सम्भव हो सकता। जिस सूफ़ी ने अपनी इच्छाओं को निर्मूल कर दिया उसे वानन्दावस्था अर्थात् 'ख़ा' (सन्नोख) तथा 'तवबकुल' (ईश्वर में विश्वास या भरोसा) आदि सोपानों पर पहुँचा हुआ माना जाता है। शैतान भी माया का कार्य करता है वह साधकों को उनके पथ से विचलित करता है। इस शैतान से बचने के लिये सूफ़ियों ने पीर या गुरु की कल्पना की है। इस प्रकार सूफ़ियों ने वेदान्त की माया को नफ़्स और शैतान दो रूपों में ग्रहण किया है।

सूफ़ी साधना :

सूफ़ी सिद्धान्तों में हम यह देख चुके हैं कि सूफ़ी साधक इस सृष्टि में ईश्वर को प्रतिबिम्बित देखता है। उसकी साधना उसी ईश्वर में लीन (फना) होकर अवस्थित (वका) हो जाने के लिये होती

है। अपने इस प्रयास काल को सूफ़ी मार्ग या साधना पथ कहते हैं। इस मार्ग पर चलने वाला साधक (सात्कि) यात्री कहलाता है। वह धीरे २ अपने पथ पर अग्रसर होता है और सौपानों (मुकामात) को पार करता हुआ अपने लक्ष्य एक कथवा ब्रह्म में लीन होने तक वागे बढ़ता है। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये सात्कि को चार अवस्थायें पार करनी पड़ती हैं :

- १- शरीयत (कर्मकाण्ड)
- २- तरीकत (उपासना काण्ड)
- ३- हकीकत (ज्ञान निष्ठा)
- ४- म्बारिफत या सिद्दावस्था (ज्ञान काण्ड)

शरीयत या कर्मकाण्ड के मार्ग पर चलने वाले सूफ़ियों और इस्लामानुयायी साधारण मुसलमानों में कोई अन्तर नहीं। परन्तु साधारण मुसलमानों की भाँति शरीयत सूफ़ियों के लिये जीवन का साध्य नहीं है, बल्कि परमसत्ता तक पहुँचने का साधन मात्र है। शरीयत के अन्तर्गत सलात, जकात, सौम एवं हज्ज का समावेश है। सलात का तात्पर्य प्रार्थना, जकात का दान, सौम का उपवास व हज्ज का तीर्थ यात्रा है। सूफ़ी यद्यपि बाह्य विधि विधानों पर कभी ध्यान नहीं देते पर उनकी उपेक्षा भी उन्होंने कभी नहीं की। सलात के अन्तर्गत और इसी भावना के आधार पर तिलवत (कुरान पाठ) अक्काद (नित्य प्रार्थनायें) जिक्क (स्मरण) फिक्क (चिन्तन) और समा(कीर्त्तन) की उद्भावनायें हुईं। इन सभी अवस्थाओं से लक्ष्य वही सिद्ध होता है जो सलात (प्रार्थना) या नमाज से।

नमाज के साथ उठने बैठने आदि के दृढ़ नियम हैं जब कि इन अवस्थाओं में साधक स्वच्छन्द रीति से मन के भावों को बाह्य रूप प्रदान कर सकता है।

तिलawat भी नामस्मरण से ही सम्बन्धित है। इसका अर्थ है कुरान का नियमित रूप से पाठ करना। अवराद जिह्र के अन्तर्गत आता है और परमात्मा ब्रह्म के गुणों का निरन्तर चिन्तन ही जिह्र है। जिह्र उपासना की बहुत साधारण क्रिया है, जिसका रहस्यवाद से कोई सम्बन्ध नहीं। जिह्र से सूफियों का तात्पर्य है कि परमात्मा के स्मरण द्वारा एक ऐसी अवस्था की प्राप्ति हो जिसमें साधक का मन समस्त सांसारिक व्यापारों से परे केवल मात्र ईश्वर की याद में लग जाय और ईश्वर के अतिरिक्त उसे अन्य किसी वस्तु का बोध न रह जाय। जिह्र को भावाविष्टावस्था भी कहा जाता है, और इस अवस्था में सूफी साधक अल्लाह के नाम को 'सुबहान अल्लाह' (परमात्मा की जय हो) 'ला इलाह ईलिल्लाह' (सिवाय ईश्वर के अन्य कोई देवता नहीं) के इन स्वरों में उच्चरित करते थे।

गजाली ने अपनी पुस्तक अलगजाली दी मिस्टिक में एक अनुच्छेद में जिह्र की रीति और उसके प्रभावों का वर्णन किया है जिसे मैकहानलूह ने संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है। "वह अपने हृदय की ऐसी दशा बना दे, जिसमें किसी वस्तु का होना और न होना उसके लिये सम हो। कुरान आदि के पठन पाठन में वह स्वर्य को व्यस्त न रहे। सिवाय सर्वोच्च परमेश्वर के उसके हृदय में किसी का ध्यान न आये। तब वह एकान्त में बैठकर अपनी वाणी से निरन्तर 'अल्लाह अल्लाह' कहे और अपने विचारों को

भी इसी शब्द पर केन्द्रित रहे अन्त में वह ऐसी अवस्था को प्राप्त हो जायेगा जहाँ वाणी की गति रुक जायेगी और ऐसा प्रतीत होगा कि शब्द स्वतः उसकी वाणी से उच्चरित हो रहा है।

ईश्वर और बन्दे के एकीकरण की शक्ति सूफियों को जिह्म के अनुष्ठान से ही प्राप्त हुई। इस एकता के सम्पादनार्थ जिह्म के अनेक रूप प्रचलित हो गये जैसे जप, योग, चिन्तन, स्वाध्याय और म्वारिफ। म्वारिफ के उदय से सूफियों को हक का बोध हो गया। इस प्रकार जिह्म पर सूफियों ने पूरा ध्यान दिया और उसके अनेक रूपों की प्रतिष्ठा की। जिह्म के सामान्यतः दो भेद किये गये हैं जिह्म जली और जिह्म सफ़ी¹।

प्रथम से तात्पर्य ईश्वर का उच्च स्वर में नामोच्चारण है और द्वितीय का तात्पर्य है मनन और चिन्तन। जिह्म जली में 'लाइलाह इल्लैलाह' का जाप व्यष्टि या समष्टि रूप में होता है पर सफ़ी में मन की एकाग्रता ही प्राधान्य है। इसमें योग साधन द्वारा मन को एकाग्र करना पड़ता है पर दोनों प्रकार के जिह्म का मुख्य विषय यही है कि 'ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं'।²

समा (संगीत) भी जिह्म जली का ही एक रूप है। इस्लाम में संगीत की विशेष प्रतिष्ठा नहीं पर सूफियों ने इसे आन्तरिक ज्ञान प्राप्ति का साधन माना है। अलगजाली के अनुसार संगीत के सुनने से

1. Outlines of Islamic culture Vol. II A.M.A. Shushetry

pp 481

2. Al Ghazzali : The Mystic Margaret Smith pp 89

हृदय पवित्र होता है और पवित्र हृदय में ही ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश हो सकता है। सरांज, कुशैरी, समा को नवयुवकों के लिये वस्तुकर मानते हैं^१ परन्तु जुलून संगीत को एक ऐसा उच्चम शब्द मानते हैं जो हृदय को ईश्वरीय सौज के लिये प्रेरित करता है^२ हुजविरी ने समा के पदा और विपदा दोनों पदार्थों में अपने विचार प्रकट किये हैं उनके अनुसार समा में कोई दोष नहीं है परन्तु वास्तविक बात यह है कि हम उसका उपयोग किस प्रकार करते हैं अगर समा से भावाविष्टावस्था प्राप्त हो तो वह अपेक्षित है, अगर वह केवल मनोरंजन के लिये हो तो त्याज्य है।

फिक्र के वन्तर्गत एक अन्य क्रिया भी जाती है जिसे लोग मुराफा^४ कहते हैं इसके वन्तर्गत कुरान के कुछ चुने हुए स्थलों का पाठ किया जाता है। 'फिक्र' का उद्देश्य भी वात्सल्य विस्मरण है। चिन्तन के द्वारा समस्त वर्तकामयी मानसिक वृत्तियों का उच्छेद 'फिक्र' के वन्तर्गत जाता है।

सलात के पश्चात् सूफियों ने जकात को महत्व दिया। जकात से सूफियों ने उत्सर्ग का पाठ पढ़ा। इस्लाम ने अवश्य ही इसे दान भाव से न अपनाकर^५ भाव से अपनाया पर सूफियों ने इससे दान का वाभास या दान भाव को ही महत्व प्रदान किया। उन्होंने दया, दादाप्य और उफकार की

१- Studies in Islamic Mysticism- R.A. Nicholson pp 58, 59

२- Outlines of Islamic culture Vol. II A.M.A. S pp 502

३- Kashf Al Mahjub- Rujwiri pp 402

४- तसव्वुफ क्या है सूफीमत - चन्द्रबली पाण्डेय पृ० ८७

दृष्टि से जकान की प्रतिष्ठा की। उनको यह निश्चय हो गया कि धन से परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती, उसकी प्राप्ति के लिये त्यागीभाव-
 श्यक है अतः सब कुछ त्यागकर वे एक मात्र प्रियतम के हो गये। यहाँ तक कि
 वह मात्र का भी उन्होंने परित्याग कर दिया। वे तो सर्वत्र "मैं" का त्याग
 कर उसे अपने "परमप्रियतम" ही में मिला देना चाहते थे। एक सूफी
 का कथन है, "मैं दैन्य में उस परम प्रियतम को खोजा। इस खोज में दीनता
 भी मुझे सम्पन्नता सी प्रतीत हुई। मैं दीनता और सम्पन्नता दोनों का
 त्याग किया। भरे इस त्याग ने मेरी योग्यता का विश्वास दिलाया। मैं
 योग्यता की भी उपेक्षा की और मेरी इस उपेक्षा से भरे त्रैय का उदय हुआ।
 इस प्रकार सूफी जकान को समर्पण से कम महत्व नहीं प्रदान करते।

सूफी मत में "सौम" का भी विधान है। "सौम" का अर्थ है "रोजा" जो वर्ष में एक बार जाता है। सौम से सूफियों को उपासना के एक नवीन ढंग की प्राप्ति हुई। वे उपवास को महत्व देकर उसे ही वात्स्य शुद्धि का एक प्रकार समझने लगे पर स्वच्छन्द वृत्ति के कारण इसका भी बन्धन उन्हें सह्य न हुआ। कारण सौम वर्ष में एक बार ही जाता है, देश काल का भी वह ध्यान नहीं रखता। अतः उसका पालन उचित रीति से नहीं हो सकता। अतः सूफी सौम के दोष से भी जागे बढ़कर प्रायः ज्ञान रखने लगे कारण प्रियतम की तल्लीनता में उदर पूर्ति बाधक हुआ करती है अतः अबूयाजीद जल बिस्तीमी का कथन है, "इश्वर का वास्तविक ज्ञान मुझे भूखे उदर और नग्न कलेवर से ही प्राप्त हुआ है।" जुनैद ने भी उपवास को संसार से सम्बन्ध विच्छेद का एक ऊँचा स्वीकार किया है।

1. Studies in Islamic Mysticism-R.A. Nicholson pp 215, 16

2. Studies in Early Mysticism in the near and Middle east-
 Margaret Smith pp 162

3. A literary History of the Arabs- R.A. Nicholson pp 230

सलाह, जक़ात और सौम से अधिक मुसलमान हज्ज को महत्त्व प्रदान करते हैं। हज्ज का सूफ़ी साधना में भी कुछ कम महत्त्व नहीं। हज्ज ही कुरान में प्रतिपादित तीर्थयात्रा का स्वरूप है। इसको जीवन में एक ही बार करने का विधान है। सूफ़ी हज्ज को दूसरे ही रूप में अपनाते हैं। वे ईश्वर को सर्वत्र मानते हुए उसके लिये मक्का जाने की आवश्यकता नहीं समझते। अबुसईद का कथन है कि, "ईश्वर हृदय में ही विद्यमान है अतः उसकी प्राप्ति के लिये वात्मा हृदय में ही यात्रा करती है और वही उसका साक्षात्कार करती है। साजा सा ने कहा है कि, "उमर महोदय को भी हज्ज में अड़दा हो चली थी। अली के सम्मान पर उन पर काबा का रहस्य खुला।" भाषुक सूफ़ियों ने रौजा दरगाह आदि को भी काबा और मुहम्मद साहब की कब्र के समान ही प्रतिष्ठा प्रदान की। कारण कि उनका विश्वास था कि सुदा के प्रेमी की कमी मृत्यु नहीं होती उसकी मृत्यु केवल वात्मा के स्थिति परिवर्तन की सूचना देती है। अतः वे उनकी समाधि का सम्मान कर अपने हृदय भार को हल्का करते तथा उस पर ही दीपक जलावे अपने हृदयान्धकार को दूर करते। कुछ सूफ़ी अपने पीर की समाधि को काबा से भी अधिक महत्त्व प्रदान करते हैं। सूफ़ी साधना में इस क्रिया को जियारत कहते हैं। साधारण व्यक्तियों का विश्वास है कि अक़ादित व्यक्तियों की अक़ादित इन पीरों की समाधियों पर ब्रद्धा रखने से पूर्ण हो जाती है।⁴ अतः सिद्ध सूफ़ी अपने भीतर परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं एवं समाधि या दरगाह की हज्ज या काबा से कम नहीं समझते।

शरीयत से सालिक तरीक़त में जाता है। तरीक़त की

-
1. Studies in Islamic Mysticism- R.A. Nicholson pp 62
 2. Studies in Tasawwuf- Khaja Khan pp 106
 3. Studies in Islamic Mysticism- R.A. Nicholson pp 44
 4. The people at the Mosque- Beran James pp 169, 170

अवस्था में उसे चितवृत्तियों का निरोध करना पड़ता है। चितवृत्तियों के निरोध के लिये सात्त्विक को कुछ साधन अपनाने पड़ते हैं। इन साधनों को सात सोपान भी कहा जाता है। ये सात सोपान हैं तोबा (पश्चात्ताप) जहद (दैन्य) सन्न (सन्तोष) , शुक्र (धैर्य) , रिजाज़ (संयम) , तक्वकुल (खुदा में विश्वास) रज़ा (वैराग्य) और इश्क है। तोबा द्वारा मनुष्य अपने पाप पूर्ण कार्यों से सचेत हो जाता है और अपने विगत कर्मों के लिये पश्चात्ताप करता है। हुज्वीरी का कथन है कि, " पश्चात्ताप करने वाला ही ईश्वर का प्रेमी होता है और ईश्वर प्रेमी ही ईश्वर चिन्तन में मग्न रहता है। " अनु-ताप से पीड़ित मानव ही सांसारिक भोगों से विरक्त हो सकता है।

सूफियों में दैन्य की भावना भी बहुत अधिक थी। यथार्थ दैन्य केवल सम्पत्ति का अभाव नहीं अपितु सम्पत्ति की इच्छा का भी अभाव है और सूफियों का यही आदर्श था। सन्न और शुक्र को भी सूफियों ने ईश्वर प्राप्ति के लिये आवश्यक माना। इन्द्रिय संयम को सूफियों ने भक्ति का मुख्य कार्य माना जिसके द्वारा मनुष्य प्रत्यक्षा या परोक्षा रूप से चिन्तनशील जीवन की ओर अग्रसर होता है। आत्म संयम को कुछ ज्ञानवृद्ध सूफी मनुष्य की अन्तरात्मा के नैतिक परिवर्तन की क्रिया मानते हैं। संयम के कुछ बाह्य तरीकों को भी सूफी स्वीकार करते हैं जैसे उपवास, मौन व्रत तथा एकान्त सेवा। आत्म संयम करने वाला सूफी रज़ा (वैराग्य) एवं तक्वकुल (परमात्मा में विश्वास या मरोसा) के सोपानों पर पहुँचा हुआ कहा जाता है।

१- Kashaf Al Mahjub- Hajwiri- Trans. R.A. Nicholson pp 181

2. Ibid

pp 181

‘ क्वार उपर्युक्त सोपानों (सप्त) की यात्रा की सात घाटियाँ कहता है। जलालुद्दीन रूमी के अनुसार पश्चात्ताप, त्याग आदि से सात्त्विक उमेद की स्थिति तक पहुँच जाता है।

तरीकत के दोत्र में सफल हो जाने पर सात्त्विक में म्वारिफ का आविर्भाव होता है। म्वारिफ का आविर्भाव सात्त्विक में ईश्वरीय अनुकम्पा से ही होता है अतः उसे अल्लाह की कृपा का प्रसाद ही समझा जाता है। म्वारिफ के उदय के बाद साधक को ईश्वरीय स्वरूप की चिन्ता प्रारम्भ हो जाती है और वह हकीकत के दोत्र में पहुँच जाता है। उपर्युक्त सप्त सोपानों को पार कर साधक अन्य चार अवस्थाओं को भी प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। ये म्वारिफ, इश्क, कज्द और वस्त। म्वारिफ के भावावेगमय रूप का ही नाम ‘ इश्क ’ है। ‘ इश्क ’ की अधिकता से ही ‘ कज्द ’ या उन्माद की स्थिति प्राप्त होती है एवं निरन्तर ईश्वर चिन्तन तथा विरह युक्त साधक को ‘ वस्त ’ या मिलन स्थिति की प्राप्ति होती है।

हकीकत की प्राप्ति शरीकत और तरीकत के उचित पालन से म्वारिफत द्वारा होती है और वस्त की स्थिति प्राप्त होने पर साधक फना की अवस्था को प्राप्त करता है क्योंकि यहाँ ईश्वर से उमेद हो जाता है और आत्मा का परमात्मा से सम्मिलन हो जाता है। सूफ़ी इस स्थिति को बका कहते हैं। यही सूफ़ियों का चरम लक्ष्य है। शबिस्तारी इस अवस्था को इस प्रकार वर्णित करते हैं, “ ईश्वर का साक्षात्कार होने पर ‘ मैं ’ और ‘ तू ’ का भेद मिट जाता है और वे दोनों एक हो जाते हैं।

1. The Persian Mystics - Attar pp 29, 31.

2. Studies in Early Mysticism in the near and Middle
east- Margaret Smith. pp 9

साधक की लक्ष्य प्राप्ति की चार अवस्थाओं का वर्णन करते हुए हस्ताज और इमाम गज्जाली ने चार लोकों की कल्पना की है। सूफियों ने नासूत (नर लोक) , मलकूत (देवलोक) जबरूत (ऐश्वर्य लोक) और लाहूत (माधुर्य लोक) चारों को ही मान्यता प्रदान की और साधक को इन्हीं लोकों में विराम करना हुआ परम सत्ता में लीन होना हुआ दिखाया । शरीयत के कार्यक कानून और पाबन्दियों को नान कर साधक नासूत में, तरीकत अर्थात् पवित्रता का वाशय लेने वाला साधक मलकूत में जाता है। इसमें मनुष्य का चित्त सांसारिक तुच्छताओं से ऊपर उठ जाता है तथा पवित्र हो जाता है। जब साधक और ईश्वर के मिलन मार्ग की बाधायें दूर हो जाती हैं तो वह आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त कर लेता है तथा जबरूत को प्राप्त कर लेता है। यह मारिफ की मंजिल है। चतुर्थ लोक अर्थात् लाहूत को वारिफ ज्ञान की प्राप्ति होने पर ही प्राप्त करना है और यही सूफी साधना की पराकाष्ठा है। कुछ लोग^२ हाहूत (सत्यलोक) की भी कल्पना करते हैं पर सूफियों ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया । वस्तुतः ये चारों लोक मनुष्य का परम सत्ता और परमसत्ता का मनुष्यत्व की ओर अग्रसर होना सूचित करते हैं।

1. Studies in Islamic Mysticism- R.A. Nicholson pp 80

2.

Ibid

pp 80

तृतीय अध्याय

कृष्ण भक्ति का उदय और विकास

कृष्ण भक्ति के उदय और विकास को दृष्टीगत करने के हेतु भागवत धर्म के उदय और विकास पर दृष्टिपात करना आवश्यक है, क्योंकि भागवत धर्म का विशाल भवन कृष्ण भक्ति की नींव पर ही स्थिर है। वैसे भी कृष्ण भक्ति में भागवत धर्म का सर्वाधिक योगदान है।

भागवत धर्म का उदय और विकास :

वैष्णव धर्म भागवत धर्म का ही प्राचीन नाम है जिसे ऐकान्तिक, नारायण, वासुदेव और सात्वत आदि कई नामों से अभिहित किया जाता है। इस धर्म के प्रधान उपास्यदेव वासुदेव हैं, जो ज्ञान, शक्ति, बल, वीर्य, ऐश्वर्य और तेज इन कुछ गुणों से सम्पन्न होने के कारण भगवान् या भगवत् कहलाते हैं, और भगवत् की भक्ति करने वाले साधक ही भागवत कहे जाते हैं। विचारणीय प्रश्न यह है कि इस भागवत धर्म का उदय भारत भूमि पर कब हुआ ? और अन्य सब देवताओं को उपेक्षित कर विष्णु या वासुदेव को ही इस धर्म का उपास्य देव क्यों बनाया गया ?

पाणिनि के अष्टाध्यायी ग्रंथ पर महामाष्य लिखने वाले फर्जलि का आविर्भाव काल विक्रम पूर्व द्वितीय शतक है, और उस युग तक निश्चित रूप से भागवत धर्म का उदय हो चुका था, कारण उन्होंने अपने महामाष्य में कंस-वध तथा बलि-वध नामक नाटकों के अभिनय का उल्लेख किया है, जिनमें विष्णु ने कृष्ण रूप में अवतरित होकर कंस का वध किया था और दैत्यराज बलि को बाध कर पाताल भेजा था^१। इसके अतिरिक्त पाणिनि ने 'वासुदेवाङ्गनाम्याङ्गु' (४।३।६८) आदि सूत्रों का उल्लेख

किया है, जिसे ज्ञात होता है कि वर्तुन की अपेक्षा वासुदेव की प्रतिष्ठा अधिक थी ।

इस समय के शिलालेख भी इसी मत की पुष्टि करते हैं^१। घोसुण्डी और वेसनगर के शिलालेख इनमें महत्वपूर्ण हैं। घोसुण्डी का शिलालेख जिसका समय ईस्वी पूर्व प्रथम शतक है, इस बात का बोधक है कि पाराशरी पुत्र राजा सर्वज्ञान ने, जिन्होंने बहुत ब्रह्ममैत्र यज्ञ किया था, भगवान् संकीर्ण तथा वासुदेव के उपासना मन्दिर के हेतु^२ पूजा शिला प्राकार^३ का निर्माण कराया था । उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर भागवत धर्म का उदय प्रथम शतक ईसा पूर्व से पहले अवश्य ही हुआ था । उक्त धर्म के उपास्य देव का नाम पाणिनि से पूर्व वैदिक साहित्य में भी 'वासुदेव' ही आया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के दशम प्रपाठक में नारायण, वासुदेव और विष्णु को एकत्र कर दिया गया है, यथा :

“ नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि ।

तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥

- तैत्तिरीय ब्राह्मण, दशम प्रपाठक, विष्णु
उपनिषद् गायत्री)

भागवत धर्म ही 'सात्वत', 'पांचरात्र' तथा एकान्तिक नाम से भी विख्यात है था । सङ्कटवत शूरसेन मण्डल में निवास करने वाली एक क्षत्रिय जाति थी । वैष्णव मत के प्रचार में इस जाति का

१- वैष्णवविजय, शैविज्य- ४ अा० जी मण्डारकर - पृ० ४-५

एण्ड मास्टर रिलीजस सिस्टम

२- लखनऊ संग्रहालय में सुरदास बलराम जी की द्विभुजी मूर्ति

३- पाद्म तन्त्र - ४।२।८८

पर्याप्त रहा। इसी वंश में वैष्णव मत का विशेष प्रचार हुआ था। ऐतरेय ब्राह्मण और शतपथ ब्राह्मण में सात्वतों का नाम निर्दिष्ट है। ऐतरेय ब्राह्मण के इन्द्रमहाभिषेक के प्रसंग में सात्वतों का निवास स्थान दक्षिण भारत उल्लिखित है, जहाँ इन्द्र भीष नाम से अभिषिक्त किये गये थे^१। ऐतरेय ब्राह्मण का रचनाकाल ईसा पूर्व दशम शतक के निकटतम माना जाता है अतः इतना तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि भागवत धर्म का उदय काल ईसा पूर्व दशम शतक से अर्वाचीन नहीं हो सकता। सत्यता तो यह है कि इस धर्म का उदय महाभारत काल में हुआ। महाभारत युद्ध का समय १५०० ई० पूर्व स्वीकार किया जाता है अतः इस मत को इस काल से अर्वाचीन मानना उपयुक्त नहीं।

भागवत धर्म के कौन-कौनसे पर्यायों में पांचरात्र नाम बड़े महत्त्व का है। इस शब्द की व्याख्या विभिन्न प्रकार से की गई है। महाभारत के 'शान्ति पर्व' के अनुसार वेद, आरण्यक और योग को अपने साथ एक कर देने से इसकी 'पांचरात्र' संज्ञा हुई। ईश्वर संहिता (अध्याय २१) के अनुसार शाण्डिल्य, जीष्मायन, मौज्यायन, कौशिक और माण्डूक्य इन पाँच ऋषियों की सेवा से प्रसन्न होकर विष्णु ने 'स्फायन वेद' का रहस्य उन्हें पाँच रात्रियों में सम्प्रेषित किया। अतः ये पांचरात्र कहलाये। नारद पांचरात्र के अनुसार रात्र का अर्थ है ज्ञान जिसके पाँच भेद हैं, परम तत्त्व, मुक्ति, मुक्ति योग और विजय। इन्हीं पाँच विषयों का प्रतिपादन करने के कारण इसको पांचरात्र की संज्ञा प्रदान की गई^२। इस शब्द 'पांचरात्र' की व्याख्याएँ विभिन्न मतावलम्बियों के मतभेद को प्रकट करती हैं। भागवत धर्म के अनुसार पांचरात्र सिद्धान्त मानव

१- एतस्या दक्षिणस्या दिशि च सत्त्वता राजानो मौज्यायनः
अभिषिच्यन्ते । मौषिति एनान् अभिषिक्तानाब्रह्मते ॥

- ऐतरेय ब्राह्मण ८।३।१४

२- रात्रं च ज्ञानवर्त्म ज्ञानं पञ्चविधं स्मृतम् ॥

- नारद पांचरात्र १।४४ तथा (१।४५।४३)

के सर्वोच्च विकास में सहायक है। और यही कारण है कि भागवत धर्म को पांचरात्र मन्त्र से भी अभिहित किया जाता है। इस मन्त्र का प्रतिपादन सर्वप्रथम महाभारत के शान्ति पर्व (अ० ३३६) में हुआ है।

शान्ति पर्व के " नारायणीयोपाख्यान " में ही पांचरात्र धर्म से सम्बन्धित एक वाख्यान उपलब्ध है। इस वाख्यान के अनुसार इस कल्प के पहले ही भागवत धर्म का उपदेश भगवान् ने नारद को दिया था । एक बार नारद बदरिकाश्रम गए, वहाँ नारायण तप कर रहे थे । उन्हें तप करते देख नारद ने पूछा कि आप स्वयं परमेश्वर होते हुए भी किसकी उपासना कर रहे हैं। प्रत्युत्तर में नारायण ने कहा कि मैं अपनी प्रकृति की उपासना कर रहा हूँ। वहाँ से नारद मेरु पर्वत पर पहुँचे, वहाँ भी उन्हें इंश्वर मन्दिन में लीन विचित्र प्रकार के श्वेत वर्ण के प्राणी मिले । उनका परिचय कराते हुए महाभारतकार ने भीष्म के मुख से कहलवाया है कि भागवत धर्म के वादि प्रसन्न चित्र-शितण्डी तथा स्वायम्भुव मनु थे । फिर क्रमशः यह विद्या बृहस्पति को हस्तगत हुई, जिन्होंने इसका उपदेश वसु उपरिचर नामक एक भक्त राजा को दिया , जिसके फलस्वरूप राजा में पूर्ण भक्ति का संचार हुआ । वसु उपरिचर के भक्ति प्रसंग के अनन्तर नारद की कथा है। वे मेरु पर्वत से श्वेत द्वीप पर गए, जहाँ नारायण ने उन्हें अन्य भक्त जानकर दर्शन दिया और भागवत धर्म का उपदेश प्रदान किया । शान्ति पर्व के उपर्युक्त उपाख्यान के अनुसार भागवत धर्म के वादि प्रसन्न चित्र शितण्डी तथा मनु थे । इसके परवर्ती स्वरूप में जो सुधार हुआ उसका सूत्रपात करने वाले सम्भवतः भगवान् श्रीकृष्ण थे । इस स्वरूप की प्रतिष्ठा भावद्गीता में हुई और इसके उपदेष्टा को नारायण नाम से अभिहित किया गया ।

१- शान्ति पर्व, नारायणीयोपाख्यान, अध्याय ३३५

२- वैष्णविक्रम, शैकिम रण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम- वार० जी० मण्डाकर

पृ० १०, ११

इस प्रकार भागवत धर्म विक्रम संवत् से कई सौ वर्ष पूर्व ही इस देश में प्रतिष्ठित हो गया था, पर इस धर्म का निश्चित स्वरूप भगवद्गीता में ही उपलब्ध होता है। पांचरात्र ग्रंथों का कहना है कि भागवत धर्म वेद से ही संबद्ध है, पांचरात्र का सम्बन्ध वेद की एकात्म शक्ती से है। भागवत धर्म नारायण, वासुदेव, हरि ज्यवा कृष्ण नाम के भगवान् में एकान्त निष्ठा रखने का आदेश देता है, इस कारण इस धर्म को एकान्तिक धर्म भी कहते हैं। एकान्तिक भाव की प्रीति ही भागवत धर्म का परम साधन है— यथा :

“स वै पुंसां परोधर्मो यतो भक्तिरधीनाजि ।

वैतुष्यं प्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति ॥ २

अर्थात् प्राणिमात्र का परम धर्म वही है, जिसे भगवान् श्रीकृष्ण में भक्ति हो और भक्ति भी ऐसी जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो एवं जो नित्य निरन्तर बनी रहे, ऐसी भक्ति से हृदय आनन्दस्वरूप परमात्मा की उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है।

भागवत धर्म वैदिक तत्त्वज्ञान को सर्वजन सुलभ बनाकर प्रस्तुत करता है। यह “सत्यं परं धीमहि” और “अहिंसा परमोधर्मः” आदि अदिनीय मंत्रों की दीप्ता प्रदान करता है। यह धर्म सब धर्मों में श्रेष्ठ है, क्योंकि यह भक्ति के लिए भक्त को सर्वस्व त्याग करने की शिक्षा देता है। भक्ति का विरोधी चाहे कोई साधन हो अथवा व्यक्ति, भक्त के सम्मुख है और यही भक्ति भागवत धर्म की चरमावस्था है जिसे प्राप्त कर भक्त को कुछ भी प्राप्त व्यर्थ नहीं रहता ।

१- एष एकात्मो वेदः प्रख्यातः सर्वतो मुनि (ईश्वर संहिता १।४३)

२- श्रीमद्भागवत (१।२।६)

भारतीय वाङ्मय में श्रीकृष्ण :

भारतीय वाङ्मय में कृष्ण का विषय विवादास्पद है और इसका मुख्य कारण है वैदिक साहित्य से लेकर आज तक के साहित्य में कृष्ण और उनके चरित्र का अस्तित्व । दूसरा कारण है कृष्ण के विभिन्न स्वरूप और उनका एक में ही समाहार । गीपाल सहस्र नाम , विष्णु नाम तथा पुरुषोत्तम सहस्र नाम आदि स्तोत्रों में भगवान् श्रीकृष्ण के अनेक नाम गिनाये गये हैं तथा पुराणों में अनेक देवों की कल्पना कर उनकी स्तुति की गई है। प्रायः सभी देवों को भगवान् का अवतार या अंश ही माना गया है।

वैदिक काल में कृष्ण के विष्णु रूप की उपासना की जाती रही । ऋग्वेद में वर्णित चिह्नों से स्पष्ट है कि विष्णु सौर देवता हैं : सूर्य के ही अन्यतम प्रकार हैं। वैदिक संहिताओं में विष्णु के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है उनका तीन छगों में पृथ्वी नामना । उसके दो पा जो पृथ्वी और अन्तरिक्ष में पड़ते हैं मनुष्य देव पान्त है, शेष तीसरे पा के पराक्रम से वह अभिज रहता है। तृतीय पा विष्णु का परम पद है जिसे विद्वान् लोग आकाश की ओर सदा ऊँची दृष्टि करके देखा करते हैं। विष्णु के इस वैशिष्ट्य के प्रमाणिक ये मंत्र अन्यन्त प्रसिद्ध हैं :

“ इयं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्,

समूहमस्य पार्श्वे ॥ (ऋग्वेद १।२२।१७)

“ तद्विष्णोः परमं पदम् सदा पश्यन्ति सूरयः ।

दिवीव चक्षुरात्तम् ॥ (ऋग्वेद १।२२।२०)

ब्राह्मण युग में यज्ञसंस्था का विकास हुआ और साथ ही साथ देवमण्डली में विष्णु का महत्त्व अपेक्षाकृत अधिक हो गया। शतपथ ब्राह्मण में विष्णु की एकता यज्ञ के साथ प्रतिपादित की गई। (यज्ञी वे विष्णुः) ऐतरेय ब्राह्मण के प्रारम्भ में ही अग्नि को हीन (अवम) तथा विष्णु को परम (श्रेष्ठ) देव स्वीकार किया गया है :

“अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः, तदन्तरेण सर्वा
अन्या देवताः।” (ऐतरेय ब्राह्मण १।१)

शतपथ ब्राह्मण में “वार्ष्णेय” और “सात्वत” शब्दों का प्रयोग मिलता है।

छान्दोग्य उपनिषद् में देवकी पुत्र कृष्ण का स्पष्ट वर्णन है जो घोर अंगिरस के शिष्य थे। देवकी पुत्र कृष्ण ने जो उपदेश अपने गुरु घोर अंगिरस से ग्रहण किये, उन्हीं के अनुसार वासुदेव कृष्ण ने गीता द्वारा अपने मित्र अर्जुन को उपदेश दिया। दोनों के सिद्धान्तों में बहुत अंशों तक साम्य है। इसी साम्य के आधार पर ग्रियर्सन, मजूमदार, राय चौधरी आदि विद्वान् दोनों को एक ही मानते हैं। परन्तु मैक्समूलर तिल्क, डे आदि विद्वान् उनके इस मत से सहमत नहीं। गीता उपनिषदों की ही प्रतिध्वनि है, और उसके अनेक श्लोक उपनिषद् से ही लिये गये हैं, केवल इसी आधार पर छान्दोग्य उपनिषद् के कृष्ण और पौराणिक कृष्ण को एक नहीं कहा जा सकता। नारायणीय उपनिषद्, वासुदेवीय उपनिषद्,

१- शतपथ ब्राह्मण ३।१।१।४ तथा १३।५।४।२१

२- छान्दोग्य उपनिषद् - ३।१७।६

३- Encyclopaedia of Religion & Ethics Vol. II pp 538
Cultural Heritage of India Vol. III pp 11, 12
Early History of Vaishnava Sects pp 78

४- Sacred book of the East Vol II pp 52

कृष्णोपनिषद्, राघोपनिषद् आदि में कृष्ण और उनकी लीलाओं का वर्णन अवश्य ही उपलब्ध है।

पुराण साहित्य में श्री कृष्ण सम्बन्धी अनेक कथाएँ हैं। अठारह पुराणों में से लगभग आधे पुराणों का सम्बन्ध वैष्णव धर्म से है। मत्स्य, कूर्म, वाराह तथा वामन- इन चार पुराणों का तो नामकरण भी भगवान् विष्णु के चार अवतारों की दृष्टि में रखकर किया गया है। नारद, ब्रह्मवैवर्त, पद्म, विष्णु तथा श्रीमद्भागवत में विष्णु के बलौकिक रूप तथा महिमा का अत्यन्त सुन्दर विवेचन उपलब्ध है। हरिवंश पुराण में कृष्ण और गोपियों का चरित्र परस्पर सम्बद्ध है। पूतनावध, शकट वध, यमतार्जुन पत्न, मासन चोरी, कालियदमन, गोवर्धन धारण आदि लीलाओं का इस पुराण में विशद् वर्णन है। कलाखण्ड पुराण साहित्य का प्रधान का है, अतः पुराणों में कृष्ण के निर्गुण रूप की अपेक्षा सगुण रूप पर जोर दिया गया है उनके सगुण रूप में उनकी समस्त लीलाओं का वर्णन मिलता है।

श्रीमद्भागवत में कृष्ण का व्यापक रूप उपलब्ध है।

कृष्ण भक्ति का वह पावन स्रोत जो पहाड़ की कन्दराओं, लोहों, गह्वरों में बह रहा था, उपनिषत्काल में हमारे नेत्रों के समक्ष कल कल वेग से प्रवाहित होता जा रहा था, पूर्णरूपेण श्रीमद्भागवत में ही प्रकट हुआ, यहाँ पर श्रीकृष्ण के अद्भुत कर्माँ, कसुर संहारी, बालकृष्ण, गोपी बिहारी, राजनीतिविद्वा, योगेश्वर और साक्षात् परब्रह्म आदि सभी रूप उपनिविष्ट हैं। मुख्यतः श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के तीन रूपों का दर्शन होता है। महा-भारत के कृष्ण, गीता के कृष्ण और भागवत के कृष्ण। भगवान् के वीरता-पूर्ण कर्माँ का उत्कृष्ट महाभारत में, परब्रह्म स्वरूप गीता में और रक्षकेश्वर रूप भागवत में प्राप्त होता है।

भागवत में श्रीकृष्ण के सभी रूपों का विवेचन होते हुए भी प्रधानता रासिक रूप की ही है। श्रीकृष्ण के असुर संहारी राजनीतिविद्या तथा कूटनीतिज्ञ स्वरूप का वर्णन भागवत के दशम स्कन्ध के उत्तरार्द्ध में मिलता है। दशम स्कन्ध के पूर्वार्ध में असुरों के वध की कथाएँ श्रीकृष्ण के बाल रूप की हैं। बस वध तक की लीलाएँ कृष्ण के बालरूप की ही लीलाओं के वर्णन की जाती हैं। बात लीलाओं के अनिश्चित श्रीकृष्ण के शेष जीवन चरित्र की दृष्टि से भागवत को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है, घटनात्मक, उपदेशात्मक, स्तुत्यात्मक, गीतात्मक ।

भागवत में ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करने वाले स्थल घटना प्रधान हैं। इन घटना प्रधान स्थलों पर भगवान् के दिव्य मीलस्वरूप की स्तुति अनेक बार की गई है, जैसे मौमासुर वध के समय और बाणासुर सीराम के बलबल अस्त्र पर । इनके साथ साथ कहीं कहीं पर अलौकिक घटनाओं का भी सम्मिश्रण हो गया है जैसे स्वर्ग से कल्पवृक्षा लाना और देवकी के मृत पुत्रों का लाना आदि ।

भागवत के उपदेशात्मक भाग में श्रीकृष्ण योगेश्वर उपदेश द्या तथा विज्ञानी के रूप में आते हैं। उपदेश भी साधारण और विशेष दो प्रकार के हो गए हैं। साधु महात्माओं और गुरुजनों के उपदेश साधारण उपदेशों की श्रेणी में आते हैं तथा उद्धव के प्रति भगवान् के उपदेश, ध्रुव को नारद का उपदेश आदि की गणना विशेष के रूप में होती है।

स्तुत्यात्मक भाग की स्तुतियाँ भी दो प्रकार की हैं,

सकाम और निष्काम । इच्छा प्रेरित होकर की गई स्तुतियाँ, जैसे कारागार से मुक्ति के लिए तथा दैहिक, दैविक एवं भौतिक तापों की निवृत्ति के हेतु सकाम हैं पर इच्छा रहित भाव से ईश्वर के रूप एवं लीला स्मरण के रूप में की गई स्तुतियाँ निष्काम हैं।

भागवत का चतुर्थ भाग गीतात्मक है। ये गीत अन्तरात्मा की व्यथा और हृदय वेदना के साक्षात् रूप हैं। इन गीतों की संस्था भागवत में अव्यक्त है पर इनमें गोपियों के प्रेम की अपूर्व माला दृष्टिगत होती है।

वस्तुतः भागवत के श्रीकृष्ण अपूर्व हैं। वे पुराण, महाभारत, गीता और कृष्ण सम्बन्धी अन्य सभी ग्रंथों में दिए गए भावों का समन्वय हैं। भागवत के कृष्ण पाण्डवों के सखा हैं जो कुरुक्षेत्र महायुद्ध के संचालक थे और जिनका वीर रूप महाभारत में बिसरा उठठल हुआ है। वे गीता के उपदेष्टा कृष्ण हैं जो साधुओं की रक्षा पापियों के विनाश तथा धर्म की स्थापना और अस्त्युत्थान के हेतु प्रत्येक युग में अवतरित होते हैं एवं जो गीता में भक्ति, ज्ञान और कर्म का सार्मस्य स्थापित कर निष्काम कर्मयोगी के रूप में उपस्थित हुए हैं। मसुरा और दारिका के महावीर, पराक्रमी, महायोद्धा, राजराजेश्वर श्रीकृष्ण हैं तथा गोकुल और वृन्दावन में विहार करने वाले नन्दन रसिक शिरोमणि वे गोपाल कृष्ण भी हैं।

भारतीय वाङ्मय में श्रीकृष्ण के विविध रूपों के दर्शन के बाद भक्ति के क्रमिक विकास पर दृष्टिपात करते हैं।

भक्ति की व्याख्या :

वेद मंत्रों में भक्ति भावना के तत्त्व निहित ही सकते

हैं पर मक्ति शब्द का स्पष्ट रूप से व्यवहार वहाँ नहीं मिलता । यास्क मुनि के निरुक्त में कुछ ऐसे प्रयोग अवश्य हैं जिनमें मक्ति शब्द का व्यवहार होने पर भी भाव दूसरा ही व्यक्त होता है यथा- "वग्नि मक्तीति" , "इन्द्र मक्तीनि"^१ आदि । उधर पाणिनि के कुछ सूत्रों^२ में मक्ति का आभास मिलता है। "धर गाथा" (श्लोक ३७०) में मक्तिमान् ज्यवा पाति के "मक्तिमा" शब्द का प्रयोग मिलता है। किसी किसी जातक में भी मक्ति का उल्लेख हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि चतुर्थ शताब्दी ईस्वी से पूर्व मक्ति शब्द एक धार्मिक विशिष्ट शब्द के रूप में कहीं प्रयुक्त नहीं हुआ । कहीं उसका प्रयोग प्रेम के अर्थ में हुआ है और कहीं इस शब्द से वात्सल्य का बोध होता है। हाँ २०० ईस्वी पूर्व में प्राप्त कुछ शिलालेखों के आधार पर यह बनसाया गया है कि भारत के उत्तर पश्चिम भाग में भागवत धर्म प्रचलित था । इसे यूनान के लोगों ने भी अपनाया ।

अत्युत्पत्तिपूर्ण व्याख्या करने पर "मक्ति" शब्द "मज्" सेवायाम् धातु से "क्तिन्" प्रत्यय लगाकर बनाया गया है जिसका अर्थ होता है भगवत्सेवा करना । शाण्डिल्य मक्ति सूत्र के अनुसार ईश्वर में परम अनुरक्ति ही मक्ति है।^५ शाण्डिल्य ने योग की ज्ञान और मक्ति दोनों का

^१-Vaishnavism, Shaivism & Minor Religious systems(1929) Bhandarkar and the sources of the Religion of the Bhagvad-gita.

2. 4,3, 95

3. Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol. II p. 539

4. Vaishnavism, Shavism & Minor Religious systems introduction pp 63- Bhandarkar.

^५ सा परानुरक्तिरीश्वरे ॥ शाण्डिल्य मक्ति सूत्र, मक्ति चन्द्रिका श्लोक २

साध्य माना है (सूत्र १६) उनके भक्ति सूत्र में यह भी कहा गया है कि भक्ति की दृढ़ता और निरमलता का ज्ञान भी लौकिक प्रीति की भाँति बाह्य चिह्नों से ही जाता है अर्थात् भगवत्कृपा, श्रवण, नाम कीर्तन आदि में रोमांच और क्लृपात आदि से विशुद्ध दृढ़ भक्ति का अनुमान होता है (सूत्र ४३) गोपेश्वर जी 'भक्ति मार्तण्ड', में भक्ति की जो व्याख्या प्रस्तुत करते हैं वह भी शाण्डिल्य सूत्रोक्त व्याख्या से ही साम्य रखती है। 'भक्ति चिन्तामणि' में 'योगवियोगवृत्ति प्रेम' को ही भक्ति का मानदण्ड स्वीकार किया गया है।

नारदभक्ति सूत्र में भक्ति को ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूपा और अमृतस्वरूपा बतलाया गया है जिसे प्राप्त कर मानव सिद्ध, अपर और दृष्ट हो जाता है। जिसको प्राप्त कर मनुष्य न तो किसी वस्तु की इच्छा करता है, न शोक करता है न द्वेष करता है और न ही किसी वस्तु में वासक्त होता है। विषय भोगों के प्रति वह निरुत्साहित हो जाता है सर्व वात्मानन्द के साक्षात्कार से वह सांसारिक विषयों से निरपेक्ष रहता है।

देवर्षि नारद ने समस्त शुभाशुभ कर्मों को ईश्वरार्पण करना तथा ईश्वर के तनिक भी विस्मृत होने पर व्याकुल होना भक्ति का लक्षण बतलाया है। इस दृष्टि से उन्होंने ब्रज की गजदशु, मावुक गोपियों की भक्ति को आदर्श भक्ति माना है (सूत्र १६-२१) नारद मुनि के अनुसार इस प्रकार की भक्ति फल रूपा होने के कारण कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठतर होती है। (सूत्र २५, २६) ।

भागवत पुराण में भक्ति की व्याख्या इस प्रकार की गई है कि प्रेम जब निरतशित (वह अनुराग जिससे अधिक अनुराग का अधिक नितान्त अभाव होता है) होने के साथ साथ हेतु रहित, कामना रहित तथा निरन्तर हो जाता है, तो भक्ति शब्द द्वारा अभिहित किया जा सकता है :

“ अहेतुवयव्यवहितं या भक्तिः पुरुषोद्यमे ” १

भक्ति या प्रेम पूर्ण रूप से निष्काम होना चाहिए । कामना युक्त भक्ति निम्न कोटि की होती है। ज्ञान प्राप्त किये बिना निष्काम भक्ति की उपलब्धि नहीं हो सकती, अतः ज्ञान भक्ति के क्षेत्र में नितान्त अपेक्षित है। ज्ञानी पुरुष कर्तव्य बुद्धि के आधार पर ब्रह्म के प्रति प्रेम स्थापित करता है। भागवत के अनुसार :

“ वात्मारामाश्चरि मुनयो निग्नन्था अप्युरुक्रमे ।

कूर्वन्त्यहेतुकीं भक्तिमित्यभूतगुणो हरिः ॥ ” २

अर्थात् वे वात्माराम मुनि जिनकी समस्त ग्रंथियां सुत गई हैं, जो सर्वथा सुख हैं, भगवान् विष्णु की अहेतुकी भक्ति करते हैं, भक्ति के सच्चे अधिकारी होते हैं कारण जगत् के हृदय को आकर्षित करने वाले हरि स्वभाव से ही ऐसे मनोरम और कल्याणकारी गुणों के वागार हैं।

विद्वानों ने अन्वेष्णीपरान्त यह कहा है कि गीता में, भक्ति पद्धति अथवा ऐकान्तिक धर्म की जो नाराय को नारायण से प्राप्त हुआ, प्राचीनतम विवेचना उपलब्ध है। गीता में मानव के लिये सर्वोत्तम धर्म वही माना

१- भागवत ३।२६।२२

२- ,, १।७।१०

३- Vaishnavaism, Shavism and minor religious system-Bhandarkar (Introduction) pp 4

है जिसके द्वारा भगवान् कृष्ण में भक्ति हो, भक्ति भी ऐसी जो सर्वकामना ^१रहित हो तथा नैरन्तर्य एवं स्थिरता से युक्त हो ।

पाचिरात्र में ईश्वर के प्रति प्रेम भक्ति के लिए आवश्यक माना है। ईश्वर प्रेम के साथ वहाँ 'सान्निध्य' को आवश्यक नहीं माना गया ^२। पाचिरात्र संहिता के अनुसार भगवत्स्वरूप प्राप्य वस्तु की इच्छा करने वाले उपाय ही व्यक्ति की प्रार्थना में पर्यवस्यति, निश्चयात्मिका बुद्धि की प्रपत्ति का स्वरूप है तथा अनन्य साध्य भगवद् प्राप्ति में महाविश्वासपूर्वक भगवान् को ही एक मात्र उपास्य समझकर उपाय करते रहना ही प्रपत्ति है। इसी को शरणगति कहते हैं ^३।

भक्ति का विश्लेषण करते हुए वैष्णव भक्तों ने भी भक्ति रस को ही सर्व प्रधान माना है। महाप्रभु बल्लभाचार्य जी ने भक्ति की परिभाषा इस प्रकार से की है, " भगवान् में माहात्म्य ज्ञानपूर्वक सुदृढ़ वीर सतत स्नेह ही भक्ति है। भक्ति का इससे सरल उपाय अन्य कोई नहीं ^४। "

रागात्मन् जी ने भी भक्ति को ही भक्ति का अमोघ ^५उपाय बताया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्ति का क्षेत्र सुविस्तीर्ण है। इसके द्वारा भक्त भगवान् के प्रति रागात्मक व दृढ़ सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। उसे लोक परलोक की भी चिन्ता नहीं रहती। लोक परलोक तो क्या उसे भक्ति रहित भक्ति भी निर्मूल्य प्रतीत होती है।

१- गीता १।२।६

२- History of Indian Philosophy Vol. IV pp 355-S.N.Dasgupta

३- कल्याण, साधना, अस्त १९४०

४- तत्त्वदीप निबन्ध, ज्ञान सागर बम्बई,

५- भागवत सम्प्रदाय, ले० बलदेव उपाध्याय, पृ० २६३, ६४

भक्ति का विकास :

सम्पूर्ण जगत् की उत्पादिका शक्ति के साक्षात्कार हेतु और उससे सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्राचीन काल से ही भारत में ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग, योगमार्ग और भक्ति मार्ग प्रचलित रहे हैं। इन चारों साधनाओं में ज्ञान को बुद्धि शक्ति का, कर्म को क्रिया शक्ति का, योग को मन एवं प्राण शक्ति का तथा भक्ति को भावना शक्ति का प्रतीक स्वीकार किया गया। पर चूंकि ज्ञान और योग के गहन विषय साधारण जनता की पहुँच से परे होते हैं, अतः लोगों ने वाशावादी, सरल और सहज भक्ति मार्ग को ही अपनाता उचित समझा।

भक्ति के उद्भव और विकास क्रम के सम्बन्ध में पर्याप्त मत भेद है। पाश्चात्य विद्वान्, वेबर, कीप और ग्रियर्सन भक्ति को ईसाई धर्म की देन स्वीकार करते हैं। मध्यकालीन उपासना पद्धति में प्रेम तत्त्व निहित होने के कारण तथा ईसाई मत का भी मूल सिद्धान्त प्रेम होने के कारण ही संभवतः उन्होंने अपनी धारणा को दृढ़ आधार देने का प्रयत्न किया। इसी प्रकार प्रो० विल्सन ने भक्ति को क्लासिक युग की उत्पत्ति कहकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि विभिन्न सम्प्रदायों के गुरुओं ने अपनी सामाजिक वादर की भावना के हेतु इसका प्रचार किया।

श्री राय चाँधरी तथा श्री बाल गंगाधर तिलक ने उक्त मान्यता का प्रमाण सहित सपष्टन करते हुए भक्ति को वैदिक युग की देन स्वीकार किया है। वेद तथा ब्राह्मण ग्रंथों में 'अनुरागसूचक' भक्ति शब्द के अभाव के बावजूद

१- Journal of the Royal Asiatic Society 1907 pp 311-36
Encyclopaedia of Religions & Ethics Vol. II pp 539, 551

२- Hindu Religions - Wilson - pp 232

पर यह मानना सर्वथा अनुचित है कि उस युग में भक्ति की कल्पना का आविर्भाव नहीं हुआ था, वैसे भी ईसामसीह के जन्म काल से पूर्व जिस भक्ति के तत्व हमें भारतीय साधना में मिलते हैं, उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

डा० बेनी प्रसाद के अनुसार ^१ “ भारतीय भक्ति सम्प्रदाय का वादि स्रोत ऋग्वेद है। यहाँ कुछ मन्त्रों में वादमी और देवता के बीच गाढ़े प्रेम और मिश्रता की कल्पना की गई है। ” वैसे भक्ति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद के प्रस्तुत मंत्र में उपलब्ध होता है :

“ तस्य ते भक्तिवासः स्याम ^२ ”

ज्यांतु है प्रभु हम तेरी भक्ति से युक्त हो। शाण्डिल्य के भक्ति सूत्र ^३ से भी यही बात स्पष्ट है कि भक्ति श्रुति से ही जानी जा सकती है। वैदिक साहित्य में उपासना भाव से वर्णित इन्द्र, यम, वरुण वादि अनेक देवताओं के नाम नहीं हैं, प्रत्युत एक ही ईश्वर के अनेक गुण और शक्तियों को प्रकट करने वाले अनेक नाम हैं। ^४ इस प्रकार वैदिक युग में उपासना या भक्ति का महत्व था। ब्राह्मण युग में कर्मकाण्ड का महत्व होने पर भी भक्ति भाव की विरक्ता न थी। ब्राह्मण ग्रंथों में हमें ऋदा और अतुराग दोनों की स्पष्ट झलक दृष्टिगत होती है। वारण्यक, उपनिषद् युग में कर्मकाण्ड के विरुद्ध ज्ञानकाण्ड की घोर प्रतिक्रिया हुई, परिणामस्वरूप ज्ञानकाण्ड का

१- डा० बेनी प्रसाद द्वारा रचित- हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता -पृ० ४२

२- ऋग्वेद संहिता ६।१६।३

३- भक्तिः प्रेया श्रुतिभ्यः (१।२।६) शाण्डिल्य का भक्ति सूत्र

४- भारतीय साधना और सूर साहित्य - ले० मुंशी राम शर्मा पृ० २२

प्रतिस्थापन हुआ । परन्तु उपनिषदों में ज्ञान काण्ड का महत्त्व वर्णित होने पर भी भक्ति की गरिमा स्थान स्थान पर दिसाई देती है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में भक्ति के सम्बन्ध में एक वृत्ति महत्वपूर्ण उल्लेख प्राप्त है।

‘ यस्यैवै परामर्शिन्युक्ता देवै तथा गुरो ।

तस्यै कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ १

ज्यात् जिस पुरुष को देव और गुरु में समान भक्ति होती है, उसी को ये कहे गये कथं स्वतः प्रकाशित होते हैं। उपनिषद् साहित्य में भक्ति का यह प्रथम प्रयोग माना जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्ति का सर्वग्राह्य विकास वैदिक युग में हुआ । वैदिक साहित्य के समान ही प्राचीन सम्प्रदायों के वागम अथवा तंत्र साहित्य में भी भक्ति के बीज उपलब्ध होते हैं। अधिकशक्तिशाली शाक्त सिद्धान्तों में रुद्र शिव को लेकर सर्वशक्तिमान की साकार कल्पना की गई है।^२ पांचरात्र मत में भी भक्ति की प्रधानता है। पांचरात्र रहस्य नामक ग्रंथ के अनुसार भगवान् ऊर्वा- विभव- व्यूह- सूक्ष्म व अन्तर्यामी, ये पांच प्रकार के रूप धारण करते हैं। उपासक के भावानुसार ईश्वर इनमें से कोई रूप धारण कर लेते हैं। इन पंचविध मूर्तियों की वाराधना क्रमशः भक्ति का रूप ले लेती है, परन्तु यह ईश्वरानुग्रह द्वारा ही सम्भव है। शंकराचार्य जी ने अपने ‘ब्रह्मसूत्रभाष्य’ (२।२।४३-४५) में पांचरात्र मत को अवैदिक कहा है परन्तु इसे संपूर्ण रूप से अवैदिक मानने का कोई आधार नहीं। यह सम्भव है कि तत्कालीन विचार-

१- श्वेताश्वतर उपनिषद् ६- २३

२- कुलार्णव तन्त्र ५ पटल अध्याय ६

धाराओं का जल इसमें जा गया हो क्योंकि उस समय धर्म दर्शन, शैव, शाक्त योग आदि जैन शास्त्रों में विभक्त था । वैदिक युग में भक्ति का यह विकसित रूप भक्ति का प्रथम उत्थान कहलाया । भक्ति के इस प्रथम उत्थान में ही वैष्णव प्रधान भक्ति सिद्धान्तों का भी पर्याप्त विकास हुआ । पुराणों का इन सिद्धान्तों के प्रतिपादन में पर्याप्त योगदान रहा । वैसे तो लगभग सभी पुराण निर्गुण और सगुण भक्ति की महिमा से ओत प्रीत है पर भक्ति का सभी दृष्टियों से पूर्ण विवेचन भागवत में ही उपलब्ध होना है। भागवत उद्दे का तो आदि मध्य और अन्त भक्ति से भरपूर है। प्रथम स्कन्ध के द्वितीय अध्याय में ही भागवतकार ने भक्ति का स्वरूप वर्णित किया है। फिर बारहवें स्कन्ध के अन्त में भी ईश्वर भक्ति की ही कामना की है। गीता की भक्ति तो कर्म और ज्ञान का समन्वय है पर भागवतकार ने भक्ति को कर्म और ज्ञान के दायरे से निकाल कर कहीं २ पर मुक्ति से भी बढ़कर उसे माना है। पंचम स्कन्ध में शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहते हैं :

‘मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम्’ १

अर्थात् भगवान् भक्त को मुक्ति भी सुगमता से प्रदान कर देते हैं, पर अपनी भक्ति को वे इस प्रकार सहज ही में नहीं देते । भक्त भी किसी प्रकार की मुक्ति की कामना न करता हुआ केवल भक्ति की इच्छा करता है। इस प्रकार की भक्ति के भागवत में नौ भेद वर्णित हैं : यथा :

‘अवर्ण, कीर्त्तन विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चन, वन्दन, दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

इति पुंसार्पिता विष्णोर्भक्त्यैवैवमवलदाणा ।

क्रियते भगवत्पूजा तन्मन्यधोतमुत्तमम् ॥ २

१- भागवत, पंचम स्कन्ध अध्याय ६ श्लोक १८

२- ,, सप्तम स्कन्ध- अध्याय ५ श्लोक २३, २४

कथात् विष्णु भगवान् की भक्ति के नौ भेद हैं :

- १- श्रवण
- २- कीर्तन
- ३- स्मरण
- ४- पादसेवन
- ५- कर्न
- ६- वन्दन
- ७- दास्य
- ८- सख्य तथा
- ९- वात्सल्य निवेदन

यदि भगवान् के प्रति समर्पण भाव से यह नौ प्रकार की भक्ति की जाये, तो मैं उसी को उत्तम अध्ययन सम्झता हूँ। इस नवधा भक्ति का विवेचन भागवत में स्थान स्थान पर हुआ है। श्रवण भक्ति द्वारा धृष्टकाशी ने मूलयोनि से उद्धार पाकर वैकुण्ठ की प्राप्ति की, उसी प्रकार नाम स्मरण से पापी कजामित ने नरक से उद्धार पाकर विष्णु धाम में स्थान प्राप्त किया। इस प्रकार वनेक उदाहरणों द्वारा भागवत में यह विश्वास दिखाया गया है कि भक्ति द्वारा निश्चय ही प्राणी का उद्धार हो जाता है। गीता तो ज्ञान, कर्म और उपासना तीनों का समन्वय करती हुई भगवद्भक्ति को महत्त्व प्रदान करती है पर भागवत शुद्ध रूप से भक्ति मार्ग का ही उपदेश प्रदान करता है।

भक्ति के प्रथम उत्थान के उपरान्त वैष्णव भक्ति के उत्थान का द्वितीय युग आता है, जिसका श्री गणेश तो हुआ वात्सल्य सन्तों

१- भारतीय साधना और सूर साहित्य- डा० सुशी राम शर्मा पृ० ३३

से और जन्म हुआ वैष्णवाचार्यों के समय से । वात्सवार तमिल भाषा का शब्द है जिसका तात्पर्य है - ईश्वर के भक्ति रस में तीन व्यक्ति । ईश्वर के भक्ति रस में सरीबोर ये वात्सवार सन्त भगवान् की तीला के पदों को सामान्य जनता के बीच गाया करते थे । इस युग में (७०० ई० से १४०० ई० तक) मुख्य रूप से चार सम्प्रदायों का जन्म हुआ :

निम्बार्क सम्प्रदाय - श्री सम्प्रदाय - माध्व सम्प्रदाय
 एवं रुद्र या विष्णु स्वामी सम्प्रदाय । निम्बार्क सम्प्रदाय के विद्वानों ने संस्कृत के माध्यम से अपने भावों की अभिव्यक्ति की और प्रस्थानत्रयी उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्गीता के प्रौढ़ भाष्यों की रचना करके यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि निम्बार्क सम्प्रदाय के सिद्धान्तों और वैदिक सिद्धान्तों में मूलतः कोई भेद नहीं है। उस सम्प्रदाय के अनुकरण कर्तारों ने भवण, कीर्तन की पद्धति से राधा कृष्ण की वाराधना की । श्री तथा माध्व सम्प्रदाय के वाचार्य लक्ष्मी नारायण की उपासना पर जोर देते थे भक्ति की उपयोगिता और महत्व पर उनकी क्वाध ब्रह्मा थी । मध्वाचार्य जी ने अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए ईश्वर की वमला (मत रहित या निर्दोष भक्ति) भक्ति को मुक्ति का सर्व श्रेष्ठ साधन ठहराया है।

विष्णु स्वामी का रुद्र सम्प्रदाय उपर्युक्त तीनों सम्प्रदायों के समान लोकप्रिय नहीं हुआ पर भक्ति के तृतीय उत्थान में वात्सवार्य वल्लभ ने इसके सिद्धान्तों का पर्याप्त प्रचार किया ।

भक्ति के तृतीय उत्थान का प्रसार काल सन् १४०० से लेकर सन् १६०० ई० तक है। इस युग में दो धाराओं के रूप में भक्ति वान्दोलन

का विकास हुआ। प्रथम धारा रामबिन्दु शास्त्रा और द्वितीय कृष्ण भक्ति शास्त्रा के नाम से अभिहित हुई। राम भक्ति शास्त्रा के प्रवर्तक स्वामी रामानन्द थे, जिन्होंने इतिहास भारत की धार्मिक जागृति की लहर को सरल सिद्धान्तों द्वारा सभी वर्णों और वर्गों के समक्ष प्रस्तुत किया, सामान्य जनता उसमें अवगाहन कर कृतकृत्य हो उठी। मुसलमानों के पीछण व्याचारों से पीड़ित भारतीय जनता के लिए ब्रह्म की इतनी सहज और मधुरभक्ति इससे पूर्व किसी ने नहीं दर्शायी थी वनः साधारण जनता को यह वरदान सिद्ध हुई।

स्वामी रामानन्द द्वारा प्रवर्तित सिद्धान्तों से निर्गुण और सगुण भक्ति की दो धारायें प्रवाहित हुई जिसमें निर्गुण धारा के प्रचारक थे। सन्त कबीर दास और सगुण धारा के कर्णधार थे भक्त प्रवर गोस्वामी तुलसीदास जी।

कृष्णभक्ति धारा का उद्गम स्थल भगवान् कृष्ण की अलौकिक लीलाओं का केन्द्र वृन्दावन है। यहीं पर समयानुसार ये चार सम्प्रदाय उत्पन्न होकर विकसित हुए : निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य एवं राधा वल्लभ। निम्बार्क सम्प्रदाय समस्त वैष्णव सम्प्रदायों में प्राचीनतम है। चैतन्य तथा वल्लभ समकालीन थे। निम्बार्क, चैतन्य और वल्लभ ने अपने अपने सम्प्रदायों के सिद्धान्तों के निर्माण के हेतु श्रीमद्भागवत से पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की। ये आचार्य भागवत की भक्ति भाणीरथी में हुक्की लगाकर स्वयं ही बवित्र नही हुए अपितु करोड़ों मनुष्यों को उन्होंने उसमें अवगाहन कराया। इन आचार्यों ने भक्ति का बड़ा ही सूक्ष्म और गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया, अनेक स्थलों पर अपने सिद्धान्तों का प्रचार व प्रसार किया। चैतन्य सम्प्रदाय में तो भक्ति की सीमांक्षा रूपी स्वामी जी ने 'हरिभक्ति रसामृतसिंह',

उज्ज्वल नीलमणि तथा जीव गौस्वामी जी ने भक्ति सन्दर्भ आदि ग्रंथों के माध्यम से की।

भक्ति का यह तृतीय उन्धान पर्याप्त विकासोन्मुख व सकल रहा।

मध्ययुग में कई भक्ति सम्प्रदायों का उदय हुआ।

वैष्णव सम्प्रदाय आचार्यों द्वारा प्रवर्तित थे और कुछ स्वयं भक्तों द्वारा। आचार्य प्रवर्तित सम्प्रदायों के मूल में शंकराचार्य के ज्ञान का मण्डन तथा भक्ति मार्ग का मण्डन है। आचार्य शंकर के ज्ञान से भक्ति मार्ग की अपेक्षित प्रतिष्ठा नहीं हो सकी थी, कारण उन्होंने ब्रह्म के ज्ञान स्वरूप को महत्व प्रदान किया, भक्ति के लिए हृदय पदा अपेक्षित है, जिसको मध्ययुगीन आचार्य और भक्तों ने प्रधानता दी। आचार्य शुक्ल के शब्दों में "शंकराचार्य जी ने ब्रह्म को चित्स्वरूप कहकर 'ज्ञान' (को उसका पारमार्थिक) स्वरूप कहा था, पर वत्सनाचार्य जी ने 'हृदय' को प्रधानता दी। हृदय पदा पर जोर देना तो भक्ति मार्ग के लिए बहुत ही आवश्यक है। उपास्य में हृदय मानकर ही प्रेम किया जा सकता है।" इसके अतिरिक्त आचार्य शंकर ने ब्रह्म के निर्गुण, निराकार और निर्विशेष रूप को ही ब्रह्म का वास्तविक रूप स्वीकार किया, माया के प्रभाव से ही ब्रह्म विगुण सा प्रतीत होता है। उनके अनुसार यह नाना रूपात्मक जगत् भी ब्रह्म की सत्ता से भिन्न केवल भ्रान्त प्रतीति है। इस प्रकार सर्वमें उस परब्रह्म का ही अस्तित्व है। जीव ब्रह्म का ही आभास या प्रतिबिम्ब है। जब तक इस अपेक्षा का अनुभव नहीं होता, तब तक भक्ति असम्भव है। शंकराचार्य जी देह रहते ब्रह्म साक्षात्कार की अवस्था अथवा जीवन्मुक्ति की अवस्था को मोटा दशा स्वीकार करते हैं। उनके ज्ञानवाद के महावाक्य है :

१- प्रवाद- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ० ६६

“ सर्वसत्त्विर्द ब्रह्म ” तथा “ ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या ” अर्थात् सब कुछ ब्रह्म है, सर्व ब्रह्म ही सत्य है शेष सभी पदार्थ असत्य हैं। वस्तुतः आचार्य शंकर के सिद्धान्त में ज्ञान को मुख्यत्वेन तथा मक्ति को अज्ञानत्वेन स्वीकार किया गया है। इस प्रकार उनके द्वारा प्रतिपादित कर्तव्यवाद के प्रचार से मक्ति का दोष धूमिल हुआ और ज्ञान का पथ-प्रशस्त हो चला। शंकराचार्य जी के दार्शनिक ऊँचीपोह एवं गम्भीर विन्माधारा से मुक्ति पाने के लिए परवर्ती आचार्यों ने अपने अपने मक्ति सम्प्रदायों की स्थापना की। प्रत्येक सम्प्रदाय के दो पदा हैं : सिद्धान्त पदा और आचरण पदा एवं प्रमुख सम्प्रदाय निम्नलिखित हैं :

रामानुज सम्प्रदाय

मध्व सम्प्रदाय

निम्बार्क सम्प्रदाय

वल्लभ सम्प्रदाय

चैतन्य सम्प्रदाय

राधावल्लभ एवं

ससी सम्प्रदाय

आचार्य रामानुज द्वारा प्रवर्तित सिद्धान्त विशिष्टा-
द्वैत तथा आचार्य मध्व द्वारा स्थापित सिद्धान्त द्वैतवाक्य कहलाया। निम्बार्क सम्प्रदाय में छ भेदाभेद या द्वैताद्वैत के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया, अर्थात् जीव अवस्था भेद से ब्रह्म के साथ भिन्न भी है और अभिन्न भी। वल्लभ सम्प्रदाय का सिद्धान्त पदा शुद्धाद्वैतवादी, ब्रह्मवादी तथा अविकृत परिणाम-वादी कहलाता है। अर्थात् ब्रह्म माया से अलिप्त निरान्त शुद्ध है, जगत् ब्रह्म का ही परिणाम है जो अविकृत अर्थात् विकार रहित है। चैतन्य सम्प्रदाय

का सिद्धान्त वक्तव्य मेदामेद नाम से व्यवहित होता है, अर्थात् भगवान् श्री कृष्ण ही परम तत्त्व हैं जिनकी अनन्त शक्तियाँ हैं। शक्ति और शक्तिमान का सम्बन्ध वक्तव्य है, जिनमें न मेद ही सिद्ध होता है और न उमेद ही। राधा वल्लभ और हरिदासी सम्प्रदाय में दार्शनिक सिद्धान्तों का महत्त्व नहीं, वहाँ राधा कृष्ण की माधुर्योपासना की ही मान्यता प्राप्त है। राधा वल्लभ सम्प्रदाय में बाह्यादिनी शक्ति रूपा राधा की प्रधानता है। इस प्रकार कृष्ण भक्ति के लाभ सभी सम्प्रदायों के दार्शनिक सिद्धान्तों में वैजाय्य है वैसे लाभ सभी सम्प्रदायों के मूल में भक्ति तत्त्व निहित है। ज्ञान तथा कर्म का वात्रय लेकर भक्ति की प्रमुखता ही वहाँ दर्शायी गयी है। प्रेम लदाणा माधुर्यमयी भक्ति को वाचार्यों ने सम्बल रूप में ग्रहण किया है।

यद्यपि सभी सम्प्रदायों में प्रेम लदाणा भक्ति को स्वीकार करके राधा कृष्ण की मधुर लीलाओं का गान किया गया है, एवं ईश्वरानुग्रह को ही रागानुगा भक्ति का सर्वस्व माना गया है। तथापि उपास्य और उपासक के स्वरूप मेद के कारण उनकी भक्ति के वाचरण पदा में भी किंचित् मेद दिसाई देता है। निम्बार्क और वल्लभ सम्प्रदाय में राधा को कृष्ण की स्वकीया मानकर भक्ति की गई है, दूसरी ओर चैतन्य मत्तावलम्बियों ने उसे परकीया माना है। इन दोनों मन्त्रों के विपरीत राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदाय में राधा को स्वकीया परकीया भाव से रहित नित्य विहारी माना गया है। ब्रज के इन कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों की उपासना और भक्ति में सूक्ष्म मेद भले ही हो, किन्तु उन सभी की भक्ति का मूल आधार मधुर भाव ही है। मधुर भाव से राधा कृष्ण की उपासना करके ईश्वरानुग्रह प्राप्त करना ही भक्ति सम्प्रदायों के वाचार्यों की अभीष्ट था। वल्लभ सम्प्रदाय में वाचरण पदा का यह मार्ग पुष्टि मार्ग कहलाता है।

इस सम्प्रदायों में दीक्षित हिन्दी के मुख्य कवियों के साहित्य में भी उन सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति हुई है। उनकी रचनाओं में सिद्धान्त भेद और सिमट गए हैं, तथा अधिकारी स्थलों पर तो उनकी रचनाएँ सैदान्तिक दृष्टि से अमेदमयी सी लगती हैं, केवल कल्पना और काव्य कला का ही भेद रह जाता है। अतः उनके ब्रह्म, जीव, जगत्, माया और मोक्ष सम्बन्धी सिद्धान्तों में पर्याप्त साम्य दृष्टिगत होता है।

ब्रह्म :

पुराणों में ब्रह्म सम्बन्धी दार्शनिक विवेचन पर्याप्त मात्रा में है। पुराणों से पूर्व उपनिषदों और महाभारत आदि संस्कृत ग्रंथों में भी ब्रह्म सम्बन्धी दार्शनिक विचार मिलते हैं। गोपालपूर्वतापनी उपनिषद् में उन कृष्ण की वर्त्तना की गई है, जो अनायास ही सब कुछ कर सकने वाले सर्व सच्चिदानन्द स्वरूप हैं तथा जो वेदान्त द्वारा ज्ञातव्य, सबकी बुद्धि के साक्षी तथा समस्त जगत् के गुरु हैं।

उपनिषदों की भाँति महाभारत में भी इस बात का उल्लेख है कि जगद्नियन्ता, देवाधिपति वसिष्ठ लोकपति भगवान् नारायण ही वासुदेव श्रीकृष्ण रूप में पृथ्वी पर अवतरित हुए थे^१। इसमें कृष्ण का पराक्रमी रूप अनेक स्थलों पर वर्णित है। उपनिषदों और महाभारत के कृष्ण के इस रूप का प्रभाव पुराणों पर पड़ा तथा मध्यकालीन कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों पर भी यही प्रभाव लक्षित होता है। भागवत में कृष्ण ने एक स्थान पर स्वयं-स्वयं को जगत् का परम कारण, ब्रह्मा और महादेव कहा है एवं सबका आत्मा

१- गोपालपूर्वतापनी उपनिषद् , प्रथम उपनिषद् श्लोक १

२- महाभारत आदि पर्व, अध्याय ६४

३- भागवत ४।७।५० , ५१, ५२

ईश्वर और सादगी, स्वयं प्रकाश और उपाधिभूषण वर्णित किया है। अपनी त्रिगुणात्मक माया को स्वीकार करके वे ही जगत् की रचना, पालन और संहार करते हैं। ऐसे भेद रहित और विशुद्ध परब्रह्म को ज्ञानी पुरुष ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा अन्य विभिन्न रूपों में देखता है।

श्री निम्बार्क ने ब्रह्म को सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान्, कर्त्ता, त्रिविम्ब, निर्विकार तथा सम्पूर्ण विश्व का आधार और कारण माना है। इसी मान्यता की पुष्टि श्री निवासाचार्य जी के निम्न सूत्र से होती है :

“ यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः ” १

अर्थात् ब्रह्म सर्वज्ञ है, वह भूत, भविष्य वर्त्तमान तीनों कालों की सभी स्थितियों का विज्ञ है और यह ज्ञान ही उसका तप है।

वह जगत् का उपादान और निमित्त कारण है। कृष्ण के ही यहाँ परब्रह्म, नारायण, भगवान्, परमात्मा, पुरुषोत्तम आदि अनेक नाम हैं।

इस सम्प्रदाय में परब्रह्म कृष्ण सदैव राधा के साथ सुशोभित हैं। राधाकृष्ण के वामार्ग में विराजित हैं। सहस्रो सती उनकी सेवा करती हैं। जो कोई उनका प्रेमपूर्वक स्मरण करता है उसकी सकल कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं एवं उसे परम धाम प्राप्त होता है :

“ कीदृ वामे कृष्णभानुर्जा मुदा, विराजमानामृतस सौभागाम् ।

सती सहस्रे परिसेवितासदा, स्मरेय देवीं सकलैष्ट कामदाम् ॥२

१- वेदान्त कास्तुभ भाष्य प्रथम सूत्र

२- दशश्लोकी ७श्लोक ५

श्री निम्बार्कचार्य जी का कथन है कि इन्होंने श्री राधा का सदैव भजन करना चाहिये । श्री राधा कृष्ण के चरणारविन्दों का परित्याग कर जीव की अन्य कहीं गति नहीं । वे चरणारविन्द ब्रह्मा-शिवादि द्वारा वन्दित हैं :

‘ नान्यागमिः कृष्णपदारविन्दात् संदृश्यते ब्रह्माशिवदिवन्दिदात् १ । ’

इस प्रकार निम्बार्क सम्प्रदाय के कृष्ण ही परब्रह्म, परमेश्वर, सर्वज्ञ और भक्तों के सर्वस्व हैं।

चैतन्य मतानुयायी चैतन्य महाप्रभु को सादात् कृष्ण मानते हैं। श्री राधा की प्रेम-रस-मङ्गल्युरी के वास्वादन हेतु ही उन्होंने चैतन्य रूप में नवद्वीप में अवतार ग्रहण किया है :

‘ राधा कान्ति दुह कीर्ति करि ।

श्रीकृष्ण चैतन्य रूप कहल अवतार ॥ २

चैतन्य मतानुयायी श्रीकृष्ण को एक तथा समस्त शक्तियों का आधार भूत मानते हैं। श्रीकृष्ण की शक्तियाँ विन्मन के परे हैं क्योंकि उसमें एक साथ ही एकीभाव तथा पृथक्त्व के भाव विद्यमान रहते हैं। जिस प्रकार एक ही पदार्थ दूध विभिन्न गुणों और रसों का आश्रय है।

उसी प्रकार परमत्त्व का भी भिन्न २ प्रकार से पृथक् पृथक् अनुभव होता है। परन्तु है वह वास्तव में एक परब्रह्म है। श्री चैतन्य देव

१- दशश्लोकी श्लोक ८

२- चै० च० वादि लीला ४ पृ० २५

के ही शब्दों में श्रीकृष्ण क्लृप्य, ज्ञानतन्त्र वस्तु हैं। वे ही सर्वव्यापी, सर्वांगी, किशोर, शैशर, चिदानन्दस्वरूप, सर्वांगी और सर्वेश्वर हैं। उनका दूसरा नाम गोविन्द है, वे समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं तथा गोलोक उनका नित्य धाम है :

“ कृष्णो र स्वरूप विचार शुद्ध सनात्न ।

क्लृप्य ज्ञानतन्त्र वस्तु ब्रजेन्द्र नन्दन ॥

सर्व्यापी सर्व्व क्ली किशोर -शैशर ।

चिदानन्द देह सर्वांगीय सर्व्वेश्वर ॥

स्वर्य भगवान् कृष्ण गोविन्द परनाम ।

सर्व्वेश्वर्यपूर्ण जोर गोलोक नित्यधाम ॥ ” १

राधाकृष्ण को आनन्द प्रदान करने वाली हैं। कृष्ण स्वर्य जगत् मोहन हैं राधा इन्हें भी मोहित करती हैं। अतः वे सर्व श्रेष्ठ हैं। राधा पूर्ण शक्ति है और कृष्ण पूर्ण शक्तिमान् हैं जैसे मृगमद और उसकी गन्ध तथा अग्नि और उसकी ज्वाला में कोई भेद नहीं उसी प्रकार परब्रह्म श्री कृष्ण और राधा में कोई भेद नहीं । राधा कृष्ण दोनों एक ही स्वरूप हैं। केवल लीला रस के आस्वादन हेतु दो रूप धारण किये हैं :

“ जगत् मोहन कृष्ण नाहार मोहिनी, अतएव समस्मै परा त्कुराणी ।

राधापूर्ण शक्ति कृष्ण पूर्ण शक्तिमान्, दुष्ट वस्तु भेद नाहिं शास्त्रेण च प्रमाण ।

मृगमदनार गन्ध जैसे जैसे अविच्छेद, अग्नि ज्वाला ने जैसे वसु नाहिं भेद,

राधा कृष्ण ऐसे सदा एकद्व स्वरूप, लीला रस आस्वादि ने धीरे दुष्ट

रूप ॥ २

१- चैतन्य च० मध्यलीला परि० २० पृ० २६१

२- ,, आदिलीला ४ पृ० २५

तः चैतन्य सम्प्रदाय के कृष्ण परम तत्त्व हैं, अनन्त शक्तियों से पूर्ण हैं, एवं समस्त भक्तों द्वारा आराध्यनीय और भजनीय हैं।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक हितहरिवंश जी ने अपने भक्ति सिद्धान्त का मूलधार प्रेम माना है, ब्रह्म, जीव, जगत्, माया तथा मोक्ष पर उन्होंने कहीं भी विचार नहीं किया। प्रेम को उन्होंने 'सो वे सः' आदि श्रुतिपरक वाक्यों द्वारा सम्झाकर उस रूप भगवान् और परात्पर प्रेम तत्त्व में कोई भेद नहीं माना। इसी प्रकार ससी सम्प्रदाय में भी ब्रह्म, जीव आदि दार्शनिक तत्त्वों का कोई तात्त्विक विवेचन उपलब्ध नहीं।

आचार्य वल्लभ ने श्रीकृष्ण को परब्रह्म, मुक्ति से ऊपर तथा विरुद्ध धर्मों का वाशब्द माना है। तत्त्वदीप निबन्ध के प्रथम श्लोक में ही ईश्वर की वन्दना करते हुए उन्होंने कहा है कि मैं उस अद्भुत कर्म करने वाले कृष्ण को नमस्कार करता हूँ जो रूप और नाम के भेद से इस जगत् में झीड़ा कर रहा है।

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाम्भुत कर्मणे ।

रूपनाम विभेदेन जगत् क्रीडति यो यतः ॥ २

वल्लभ सम्प्रदाय के शुद्धाद्वैत मत के अनुसार परब्रह्म निर्गुण और सगुण दोनों है। प्रकृति प्रदत्त, निश्चेतन, सार्वभौमिक गुणों से रहित होने के कारण वह निर्गुण है परन्तु जिस ब्रह्म से इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय होना है वह केवल निर्विशेष और निर्गुण भी नहीं हो सकता। सर्वशक्तिमान्

१- अणु भाष्य, अध्याय ३ पाद २ सूत्र २१

२- तत्त्वदीप निबन्ध श्लोक १ पृ० १

और सर्वधर्मा ही हो सकता है। अतः ब्रह्म का उभयात्मक होना श्रुति सिद्ध है।

सत्, चित् और आनन्द इन तीन प्रमुख गुणों से युक्त होने के कारण उसे सच्चिदानन्द कहते हैं।

आचार्य वत्सल ने ब्रह्म के तीन स्वरूप किये हैं। परब्रह्म अथवा पूर्णपुरुषोत्तम, अन्तर्यामी तथा अक्षर ब्रह्म। श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं, वे ही समस्त दिव्य गुणों से युक्त होने के कारण पूर्ण पुरुषोत्तम कहलाते हैं, उनका शरीर सत्, चित् आनन्दमय है, उनकी सभी लीलायें नित्य हैं : जिन भक्तों की भक्ति परमावस्था^{स्था} को पहुँच जाती है तथा जिनका ईश-प्रेम व्यसन का रूप धारण कर लेता है उनको सुख प्रदान करने के लिये भगवान् वृन्दावन रूपी वैकुण्ठ में कृष्ण रूप में प्रकट होते हैं। भगवान् का यह कृष्ण स्वरूप ही परमानन्द स्वरूप है। अन्तर्यामी ब्रह्म का निवास प्रत्येक स्थल पर है, वह सर्वत्र विद्यमान है। श्रीकृष्ण जब स्वेच्छा से सत् स्वरूप को प्रधान कर देते हैं, तो अक्षर होकर सृष्टि के मूल कारण होते हैं इसमें सत् और चित् तो पर्याप्त मात्रा में रहता है पर आनन्द की पूर्णावस्था न होने के कारण वह 'गणितानन्द' कहा जाता है। ब्रह्म का अक्षर रूप आध्यात्मिक स्वरूप है और यही पुरुषोत्तम का परम धाम है। जब पुरुषोत्तम की झीड़ा की इच्छा होती है तो इस गणितानन्द अक्षर ब्रह्म से है। वे सृष्टि, स्थिति और संहार हेतु ब्रह्मा, विष्णु और महेश का आविर्भाव करते हैं।

इस प्रकार आचार्य वत्सल के कृष्ण पूर्ण परब्रह्म, पुरुषोत्तम, अन्तर्यामी जगत् की सृष्टि, स्थिति, संहारकर्ता निर्गुण तथा सगुण

१- उभय व्यकेशात् त्वल्लिकुण्डलवत् - ब्रा० सू० पर अणुभाष्य ३।२।२७

२- ब्रह्म सूत्र १।१।२ पर अणु भाष्य

उमय रूप हैं।

वष्टकाप के सूर वादि मकर कवियों ने भी वल्हमाचार्य जी के शुद्धादित मत का ही अनुसरण किया है। सूरदास जी के कृष्ण भी परब्रह्म निर्गुण तथा सगुण उमय रूप हैं। निर्गुण और सगुण दोनों रूप होने के कारण वे जगत् में अवतार भी धारण करते हैं। यह भाव सूर सागर के अनेक पदों से व्यक्त होता है :

‘ करनी कहनासिन्धु की कहु कहत न आवै ।
कष्ट हेतु परसै ककी जननी गति पावै ॥
वेद उपनिषद् जस कहै निर्गुण हि बनावै ।
सौहँ सगुण’ होय नन्द के दावरो बंधावै ॥ १

अपने ही रस में निमग्न ब्रह्म को इच्छा हुई कि मैं अपनी सृष्टि का प्रसार करूँ अपनी इच्छा को कार्य रूप में परिणत करने के लिये उसने अपनी कृष्ण रूप सृष्टि का विस्तार किया तथा स्वयं उस सृष्टि में वानन्द प्राप्ति हेतु वृन्दावन में अवतरित हुए । इस आशय का सूर का निम्नलिखित पद द्रष्टव्य है :

‘ अविगत वादि अनन्त अनूपम अलस पुराण अविनाशी ।

जहँ वृन्दावन वादि अजिर जहाँ कृज लता विस्तार ।

तहँ बिहरत प्रिय प्रियन्म दोउ निगम भृंग गुजार ।

जहाँ गोवर्धन पर्वत मनिमय सघन कन्दरासार ।

गोपिन मंडल मध्य विराजत, निसिदिन करन विहार ।

सेलन सेलन चित्त में जाई सृष्टि , करन विस्तार ।

अपने आप करि प्रकट कियो है, हरी पुरुष अवतार ॥ १

अः सूर के ब्रह्म में भी विरुद्ध धर्म साथ साथ रहने हैं यही उनकी विशेषता और विचित्रता है। वे वणु से भी सूक्ष्म हैं और महान् से भी महान् हैं। वे सर्वव्यापक अवल होने हुए भी चल है, अविभक्त होने हुए भी विभक्त है, अगम्य होने हुए भी गम्य है तथा अदृश्य होने हुए भी दृश्य हैं। परब्रह्म कृष्ण से सम्बन्धित सूर की धारणा का स्पष्टीकरण निम्न पंक्तियों से भली प्रकार हो जाता है :

अकार अच्युत, निराकार अविगत है जोई ।

वादि अन्त नहिं जाहि, वादि अन्तहिं प्रभु सोई । २

सूर के कृष्ण अकार, अच्युत, निराकार वादि अन्त से रहित ब्रह्म ही नहीं वरन् परमानन्द रूप भी हैं और इसी रूप में उनकी संपूर्णता तथा उनका परात्पर ब्रह्मत्व स्पष्ट होता है परन्तु उनका परमानन्द रूप निर्विकल्प तथा अविनाशी है उसका प्रकाश जगत् में नहीं होता अपितु कृष्णावतार के समय ब्रज की लीलाओं तथा वृन्दावन की लीलाओं के मध्य होता है। उन लीलाओं के हेतु जो कलात्मिक रचना की गई है वह भी ब्रह्म से ही आविर्भूत है। ब्रज के गोप-गोपी , गो-वत्स, द्रुम-लतादि सभी कृष्ण ब्रह्म के आनन्द रूप के ही वर्ण हैं। इनमें राधा का स्थान सर्वोपरि है, उनका कृष्ण के साथ विशेष रूप से एकत्व है, राधा के बिना कृष्ण का परमानन्द रूप पूर्णता को प्राप्त नहीं होता । कृष्ण हैं वादि पुरुष और राधा

१- सूरसारावली , सूर सागर - वे० प्र० पृ० २

२- सूरसागर ना० प्र० सभा- १७६३

हैं वादि प्रकृति । गोप गोपियाँ राधा - कृष्ण के प्रति श्रद्धा भाव रखते हैं, तथा उनकी निर्द्वज लीला की सराहना और लालसा करते हैं।

परब्रह्म कृष्ण ही सृष्टि के वादि, निमित्त और उपादान कारण हैं, वही सृष्टि के स्रष्टा, पालनकर्ता और संहारकर्ता हैं। सर्जन, स्थिति और संहार के कर्ता होने के कारण ही उनको ब्रह्मा, विष्णु और महेश नाम दिये गये हैं। उदाहरणार्थ :

‘ वापु कर्ता वापु हर्ता वापु त्रिभुवननाथ ।

वाप ही सबघट का व्यापी निगम गावन् नाथ ॥ १

इन्हीं ब्रह्म को वेद नेति नेति कहते हैं, सूर ने बार बार कृष्ण के अव्यक्त, अद्वैत, गुणातीत सर्वव्यापक, सृष्टि के कर्ता, हर्ता, विधाता, अजर, अमर और अचिन्त्य रूप की ओर ध्यान दिलाने की मरसक चेष्टा की है।

नन्ददास जी भी अद्वैत ब्रह्म को मानते हैं। उनकी मान मंजरी की पंचम मंजरी से यही भाव व्यक्त होना है :

‘ नाम, रूप, गुण भेद जे सोइ प्रकट सब ठौर ।

ता बिन तत्त्व जु जान कहू कहै सो अति बड़ बौर ॥ २

‘ सिद्धान्त पंचाध्यायी ’ में कृष्ण की स्तुति करते समय नन्ददास जी ने उके अपार रूप, गुण और कर्म की चर्चा की है :

‘‘ जै जै जै श्रीकृष्ण रूप गुण कर्म अपारा ।

परम धाम जग धाम परम अभिराम उदारा ॥ ३

१- सूरसागर - भा० प्र० समा० २२२१

२- मानमंजरी, पंचम मंजरी- बलदेव दास करसनदास पृ० ६६

३- सिद्धान्तपंचाध्यायी- नन्ददास - आचार्य शुक्ल, रामचन्द्र- पृ० १८३

नन्ददास जी ने भी परब्रह्म को विरुद्ध धर्मों का वाशय माना है, ज्योतिरूप तथा जगत् का निमित्त और उपादान कारण स्वीकार किया है। उसने अजन्मा होकर भी जन्म धारण किया और जो अजन्म होकर भी एक तथा व्यक्त होकर भी अव्यक्त है, वही परब्रह्म परमेश्वर सम्पूर्ण प्रकृति, शक्ति, सत्, रज, तम तीनों गुण तथा जीवक जीवन सभी कुछ है :

‘तुम ही प्रकृति सक्ति सब तुम ही सत् रज तम जे ते ते उमही ।

तुम ही जीवन तुम ही जीय, सब ठाँ तुम कोउ अवर न बीय ॥१

परमानन्द जी ने अपने काव्य में ब्रह्म का वैसा विवेचन नहीं किया जैसा सूर और नन्ददास के काव्य के अन्तर्गत हुआ है। फिर भी उन्होंने कृष्ण को ही साक्षात् परब्रह्म परमात्मा स्वीकार किया है, वे ही एक से अनेक रूप धारण करते हैं :

‘हंसत गोपाल नन्द के आगे नन्द स्वरूप न जानें ।

निर्गुण ब्रह्म सगुण धरि लीला लाहिब सुन करि मानें ।

८

८

परमानन्द स्वामी मनमोहन तेल रच्यो ब्रजनाथ ॥ २

मीरा वादि सम्प्रदाय मुक्त कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण के सिद्धांत पदा को विशेष महत्त्व नहीं दिया, कारण प्रेम वियो-गिनी मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की थी। वे कृष्ण के रूप सौंदर्य पर मुग्ध थी। ब्रह्म, जीव, जगत् और माया के पवड़े में फँसना उनके कृष्ण प्रेम

१- दशम स्कन्ध - दशम अध्याय- नन्ददास - वाचायं रामचन्द्र शुक्ल - पद २४१

२- परमानन्ददास पद संग्रह- पद १७

में दीवाने मन को गवारा नहीं थी । फिर भी मीरा के गिरिधर गोपाल वही अविनाशी परब्रह्म हैं :

‘ प्रभु तूमे पूरण ब्रह्म हो, पूरन पद दीजि हो ।

मीरा व्याकुल विरहनी, अपनी करि लीजि हो ॥ १

रसखान मी कृष्ण को विष्णु को अवतार सर्व ब्रह्मा, शंकर से भी श्रेष्ठ पूर्ण ब्रह्म स्वीकार करते हैं। उनकी इस बात की पूर्णता का आभास उनके काव्य में यत्र तत्र हो गया है : यथा-

“ गावै गुनी गनिका गन्धर्व औ सारद सेस सबै गुन गावत ।

नाम अनन्त गैरत गनेस औ ब्रह्म त्रिलोचन पार न पावत ॥

जोगी जती तपसी बरु सिद्ध निरन्तर जाहि समाधि लावत ।

ताहि अहीर की ह्रीहरिया हृदिया भरि काहु पै नाच नचावत ॥ २

इस प्रकार कृष्ण ही परब्रह्म हैं, जो ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् उन तीन रूपों में प्रकट होते हैं। इसमें व्याप्त ब्रह्म अक्षुर्वा है, जिनके उपासक जानी हैं ये लोग दूर से तैज पुत्र के रूप में उनका अनुभव करके मुक्त हो जाते हैं। दूसरा स्वरूप प्रत्येक जीवों के अन्तःकरण में बैठकर परमात्मा स्वरूप होकर उनके अनन्त जन्मों के अनन्त कर्मों के अनुसार फल प्रदान करता है। यह योगियों का उपास्य परमात्मा है, यह जानियों के ब्रह्म को और समीप से अनुभव करता है। तीसरा स्वरूप कृपायय होकर स्मृण साकार रूप से प्रत्यक्ष अवतरित होता है, जिसमें उस ब्रह्म का अनुभव इन्द्रियों से भी होता है। यह सबसे निकट वाला भगवान् का स्वरूप है इसके उपासक भक्त कहलाते

१- मीराबाई की पदावली पद संख्या १२६

२- रसखान और उनका काव्य- चन्द्रशेखर पाण्डेय - पृ० ८५

हैं। गीता में भगवान् ने भक्त को ही परम श्रेष्ठ माना है। सभी कृष्ण भक्त भगवान् के तृतीय स्वरूप के उपासक हैं।

जीव :

पुराणों में जीव का दार्शनिक विवेचन पर्याप्त मात्रा में है, पुराणों में ही नहीं अपितु उनसे पूर्व उपनिषदों में भी जीव और ईश्वर की कटिबद्धता प्रतिपादित की गई है। गीता के अनुसार तो "सर्वदाशौ जीव लोके जीवभूतः सनातनः" अर्थात् जीव की उत्पत्ति ब्रह्म से होने के कारण वह ब्रह्म का ही केश है। जीव और ईश्वर की अभिन्नता दर्शाते हुए भागवत में स्वयं भगवान् कहते हैं, "मित्र जो मैं (ईश्वर) हूँ, वही तुम (जीव) हो। तुम मुझसे भिन्न नहीं, तुम स्वयं विचारपूर्वक देखो, मैं वही हूँ जो तुम हो, जानो पुरुष हम दोनों (ईश्वर, जीव) में कोई अन्तर नहीं देखते।"

पुराणों की जीव सम्बन्धी इस विचार धारा का प्रभाव हिन्दी के कृष्ण भक्ति काव्य पर पर्याप्त मात्रा में पड़ा है। निम्बा-कांचाय जीव और ईश्वर की भिन्नता और अभिन्नता दोनों को ही स्वीकार करते हैं। "उनकी सम्पत्ति में जीव अवस्था भेद से ब्रह्म के साथ भिन्न भी है और अभिन्न भी" जैसे दीपक की ज्योति दीपक का ही केश है कतः उससे अभिन्न है, दीपक से भिन्न ज्योति का कोई अस्तित्व नहीं फिर भी दोनों पृथक् पृथक् हैं नाम से भी और तत्त्व से भी। इसी प्रकार ब्रह्म का ही केश जीव

१- गीता ६.४६, ४७

२- ५, १५।७

३- भागवत ४।२८।६२

४- भारतीय दर्शन ले० बलदेव उपाध्याय - पृ०

उससे अभिन्न है। ब्रह्म से भिन्न जीव की कोई सत्ता नहीं फिर भी दोनों भिन्न हैं, नाम और आकृति दोनों से ही। अपने सिद्धान्त के समर्थन में आचार्य निम्बार्क ने दो उदाहरण दिये हैं प्रथम वृक्षा और उसके पत्तों का तथा दूसरा समुद्र और तरंगों का। जिस प्रकार वृक्षा से उसके पत्ते अभिन्न हैं, परन्तु पत्तों को ही वृक्षा नहीं कहा जा सकता। इस तरह उससे भिन्न भी हैं। तथा समुद्र से तरंग अभिन्न हैं। तरंग समुद्र को छोड़कर अन्यत्र नहीं जानें परन्तु तरंगों को ही समुद्र नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार अवस्था भेद से ब्रह्म और जीव पृथक् भी हैं और एक ही दोनों में भेद भी है और अवेद भी। ब्रह्म और जीव के इस भेद-अवेद के कारण निम्बार्क के सिद्धान्त को भेदाभेदवाद या द्वैताद्वैत कहा जाता है।

आचार्य निम्बार्क ने "जीव" को मुक्त और बद्ध दो प्रकार का माना है। मुक्त जीव भी नित्य मुक्त तथा साधनमुक्त दो प्रकार का होता है। मुक्त जीव बद्ध से त्रैलोक्य कीट का माना जाता है। देवादि मनुष्यादि शरीर में किसी भी रूप में अनुचित अभिमान रखने वाला बद्ध जीव कहलाता है। बद्ध जीव तो ब्रह्म से भिन्न है ही मुक्त जीव भी अपने धर्मों की विभिन्नता के फलस्वरूप ब्रह्म से पृथक् ही है, वैसे ब्रह्म का ही अंग होने के कारण वह ब्रह्म से एक्यभाव भी रखता है।

वैतन्य सम्प्रदाय में कृष्ण को परम तत्त्व माना गया है और उनकी तीन शक्तियाँ स्वीकार की गई हैं, चित्, माया और जीव। जीव शक्ति से कृष्ण अनेक आत्माओं को उत्पन्न करते हैं। जैसे सूर्य से उसकी एक किरणें आविर्भूत होती हैं उसी प्रकार ब्रह्म से अनेक आत्मारूप। जीव और जगत् ईश्वर के विशिष्टाण नहीं, अपितु उनकी शक्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं अतः जीव भगवान् से पृथक् हैं और अणु परमाणु से युक्त है।

जीव के सम्बन्ध में वल्लभाचार्य जी का मत है कि जब परब्रह्म की एक से अनेक होने की इच्छा हुई, तो उसकी इच्छा मात्र से ही अस्वरूप जीवों का उत्पत्ति हुई। सच्चिदानन्द ब्रह्म के सत् अंश से जड़ प्रकृति चित् अंश से अनेकानेक जीव तथा आनन्दशक्ति से उसके अन्तर्यामी रूप का अग्नि से स्फुलिंग की भाँति आविर्भाव हुआ :

‘विस्फुलिगा इवाग्नेस्तु संवशेन जडा अपि ।

आनन्दांश स्वरूपेण सर्वांन्यामिरूपिणः ॥ १

जीव अंश रूप से भगवद् रूप है, अंशी रूप में नहीं। वस्तुतः जीव अंश और परमात्मा अंशी है। वल्लभाचार्य जी ने अपने अणु भाष्य में लिखा है कि ‘ईश्वरेच्छा से जीव के ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छह गुणों का निरोभाव हो जाता है। ऐश्वर्य के निरोभाव होने से दीनत्व और पराधीनता, वीर्य के लोप होने पर अनेक दुःख, यश के निरोभाव से हीनत्व की भावना, श्री के लोप होने पर जन्म मरण के अनेकानेक दोष ज्ञान के क्षिप्पे से अहं भावना तथा वैराग्य के नष्ट होने से विषयासक्ति उत्पन्न हो जाती है।

उपर्युक्त ऐश्वर्यादि गुणों के नष्ट हो जाने पर जीव भ्रम में पड़कर संसार चक्र में घूमता रहता है तथा इन गुणों के समाविष्ट हो जाने पर वह सगुण ब्रह्मों से मुक्त होकर सलोभ्य, सामीप्य^{सामग्य} और हायुज्य इन चार प्रकार की मुक्तियों का भागी होता है।

१- तत्त्वदीप निबन्ध- शास्त्रार्थ प्रकरण श्लोक ३०, ३२ पृ० ६२

२- अणुभाष्य, अध्याय ३ पाद २ सूत्र ५

महाप्रभु वल्गुभाचार्य जी ने जीवों के दो स्वरूप
बतलाये हैं :

१- देवी

२- वासुरी

जिन जीवों को सृष्टि काल में माया शक्ति ने
वशीभूत कर लिया वे वासुरी जीव हैं। माया शक्ति की प्रबलता के कारण
जीव और माया एक दूसरे का परित्याग नहीं कर सकते, माया द्वारा मोहित
वासुरी जीवों में भक्ति और ज्ञान का अभाव रहता है। वासुरी जीव प्रवाह
शील होते हैं। किन्तु देवी जीवों को भगवत्प्राप्ति सुलभ है। देवी जीव भी
दो प्रकार के कहे गये हैं, पुष्टि जीव तथा मर्यादा जीव । पुष्टि का अर्थ
वाचायं वल्गु ने 'पोषणं तदनुग्रहः' किया है। अतएव पुष्टि जीव ईश्वर-
नुग्रह को ही सर्वस्व मानते हैं। वे शास्त्र विहित मर्यादाओं के बन्धन से परे रह
कर सदैव भगवत्कृपा की ही वाकांक्षा किया करते हैं। पुष्टिमार्गीय जीव भी
चार प्रकार के होते हैं :

१- शुद्ध पुष्ट

२- पुष्टि पुष्ट

३- मर्यादा पुष्ट

४- प्रवाह पुष्ट

इन चारों की प्रकार के पुष्टि जीवों पर ईश्वर की विशेष कृपा होती है।
मर्यादा जीव शास्त्रानुमोदित विधियों पर मरोड़ा रहते हैं। शुद्ध पुष्ट जीव
नित्य मुक्त तथा भगवद् रूप माना गया है तथा यह कहा जाता है कि जब
ब्रह्म अवतरित होते हैं, तो शुद्ध पुष्ट जीवों को अपने साथ ही लाते हैं। पुष्टि

पुष्ट, मर्यादा पुष्ट और प्रवाह पुष्ट नामक जीव ब्रह्म के आनन्द नामक गुण से आविर्भूत होते हैं। ये जीव भी लोक में व्याप्त माया से जाबद्ध हो सकते हैं पर ईश्वरानुग्रह उनकी रक्षा करता है। ये जीव भगवान् की सेवा में रत रहते हैं।

‘पुष्टि प्रवाह मर्यादा’ नामक प्रकरण ग्रंथ में बल्लभाचार्य जी ने वासुरी जीवों को भी दुर्ज और वज्र दो श्रेणियों में विभक्त किया है। वास्तविक असुर दुर्ज ही हैं, वज्र केवल दुर्जों का अनुसरण करते हैं, उनका वासुरी रूप बाह्य होता है जो अच्छा संस्कार मिलने पर परिवर्तित हो सकता है पर दुर्ज वन्तःकरण से वासुरी प्रवृत्ति रहते हैं। वे सदैव माया के चक्र में प्रमत्त रहते हैं।

पुष्टि सम्प्रदाय में निर्धारित जीवों की इन कोटियों के आधार पर प्रायः सभी भक्त अपने अपने उपास्य देव में ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास करने लगे। सूर ने जीव और ईश्वर की एकता को निम्न पंक्तियों द्वारा व्यक्त किया है :

‘सकल तत्त्व ब्रह्मांड देव पुनि माया सब बिधि काल ।

प्रकृति पुरुष श्री पति नारायण, सब है वंश गुपाल ।’ १

०

०

जब ते जग जन्म लियो जीव है कहायो ॥ २

जीव को उसकी शुद्ध अवस्था में ब्रह्म माना जाता है परन्तु जब वह माया से आक्रान्त हो जाता है तो अपने वास्तविक स्वरूप को भ्रम विस्मृत करकेता है।

१- सूर सारावली- सूरसागर- वे० प्र० पृ० ३८

२- सूर सागर- ना० प्र० सभा १२४

और ऐसी अवस्था में उसे यह भी स्मरण नहीं रहता कि मैं उस परब्रह्म का ही अंश हूँ परन्तु माया के आवरण को दूर करने पर यदि उसे अपने सच्चे स्वरूपका ज्ञान हो जाता है तो वह पुनः ब्रह्म रूप हो जाता है। इस वाक्य का सूर का निम्नलिखित पद द्रष्टव्य है :

“ वपुन पी जापुन ही बिसरयो ।
 जैसे स्वान काँच मन्दिर में प्रमि २ भूसि मरयो ।
 ज्यों सपने में एक भूप भयो तस्कर जरि फरयो ।
 ज्यों केहरि प्रतिबिम्ब देसि के जापुन रूप परयो ।
 जैसे गज लसि फटिक सिता में दसनीं जाय जरयो ।
 मकंठ छूठ काँड़ि नहीं दीनी घर घर द्वार फिरयो ।
 “सूरदास” नलिनी को सुवटा कहि कौन जकरयो ॥ १

ब्रह्म के समान ही उसका अंश जीव भी निरन्तर और सत्य है। शरीर बाण भंगुर है परन्तु जगत् और जीव की सारस्वता (सत् और चित्) नाशवान् नहीं है। सांसारिक माया में बाधित जीव शरीर के धर्मों को ही अपने धर्म सम्पत्ता है इसी कारण शरीर के दुःखी और सुखी होने पर जीव इन्हें अपना ही सुख दुःख सम्पत्त कर प्रसन्न होता और कष्ट पाला है। पर शुद्ध जीव इनमें लिप्त नहीं होता । वह स्वयं को ब्रह्म का अंश मान शरीर के धर्मों की ओर से उदासीन रहता है।

“ नन्ददास ” ने भी ईश्वर और जीव की जीवन्ता से सम्बन्धित पदों की रचना की है :

‘व्यक्त अव्यक्त जु विश्व अनूप, वेद वदत प्रभु तुम्हारी रूप ।
तुम सब भूतनि को विस्तार, देह प्राण इन्द्री ब्रह्मकार ॥ १

‘परमानन्द दास’ की निम्न पंक्तियों से भी ईश्वर और जीव की अद्वैतता का भाव प्रकट होता है :

‘वपने वंसि की सुरति तजी है, नांगि लियो संसार ।
परमानंद गोकुल, मथुरा में, उफज्यो यहै विचार ॥ २

मीरा के पदों में तो ईश्वर और जीव का सम्बन्ध चरमावस्था को पहुँच गया है।

‘तुम बिच हम बिच अन्तर नाही जैसे सूरज घामा ॥ ३’

इस प्रकार लगभग सभी कृष्ण भक्तकवि निर्दिवाद रूप से जीव को ईश्वर का अंश स्वीकार करते हुए ईश्वर और जीव की अद्वैतता मानते हैं। उनके अनुसार ईश्वर और जीव का भेद माया जनि है यदि जीव को एक रस ज्ञान की उपलब्धि हो जाये और उसका मायाजनि आवरण दूर हो जाये तो ईश्वर और जीव में विभेद हीन रह जाये। यदि जीव ईश्वर की ओर दृष्टिपान करे तो उलटकर उसी निधि में समा जायगा, जहाँ से आया था। अतः सभी कृष्ण भक्तों के अनुसार जीव ईश्वर का ही अंश है।

जगत् :

उपनिषदों में जगत् को ब्रह्म से उत्पन्न स्वीकार किया गया है। उपनिषदों की यही विचारधारा पुराणों पर भी स्पष्ट

१- दशम स्कन्ध भागवत- नन्ददास ग्रंथावली - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ० २४१

२- परमानन्ददास पद संग्रह - पद सं० ११०

३- मीरा की पदावली - पद सं० ११५

रूप से परितुलित होती है। तथा पुराणों की इस विचार धारा का प्रभाव हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पर पर्याप्त रूप से पड़ा है। हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य में जगत् को परब्रह्म का मौलिक स्वरूप माना गया है।

निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुसार परब्रह्म ही जगत् के निमित्त और उपादान कारण है। सर्व शक्तिमान् ब्रह्म अपनी शक्ति के विक्षेप से स्वयं को जगत् के वाकार में परिणत करके जागतिक स्वरूप शक्ति और कृति से युक्त होकर परिवर्तित हो जाता है। जिस प्रकार दूध कायं रूप में परिणत हो जाता है उसी प्रकार अपनी आद्य शक्ति से पूर्ण परमात्मा भी जगत् के वाकार में परिणत हो जाता है।^१

निम्बार्क के अनुसार जगत् मिथ्या न होकर सत्य है, क्योंकि जब ब्रह्म ही सत्य है तो उसकी रचना, लीला, नाम आदि असत्य कैसे हो सकते हैं। जब परमात्मा सब प्रकार से सत्य है तो उसके ही द्वारा निर्मित जगत् भी सत्य होगा।

चैतन्य मत के अनुसार अपनी तीन शक्तियों में माया शक्ति से ब्रह्म जड़ जगत् को उत्पन्न करते हैं। जगत् वास्तव में ब्रह्म की शक्ति की अभिव्यक्ति है।

वल्लभ सम्प्रदाय में भी ब्रह्म को ही इस जगत् का निमित्त और उपादान कारण माना गया है।^२ वल्लभाचार्य जी ने ब्रह्मसूत्र के वाच्यकृते : परिणामात्^३ के वाधार पर कहा है कि यह समस्त सृष्टि ब्रह्म का ही वाच्य-

१- दशश्लोकी - ५, ८, ९

२- जगतः सम्वायि स्यात् तदेव च निमित्तकम् ।

- तत्त्वदीपनिबन्ध, शास्त्रार्थ प्रकरण, ज्ञानसागर बम्बई पृ० २३३

३- ब्रह्मसूत्र १।४।२६

कृति है। अब प्रश्न यह उठता है कि किस हेतु ब्रह्म ने इस जगत् की रचना की, बादरायण ने अपने ब्रह्मसूत्र में इस प्रश्न का उत्तर दिया है, 'लोकवत् लीला-कैवल्यम्'^१ अर्थात् लीला या क्रीड़ा के हेतु ब्रह्म ने इस लोके की रचना की। स्वयं को जगत् रूप में परिणत करना और जीवों को अपने ऐश रूप में इस सृष्टि में आविर्भूत करना ब्रह्म की लीला मात्र है। इस कार्य को करने से उसके आनन्द रूप में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं पड़ता, वह केवल आनन्द का ही मोक्ता बना रहता है।

ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है, अब देखना यह है कि जगत् के निर्माण के हेतु उन्हें सत्, चित् और आनन्द में से अपने किस गुण को प्रकट करना पड़ा। आचार्य वल्लभ ने अपने तत्त्व दीप निबन्ध^२, शास्त्रार्थ प्रकरण में इस विषय में कहा है कि 'पूर्ण पुरुषोत्तम ने स्वेच्छा से अग्नि की चिनगारी के समान अपने चित् ऐश से जीव की और सत् ऐश से जड़ जगत् की उत्पत्ति की।

अतः सृष्टि के निर्माण के लिये ब्रह्म को अपने चित् और आनन्दाश को तिरोभूत करना पड़ा अर्थात् जगत् में चैतन्य और आनन्द गुणों की अपेक्षा सत्त्वगुण की प्रधानता है तथा अनेक रूपात्मक होने पर भी यह समस्त जगत् अनेक रूपी ब्रह्म के एक सत् ऐश का ही परिणाम है।

आचार्य वल्लभ इस जगत् को ब्रह्म का अविकृत परिणाम मानते हैं अर्थात् सृष्टि को उत्पन्न करने के बाद भी ब्रह्म के स्वरूप में कोई विकृति नहीं आती एवं जब वह चाहे सृष्टि को लय करके अपने वास्तविक रूप में

१- ब्रा० ब्र० २।१।३३

२- तत्त्वदीप निबन्ध शास्त्रार्थ प्रकरण, ज्ञान सागर, बम्बई श्लोक ३२

जा सकता है। यह शुद्ध ब्रह्म का अविकृत परिणाम है। दही दूध का विकृत परिणाम है, अर्थात् दही पुनः दुग्ध रूप में परिणत नहीं हो सकती परन्तु कुण्डल वादि स्वर्णाम्बुषण स्वर्ण के अविकृत परिणाम हैं। इन आम्बुषणों की निर्मिति के बाद भी स्वर्ण के रूप में कोई विकार नहीं आता और जब भी स्वर्णकार चाहे पुनः उन्हें स्वर्ण रूप में परिणत कर सकता है। इसी प्रकार जगत् रूप में परिणत होने पर भी ब्रह्म में किसी प्रकार का विकार नहीं आता, अतः वह अविकृत ही है। वल्लभ मत में इस वाशय को स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण दिया गया है, जिस प्रकार मकड़ी स्वेच्छा से तन्तु निकालती है, तथा उसमें रमण कर पुनः उसे स्वमुख में प्रविष्ट कर लेती है उसी प्रकार शुद्ध ब्रह्म ही, जगत् रूप में अविकृत परिणाम को प्राप्त करता है। तथा जिस प्रकार कीड़ा कौतुक हेतु वह स्वेच्छा से इस सृष्टि का निर्माण करता है उसी प्रकार अपनी इच्छा से वह इसका लय भी कर लेता है। अतः जगत् का आविर्भाव और निरोभाव ब्रह्म की इच्छा के आधीन है। इस सम्बन्ध में एक और बात द्रष्टव्य है वल्लभ सम्प्रदाय में जगत् के उत्पन्न होने और लय होने के लिये उत्पत्ति और विनाश शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया अर्थात् आविर्भाव और निरोभाव शब्दों को अपनाया गया है कारण जगत् को ब्रह्म अपनी इच्छा या विलास के आविर्भूत करता है और स्वेच्छा से ही इसे स्वयं में निरोभूत कर लेता है, इसकी उत्पत्ति या विनाश नहीं करता ।

वल्लभ मत में जगत् और संसार में अन्तर है। जगत् की उत्पत्ति सत्य तत्त्व अर्थात् ब्रह्म का अविकृत परिणाम है अतः वह भी सत्य है। किन्तु संसार की रचना जीव की अविद्या, कल्पना तथा भ्रम से होती है, अतः वह मिथ्या है। राग, द्वेष के कारण ही जीव को अनेक सुख, दुःख सहन करने पड़ते

हैं और यही संसारचक्र है परन्तु साधन, योग और भक्ति द्वारा जीछे संसारचक्र से मुक्ति पा जाता है, तब उसका सम्बन्ध जगत् से ही जाता है। जीव की मुक्ति से संसार का तय ही जाता है। परन्तु जगत् का तिरोभाव ईश्वरेच्छा पर निर्भर है, इस प्रकार जगत् नित्य है और संसार अनित्य है।

सूरदास जी ने अपने सूरसागर में जगत् विषयक अनेक उक्तिर्या प्रस्तुत की हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में अभिव्यक्त किया है। कि जब ब्रह्म की इच्छा सृष्टि विस्तार की हुई तो उन्होंने तीन तत्त्वों (सत्, रज, तम) से महत्त्व, महत्त्व से अहंकार, अहंकार से मन तथा दस इन्द्रियाँ, शब्दादि पंच तन्मात्रायाँ और शब्दादि से पंच महाभूत प्रकट हुए। इन संवृणं तत्त्वों के संयु-
जीकरण से एक अण्ड बना और परब्रह्म अंतर्यामी रूप से उसमें प्रविष्ट होगये। इस प्रकार स्वयं रूप अण्ड में स्वयं को ही प्रविष्ट कर ब्रह्म ने विराट् स्वरूप धारण किया। उसी विराट् पुरुष की नामि से ब्रह्मा ने उत्पन्न होकर उसी की इच्छा से अनेक नाम और रूप धारिणी सृष्टि की रचना की। इस प्रकार ब्रह्म द्वारा वा विभूत सृष्टि सत्य है असत्य नहीं।

वागे चलकर सूरदास जी ने संसार की निःसारता का भी उल्लेख करते हैं :

“ रे मन भूरत जनम गवायी ।

करि अभिमान विषय रस गीघ्यौ, स्याम सरन नही वायी ।

यह संसार सुवा सेमर ज्यों सुन्दर देखि लुभायी ।

चासन लाग्यौ रहै नहि उड़ि, हाथ कहू नहि वायी ॥ २

१- सूरसागर द्वितीय स्कन्ध - पद ३६

२- ,, पद सं० १३१ पृ० ४५ डा० प्रेमनारायण टण्डन

नन्ददास जी भी जगत् और ब्रह्म की व्युत्पत्ति का समर्थन करते हुए ब्रह्म को ही जगत् का निमित्त और उपादान कारण मानते हैं। वल्लभाचार्य जी के समान वे भी जगत् को ब्रह्म के सत् वश का अविकृत परिणाम मानते हैं :

‘मो मैं उनमें अन्तरो स्त्री छिन् मरी नाहि,
ज्यों देखो मो मोहि के, तो मैं उनही माँहि,
तरगिनि वारि ज्यों ॥ १

उपर्युक्त पंक्तियों में शुद्ध व्युत्पत्ति और अविकृत परिणामवाद का पूर्ण स्पष्टीकरण हुआ है।

भूर और नन्ददास के समान अन्य कृष्ण भक्त कवि भी ईश्वरेच्छा से ही जगत् का आविर्भाव तथा तिरोभाव स्वीकार करते हैं। उनके लीक ब्रह्म ही संपूर्ण सृष्टि का उपादान और निमित्त कारण है।

माया :

माया का वर्णन प्राचीन काल से ही होता आया है, यहाँ तक कि कृष्वेद में भी माया का वर्णन उपलब्ध है। उपनिषद् साहित्य के अन्तर्गत सर्वप्रथम श्वेताश्वतर उपनिषद् में माया का विवेचन हुआ है जहाँ सगुण और व्यक्त रूपों को माया द्वारा स्फुरित मानकर माया को ब्रह्म ही ठहराया गया है :

‘माया तु प्रकृतिं विद्यात्, मायिर्न तु महेश्वरम् ।’ २

शंकर ने वेदान्त सूत्रों पर जो बालोचना लिखी है उसमें माया को भ्रम कहा गया

१- भवरागीत- नन्ददास- आचार्य शुक्ल- पृ० १४१

२- श्वेताश्वतर उपनिषद् - ४-१०

है। परन्तु निम्बार्काचार्य ने ब्रह्म की तीन शक्तियाँ परात्मा, जीवात्मा तथा मायात्मा में से माया को भी ब्रह्म की ही शक्ति स्वीकार किया है। यद्यपि ब्रह्म निर्विकार है परन्तु माया के कारण वह अपने स्वाभाविक आनन्द का अनन्त रूपों में अनुभव करता है।

चैतन्य सम्प्रदाय में भी माया ब्रह्म की ही शक्ति है जिसके द्वारा भगवान् जड़ जगत् को उत्पन्न करने हैं। यों तो माया गतिहीन है परन्तु परात्पर ब्रह्म के इच्छा मात्र से वह गतिशील हो जाती है।

आचार्य वल्लभ ने भगवान् की शक्ति स्वरूपा माया के भी दो रूप माने हैं विषय माया एवं अविषय माया^१। ये दोनों प्रकार की माया सृष्टि और संसार में प्रसारित हैं। इन्हीं के आधीन जीव है अविषय माया के द्वारा जीव सांसारिक बन्धनों में बाध होकर भ्रमण करता रहता है और विषय माया द्वारा उसे अपने स्वरूप की चेष्टना वा जाती है तथा वह संसार से मुक्ति पा जाता है। अविषय रूपिणी माया प्रथम तो सत्य ज्ञान का आच्छादन कर लेती है और फिर असत्य में ही सत्य की प्रतीति कराती है। इसी के द्वारा जीव को देहादिक दुःख जैसे शोक, मोह, राग, द्वेष आदि फेरने पड़ते हैं कारण वह जीव को लौकिक विषयों में फँसाकर उस पर अज्ञानता का आवरण डाल देती है। भागवत की सुबोधिनी टीका में आचार्य वल्लभ ने माया को द्विधारूपधारिणी माना है वह भ्रम उत्पन्न कर विषयमान को प्रकाशित नहीं करती और अविषयमान अर्थात् जो नहीं है उसे बलवत् आलोकित करती है।^२

तत्त्वदीप निबन्ध में आचार्य वल्लभ ने अविषय माया के पाँच भेद किये हैं प्रथम अन्तःकरण का अज्ञान या अध्यास दूसरा प्रकृणाध्यास

१- तत्त्वदीप निबन्ध, शास्त्रार्थ प्रकरण, ज्ञान सागर, बम्बई श्लोक ३२, ३३, ३४, पृ ४६, ५०

२- माया च द्विधाभ्रम जनयति, विषयान्न न प्रकाशयति अविषयान्न च प्रकाशयति श्रुतसंख्यत्यासिन । (सुबोधिनी भागवत २।६।३३) ।

तीसरा इन्द्रियाध्यास, चतुर्थ देहाध्यास और पाँचवा स्वरूप का ज्ञान ।
इन्हीं पाँच प्रकार के ज्ञानों में कैसकर जीव सांसारिक दुःख प्राप्त करता है
तथा इनके नष्ट होने पर वह संसारजन्य बलेशों से छुटकारा पा लेता है। विद्या
अथवा ज्ञान के द्वारा ही अविद्या या अज्ञान का नाश होता है और तभी जीव
मुक्त होकर जीवन्मुक्त कहला सकता है। विद्या या ज्ञान की उपलब्धि तभी संभव
है जब जीव को ईश्वरानुग्रह प्राप्त हो । अतः वल्लभ मतानुसार अविद्या माया
से छुटकारा और ज्ञान की प्राप्ति का एक मात्र सरल उपाय ईश्वर की कृपा
ही है।

सूरदास जी ने भी अविद्या माया को तथा इस माया
से उत्पन्न संसार को अनेक स्थानों पर प्रमात्मक और मिथ्या घोषित किया
है :

“ मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया
मिथ्या है यह देह कही क्यों हरि बिसराया । ” १

सूरदास जी ने माया का स्वरूप भी वर्णित किया है, देवदूति के द्वारा कपिल
से माया का स्वरूप पूछे जाने पर कपिल उत्तर देते हैं :

“ माया को त्रिगुणात्मक जानों, सत्, रज, तम ताको गुण मानों ।
जड़ स्वरूप सब माया जानो, ऐसी ज्ञान हृदय में जानो ॥ २

अतः सूरसागर में माया त्रिगुणात्मक और जड़ प्रकृति
का ही रूप है। माया का प्रभाव अति व्यापक है। समस्त नर लोक, देव लोक

१- सूरसागर- दशम स्कन्ध- वे० प्र० पृ० १५८

२- ,, तृतीय स्कन्ध- पद सं० १४ ना० प्र० सभा काशी

माया द्वारा उत्पन्न भ्रम और मोह के वशीभूत हैं। यही तो वह ब्रह्म की ही शक्ति है परन्तु सबको मोह में डालकर मिथ्या में सत्य का आभास देती है। एक स्थान पर सूर कहते हैं : 'हरि तेरी माया से कौन बच सका है ? नारद माया के वश में हो गये इसी उन्होंने ज्ञान और बुद्धि के बल को ली दिया । कामिनी ने शंकर का चित्त हर लिया , जिससे वे सज्ज का परित्याग कर पृथ्वी पर सोये,

हरि तेरी माया को न बिगोयो ।

नारद मगन भये माया में ज्ञान बुद्धि बल लीयो ।

शंकर को चित्त हर्यो कामिनी सज्ज काँढ़ि मुवि लीयो ।२

माया को कुलटा स्त्री का रूप देकर कवि ने उसकी व्यापक मोहिली शक्ति को दर्शाया है :

“ तुम्हरी माया महाबली जिन जग वश कीनी ।

नेकु चित्त मुसुकाइ सबन को मन हरि लीनी ॥ २

जो माया बड़े २ कृष्ण मुनियों को भ्रम जाल में फँसा लेती है, जीवात्मा जिसके वशीभूत हो अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है उसी माया से बचाव के हेतु सूर ईश्वर से विनय करते हैं :

“ माया नटिनी लकृटि कर लीन्है कोटिक नाच नचावै ।

दर दर लोभ लागि लै डोलति नाना स्वर्ग करावै ॥

तुम सो प्रकट करावति प्रभु जू मेरी बुद्धि भ्रमावै ।

मन अभिलास नरगिनि करि करि मिथ्या निशा जगावै ॥

१- सूरसागर ना० प्र० समा ७७ पद ४३

२- ,, पद सी० ४४

सोवत सपने में सम्पत्ति त्यों दिखाइ बीरारवि ।

महामोहिनी मोहि वात्मा मन करि अघहि लारवि ।

ज्यों दूती पर बधू मोरि कै ल पर पुरुष दिसारवि ॥ १

एक स्थल पर कवि ने "माया को गाय का रूप दिया है ऐसी गाय जो रात्रि दिवस इधर उधर भ्रमती रहती है, इन्हीं तेज मागज्जि वाली है कि फल में नहीं जाती, यह वृद्धि है जो निगम रूपी हम दल साकर भी तृप्त नहीं होती। अष्टादश पुराण रूपी घड़ों का जल पीकर भी इसकी तृष्णा शान्त नहीं होती। षट्-दर्शन रूपी रसों को भी इसके समझा रहते हैं पर यह वहितकारी अमध्य पदार्थों को सा जानती है जिनका वर्णन गिरा नहीं कर सकती। यह व्योम, धरा, नद, शैल, कानन आदि में चर कर भी नहीं आती। यह इन्हीं धृष्ट और निष्ठुर है कि किसी से भी नहीं डरती। अपने तीन गुणों के साथ सामने ही बढ़ती जाती है और देव, मानव और राजास सभी को अपने गिर पर चढ़ा कर दूर लिये जा रही है। यह मुख, भू आदि बना बना कर चित को चुराती चलाती है। इसके नीचे सुर, अरुण लोचन और स्वतः सींग डोमिल हैं। दिन भर चतुर्दश रत्न (चौदह भुवन) घूँदती फिरती है। यह क्या किसी एक स्थान पर स्थिर रह सकती है ? नारद, शुकदेव और मुनिजन जिसका उपाय करते करते थक गये उसे भला मैं कैसे चरा सकता हूँ।^२

अतः सूर के अनुसार माया या अज्ञान बहुत ही विषम है जिससे बचने का उपाय केवल ईश्वर की कृपा ही है।

नन्ददास ने भी दशम स्कन्ध भाषा के रूप में अध्याय

१- सूरसागर ना० प्र० समा० पद ४२

२- ,, ,, पद ५६

में माया के विषय में कहा है कि वह लोक (संसार) और सृष्टि (जगत्) का निर्माण करती है :

“ लोक सृष्टि सिरजित यह माया, तुम मैं दूरमलमयी काया ।

हे सर्वग्य अग्यजन मेरे, जानि नहिंन धर्म प्रभु करे ॥ १

इसमें विद्या माया और अविद्या माया दोनों का उल्लेख है। नन्ददास जी ने अविद्या माया द्वारा उपस्थित किये गये भ्रम को स्वीकार किया है।

कतः सभी कृष्ण भक्त अविद्यक माया को भ्रम जनित मानते हैं जिसका निवारण विद्या अथवा ज्ञान द्वारा ही संभव है तथा ज्ञान की प्राप्ति प्रभु कृपा का ही प्रसाद है।

मोक्ष :

उपनिषद्, पुराणादि में मोक्ष के विषय में पर्याप्त विवेचन मिलता है। मोक्ष दशा में जीव, ब्रह्म से अभिन्न रहने पर भी अपने स्वरूप को पा लेता है :

“ स्वेन रूपणाभिनिष्पद्यते ” २

ऐसा उपनिषद् आदि में कहा गया है। आचार्य निम्बार्क ने दो प्रकार की मुक्ति स्वीकार की है जिन्हें क्रम और सद्योमुक्ति नाम दिये हैं। क्रम मुक्ति मोक्ष की वह अवस्था है जब जीव निष्काम कर्म तथा विधिपूर्वक

१- नन्ददास ग्रंथावली - दशम स्कन्ध माला - आचार्य शुक्ल- अध्याय २८

२- छान्दोग्य उपनिषद् ८।३।४

ईश्वर की पूजा आदि करके स्वर्गादि लोकों का अनुभव प्राप्त कर सन्त्यलोक में स्थित हो जाते हैं। प्रलयागम की स्थिति में वे जीव ब्रह्म में सायुज्य का वा एकी भाव को प्राप्त करते हैं। सद्योमुक्ति जीव को तब प्राप्त होती है जब उसका सांसारिक बन्धन श्रवणादि भक्ति से टूट जाता है और वह भगवत्कथा का भागी होकर कृष्ण लोक को प्राप्त करता है।

अतः निम्बार्क मत में भगवद्सेवा तथा दृष्टानुग्रह से ए प्राप्त मुक्ति को ही अभिप्सित कहा गया है। यहाँ पर ब्रह्म कृष्ण में ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों की ही प्रधानता स्वीकार की गई है, जो जीव निष्काम भाव से भगवत्सेवा करते हैं उन्हें भगवान् के माधुर्य या सेवानन्द प्रधान लोक की प्राप्ति होती है और जो जीव सकाम भक्ति करते हैं उन्हें भगवद्लोक में भी ऐश्वर्यादि की उपलब्धि होती है। निरन्तर भगवान् की लीलाओं के स्मरण में ही परम सुख की प्राप्ति सम्भव है, इसी परम सुख की उपलब्धि से भगवत्प्राप्ति हो सकती है। यही भगवत्प्राप्ति मोक्षा की अवस्था है जिसके समस्त अधिकाधिक आनन्द भी नगण्य है।

चैतन्य सम्प्रदाय में मोक्षा का अर्थ है, ईश्वर की प्रीति का निरन्तर अनुभव। प्रेम ही यहाँ मुक्ति है, भक्ति ही वास्तविक मोक्षा है, और भगवान् की भक्ति की प्राप्ति ही जीव का चरम लक्ष्य है। इस सम्प्रदाय में चरम प्रेम को ही महत्त्व प्रदान किया गया है यह प्रेम जब ईश्वरीन्मुख हो जाता है और जीव को सदैव भगवान् के प्रेम का ही अनुभव होना रहता है तभी वह मोक्षा दशा को प्राप्त हो जाता है।

सांसारिक बलेशों से छुटकर आनन्द प्राप्ति की अवस्था को आचार्य वल्लभ ने मोक्षा की ही अवस्था माना है। जिस प्रकार जीव पुष्टि

मर्यादा और प्रवाही माने गये हैं उसी प्रकार मोक्षा की भी यहाँ सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य अवस्थाएँ हैं। भक्ति तथा ईश्वर की इच्छा के अनुसार ही जीव इन मुक्तियों में से किसी एक को प्राप्त करता है। भगवान् के लीलाधाम में पहुँचना सालोक्य मुक्ति है, उनके चरणों की निकटता प्राप्त करना सामीप्य है, कृष्ण के साथ उन्हीं के समान आचरण करना सारूप्य है, और ईश्वर के साथ सब्य भाव को प्राप्त हो जाना सायुज्य मुक्ति है। मुक्ति की यही अवस्था सर्वश्रेष्ठ है। कारण इसमें भक्त उस रूप परमात्मा का अंगी भाव प्राप्त कर लेता है। सायुज्य मुक्ति के भी दो रूप हैं : सांसारिक बलेश से मुक्ति एवं नित्य सुख की उपलब्धि। इन दोनों अवस्थाओं में जीव ब्रह्म का अंग नहीं बनता। वेदान्त के अन्य वादों में लयात्मक तथा प्रवेशात्मक दोनों सायुज्य अवस्था की मुक्तियों को अपनाया गया है। वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार शुद्धादित्त ज्ञानी लयात्मक सायुज्य मुक्ति की प्राप्ति करते हैं और पुष्टिमार्गीय भक्त प्रवेशात्मक सायुज्य मुक्ति की। इनमें भी लयात्मक सायुज्य मुक्ति उत्तम है इसमें ज्ञान के द्वारा अंग जीव अंगी अद्वार ब्रह्म में पूर्ण रूपेण लय हो जाता है उसकी फिर पृथक् सत्ता नहीं रहती। परन्तु वल्लभ स मत में मोक्षा की उच्च अवस्था में जीव और ब्रह्म अवेद स्थिति को प्राप्त नहीं होते क्योंकि ऐसा होने पर जीव वानन्दानुभव नहीं कर सकता अतः ब्रह्म भाव प्राप्त करने के उपरान्त भी जीव और ब्रह्म में भेद बना रहे यही इस मत में मोक्षा की श्रेष्ठ स्थिति है।

कर्ममार्गी को भी वेदोक्त साधनों द्वारा उपर्युक्त चार प्रकारों में से किसी एक मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है, वह स्वर्गादि लोकों को प्राप्त कर पुनः इसी लोक में वापिस आ जाता है। परन्तु पुष्टि एवं मर्यादा

मार्गीय भक्त पुनः इस संसार में नहीं लौटना । वह ज्ञानरूपी साधन से सत्य ज्ञान प्राप्त कर अक्षर ब्रह्म में लीन हो जाता है। सालोबय, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्तियों के अतिरिक्त वल्लभ मन में एक अन्य मुक्ति भी मान्य है जिसे उन्होंने^१ सायुज्य अरूपा मुक्ति कहा है। उपर्युक्त चार प्रकार की मुक्तियाँ तो ज्ञान और योग द्वारा प्राप्त होने के कारण कलियुग के जीवों के लिये कष्ट साध्य है परन्तु सायुज्य अरूपा मुक्ति इन्हीं कष्ट साध्य नहीं । इस मुक्ति में भक्त भगवान् की लीला में प्रविष्ट हो । उस लीला का आनन्द लाभ करता है। इसमें भक्त प्रभु कृपा द्वारा भगवद्लीला की अनुभूति प्राप्त करता है अतः इसे स्वरूपानन्द भी कहा जाता है। भागवत में इसे वात्सल्यिकी भक्ति की संज्ञा दी गई है। सांसारिक शरीर धारण किये भी भक्त इस सेवा कार्य में लगा रहता है। शरीर त्याग के अनन्तर वह भगवान् के विग्रह से मजनानन्द का वास्वादन लिया करता है। यह विग्रह भी अप्राकृत सच्चिदानन्द रूप ही स्वीकार किया गया है।^१ इस मुक्ति को वल्लभाचार्य जी ने सब मुक्तियों से श्रेष्ठ बतलाया है।^२

सालोबय, सामीप्य , सारूप्य और सायुज्य मुक्तियाँ तो संयोग की ही अवस्थायें हैं परन्तु सायुज्य अरूपा मुक्ति में भक्त संयोग और वियोग दोनों का ही वास्वादन कर सकता है। इसी प्रकार वल्लभाचार्य जी अपने "वणु भाष्य" में सद्योमुक्ति और क्रम-मुक्ति का उल्लेख करते हुए पुष्टिमार्गीय भक्त के लिये इन्हें विभिन्न लोकों में जाये बिना और प्रारब्ध कर्मों के भोगे बिना ही प्राप्य मानते हैं। सद्योमुक्ति में भगवान् जीव के प्रारब्ध कर्मों को अपनी कृपा से नष्ट कर देते हैं और सांसारिक दुःखों को सहन करने

१- ब्रह्मसूत्र ४।४।५- १० पर वणुभाष्य

२- भागवत ३।२६। १२-१४ पर सुबोधिनी

के लिए उसे संसार में न रहने देकर अपनी नित्य रसात्मक लीला में प्रविष्ट कर लेते हैं। क्रम मुक्ति में ज्ञानमार्गी साधक, अग्निहोत्रादि कर्म उपासना और ज्ञान के साधन क्रम में अनेक लोकों में होकर ज्योतिर्मय ब्रह्म की प्राप्ति कर लेता है।^१

ज्ञानी और भक्त की मोक्षा अवस्था में अन्तर करते हुए वल्लभाचार्य जी का कथन है कि ज्ञानी की मोक्षा दुःख का अभाव है। जबकि भक्त की मोक्षा परमानन्द प्राप्ति है। भक्त की यही मोक्षा अवस्था श्रेष्ठ है जिसमें वह अपनी साधना पूर्ण करके ब्रह्म के आनन्द प्रधान रूप में मिल जाता है। ज्ञानी जिस मोक्षा दशा को प्राप्त करता है वह ब्रह्म का अज्ञः निरोहित रूप है जिसमें ईश्वर के दिव्य गुण आवृत्त रहते हैं। यहाँ पर वल्लभाचार्य जी ने निर्गुण निर्विशेष वादी ज्ञानियों के ब्रह्म का रूप प्रस्तुत किया है। परन्तु वे ब्रह्म के इस रूप से जरा भी सहमत नहीं और न उन्हें ज्ञानियों की मोक्षा दशा ही मान्य है। भगवद्गीता की आनन्दानुभूति करना ही वल्लभाचार्य जी को स्वीकार्य था। तदोपरान्त भगवत्कृपा से जिस अवस्था की उपलब्धि होती है वही मोक्षा है। परन्तु उसकी प्राप्ति एक मात्र ईश्वरानुग्रह से ही हो सकती है। अतः ईश्वर भक्ति और ब्रह्म की आनन्ददायिनी लीलाओं का रसास्वादन करना ही वल्लभ सम्प्रदायियों को मान्य रहा है।

सूरदास जी ने मुक्ति सम्बन्धी वल्लभ मन का उद्घाटन कई स्थलों पर किया है। कृष्ण ने उद्धव को कहकर भेजा था कि वह ज्ञान लभ्य सायुज्य मुक्ति का उपदेश गोपियों को प्रदान करे।^२ परन्तु गोपिकाओं ने श्री कृष्ण की सेवा पर सब प्रकार की मुक्तियों को न्यायावर करने हुए उद्धव को

१- अणुभाष्य अध्याय ४ पाद ३ सूत्र २

२- सूरसागर- ना० प्र० समा- पद सं० ४०४६

बूब सरी लोटी सुनाई । वे जो विरहावस्था में भी चारों प्रकार की मुक्तियों का आनन्द ले रही है फिर उन्हें निर्गुण ईश्वर और योग की जरूरत हो क्या :

“ निरगुन कहाँ कहा कहियत है, तुव निरगुन बलि मारी ।
 सेवत सुलभ स्याम सुन्दर कौ, मुक्ति लही हम चारी ॥
 हम सालोक्य, स्वरूप, सरी, ज्यों रहत समीप सदाई ।
 सो तजि कहत और की वीरे, तुम बलि बड़े अदाई ॥ १

निष्कामी भक्त को ही जन्म मरण की उपलब्धि होती है वह फिर जन्म मरण की यातनाओं से दूर ही रहता है :

“ निष्कामी बैकुण्ठ सिधायै । जन्म मरण फिर बहुरि न आवै ॥ २

केवल कृष्ण के गुणगान करने से जिस सुख की प्राप्ति होती है, वह न जप, तप में सम्भव है और न करोड़ों तीर्थों में जाकर स्नान करने से ही श्रीकृष्ण के चरण कमलों की पूजा के समदा तीनों लोकों का सुख तुच्छ है, ब्रज निवास के समदा बैकुण्ठ सुख भी त्याज्य है जन्म में सूर कहते हैं कि भव सागर से पार उतरने का एक मात्र उपाय हरि स्मरण ही है :

“ जो सुख होय गोपालहिं गाये,
 सो नहीं होत जप तप के कीने, कोटिक तीरथ न्हाये ।
 दिये तेन नहीं नार पदारथ, चरण कमल चित लाये ।
 तीनि लोक तृण करि समलैखत , नन्द नन्दन उर लाये ॥

१- सूरसागर- दशम स्कन्ध- वे० प्र० पृ० ५४४

२- ,, - ना० प्र० सभा- पद ३६४

बंशीवट वृन्दावन यमुना, तजि बैकुण्ठ को जाये ,

सूरदास हरि को सुमिरन करि, बहुरि न भव चलि जाये ॥ १

0

0

जाइ समाइ सूर वा निधि में बहुरि न उलटि जगत् में नाचै ॥ २

अतः मोक्षा प्राप्ति का एक मात्र उपाय सूर हरि गुण गान और हरि स्मरण को ही मानते हैं।

नंददास जी ने भी जीवन्मुक्ति के सुख का वर्णन किया है। संसार माया के दुःखों से मुक्ति पाकर प्रेम भक्ति की संयोग तथा वियोग दोनों अवस्थाओं में परमानन्द की वही स्थिति है, जिसमें भक्त ईश्वर के सतत ध्यान में सान्निध्य (मोक्षा सुख) का अनुभव करता है। वह सुख वर्णनातीत है :

“ पुनि रचि धरि ध्यान पीय परिरम्भ दियो जब ।

कोटि सरग सुख भोग छिनक मंगल भुगति तब ॥ ३

इसी प्रकार ह्रीत्स्वामी की चरम वमिलाणा भी यही है कि वे ब्रज में वास करें, वहीर की जानि मिले, नन्द के घर का सामीप्य और इन सब कामनाओं का एक मात्र वमिप्राय है कृष्ण के नैकट्य की प्राप्ति, चाण २ उनके मृदुहास को देखने की लालसा :

“ वही; विधना; तो पे वचरा पसरि मांगी,

जनमु जनमु दीजै याही ब्रज बसिवी ॥

१- सूरसागर - भा० प्र० समा- पृ० ३४६

२- “ “ “ “ ३५४

३- रासस्तव्यायी अध्याय १ पृ० १७ - भा० उदय नारायण तिवारी

वहीर की जाति, समीप नन्द घर,

घरी २ घनश्याम हरि हरि हंसिबौ ॥ १

मीरा को भी इस संसार में ही गिरिधर गोपक
से साक्षात्कार होने पर परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है :

“ म्हारा औलगिया घर वाया जी,

तन की ताप मिटी सुख पाया, हिल २ मील गाया जी

०

०

मीरा विरहिण सीतल होई दुख दुन्द दूर नसाया जी ॥ २

रसखान ने भी कृष्ण के सामीप्य की इच्छा प्रकट की है उन्हें भी जीवन्मुक्ति अधिक प्रिय है। “ मानुष हौं तो वही रसखान ” जादि प्रसिद्ध संन्यासे से उनकी मुक्ति की अनिच्छा तथा प्रत्येक अवस्था में श्रीकृष्ण के सम्पर्क में रहने की इच्छा ही प्रकट होती है।

अतः सभी कृष्ण भक्त भगवान् के सान्निध्य की कामना करते हैं। भागवत^३ में भी कहा गया है कि ईश्वरानुग्रह होने पर भक्त की समस्त इन्द्रिया ईश्वरोन्मुख हो जाती है। उसका काम, क्रोध, मोह, लोभ भगवान् के प्रति परिचालित हो जाता है और अपनी इन्हीं मानवीय दुर्बलताओं के फल-स्वरूप उसे वन्त में ईश्वर सान्निध्य की प्राप्ति होती है।

भगवान् के निकट्य की इच्छा ही भक्त का चरम लक्ष्य है और यही मोक्ष की सर्वोच्च अवस्था है।

१- कृत स्वामी - पद ११७

२- मीराबाई की पदावली- सं० परशुराम चतुर्वेदी पद सं० १४६

३- भागवत - श्लोक १०।२६।१५

रास, मुरली और गोपियाँ :

‘रसानां समूह रासः’ के अनुसार रास के समूह को रास कहते हैं और रास वह है जो वास्वादन प्रदान करता है। रास और आनन्द एक ही व्यं के धौतक हैं। अतः जिससे सामूहिक आनन्द की प्राप्ति हो वही रास है। डा० दीन दयालु गुप्त के शब्दों में ‘‘ अप्राकृत देहधारी स्वरूप कृष्ण की अप्राकृत गोपियों के साथ की गई नृत्य लीला का जो समूह है वह रास है।’’

कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण को परमात्मा मानकर गोपियों को अनेक जीव माना है, वृन्दावन सहस्र दल कमल है, यहीं पर आत्मा और परमात्मा का सम्मिलन होता है। परन्तु पुष्टिमार्गीय भक्तों के अनुसार मोदा दशा में भी आत्मा परमात्मा भिन्न २ रहते हैं तभी जीव आनन्द प्राप्ति कर सकता है। इसीलिए कृष्ण रूपी ईश्वर गोपियों रूपी जीव के साथ अमिन्नता को प्राप्त नहीं होते वरन् उनकी लीलाओं में भाग लेते हैं।

सूर वादि कवियों ने रास लीला सम्बन्धी अनेक पद उद्धृत किये हैं। उनके अनुसार रास लीला भगवान् का एक एक आत्मा के साथ नहूप हो जाना है। नन्ददास जी ने रास पर सम्पूर्ण रास पञ्चाध्यायी ही लिख डाली है। उन्होंने रास तथा कृष्ण दोनों को ही नित्य मानकर उसमें रमण करने वाली गोपियों को भी नित्य माना है। वेदों में भी रास को नित्य और अदभुत माना गया है जिसका वर्णन शेष भी अपने सहस्रों मुक्तों से नहीं कर सकते :

नित्य रास रास नित्य गोपी जन बल्लभ ।

नित्य निगम जो कहत नित्य नव तव वनि दुल्लभ ।

यह कद्मुद रस रास कहत कहु कहि नहिं जावै ।

सेस सहस मुस गावै, कजहूँ पार न पावै ॥१

वष्टापी भक्तों ने मुरली को अध्यात्म दोत्र में शब्द ब्रह्म नाम दिया है। ब्रह्म के समान ही उसकी वाणी भी सर्वव्यापक है अतः वंशी ध्वनि परब्रह्म का शब्दरूप है। नन्ददास ने अपनी 'रास पंचाध्यायी' के प्रथम अध्याय में ही मुरली को 'नाद ब्रह्म' की संज्ञा प्रदान की है :

“ तब लीनी कर कमल जौग माया सी मुरली ।

कषटित घटना चटुर बहुरि कधरन सुर जुर ली ।

जाकी धुनि है निगम अगम प्राटित बड़ नागर ।

नाद ब्रह्म की जानि मोहनी सब सुख सागर ॥ २

आचार्य वल्लभ ने मुरली ध्वनि को ब्रह्मानन्द से भी अधिक आनन्द देने वाली माना है, वह आनन्द की सार है।

श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १०, सुबोधिनी भाषा में एक स्थान पर वे लिखते हैं कि “ जब किसी को प्रभु कृपा प्राप्त होती है, तब उसके समस्त वंशी बजने लगती है :

“ यदा सत्तु पुरुषः त्रियमश्रुते वीणा वस्मे वाक्सी ॥ ” ३

इस प्रकार वंशी ध्वनि आचार्य वल्लभ के अनुसार प्रभु के अनुग्रह की द्योतक है।

कृष्ण भक्तों ने कृष्ण को ईश्वर माना है और

१- रासपंचाध्यायी- अध्याय ५

२- रास पंचाध्यायी- नन्ददास- आचार्य शुक्ल- प्रथम अध्याय

३- श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १० पूर्वार्द्ध- अध्याय २१ वेणुगीत श्लोक ६- सुबोधिनी भाष्य

गोपियों को ऐसी जीवात्मा जिन पर पूर्ण रूप से ईश्वर की कृपा है। राधा इनमें श्रेष्ठ हैं, वे वास्तव में प्रकृति हैं और कृष्ण पुरुष। इन दोनों में कोई अन्तर नहीं^१। अतः कृष्ण- राधा और गोपियाँ भक्तों को सुख प्रदान करने के हेतु ब्रज में अवतरित हुए।

उपर्युक्त कृष्ण भक्ति सिद्धान्तों पर दृष्टिपात कर हम कह सकते हैं कि सभी सम्प्रदायों से सम्बन्धित भक्त कवियों के दार्शनिक सिद्धान्त लगभग समान ही हैं उनमें जो भेद दिखाई देता है, वह अंशतः है मूल रूप से नहीं। सभी भक्त श्रीकृष्ण को ही परब्रह्म, सर्वशक्ति सम्पन्न विभु अंशी व स्वामी मानते हैं, जीव मात्र को उनके आधीन दास, अणु तथा अंश रूप स्वीकार करते हैं। जीव का अणुत्व किसी दशा में लोप नहीं होता। संसारी दशा में तो वह नाना प्रपञ्चों और बन्धनों में जकड़ा हुआ संसार चक्र में भ्रमता रहता है। मुक्त होने पर भी जीव का अणुत्व स्वभाव बना रहता है। यहाँ पर भक्तिवादियों का जानवादियों से पार्थक्य है। शैव, शाक्त मत वाले जीव में अणु भाव को स्वीकार नहीं करते। मोक्षा दशा में जीव ईश्वर में मिलकर अंश भाव ही प्राप्त कर लेता है। उसका पृथक् अस्तित्व नहीं रहता पर भक्ति के रसास्वादकों से को यह मान्य नहीं, वे जीव, माया, ब्रह्म सभी को निश्चय तत्त्व स्वीकार करते हैं। मोक्षा दशा में परम पद की उपलब्धि होने पर भी जीव में अणुत्व बना रहता है और इसी में उसकी सार्थकता है अणु यदि विभु में अपनी सत्ता लय कर दे तो फिर साधना किसकी और किस प्रकार करे, इसी भक्ति को करने के लिए जीव को अणु रूप में अपनी सत्ता बनार रखनी पड़ती है।

चतुर्थ वध्याय

सूफियों की प्रेम-साधना

सूफियों की प्रेम-साधना :

प्रेम-भाव के अन्तर्गत रति या राग का वह स्वरूप जाता है जो अभिमत वस्तु की ओर आकृष्ट होकर सदैव उसी की ओर बढ़ता रहता है। इस स्वरूप को कभी कभी वासना सम्भरने का प्रेम ही जाता है। इसी वासना को प्रायः सभी देश और काल में तथा सृष्टि के उद्भव और विकास के मूल में माना गया है। "निकल्सन" ने अपनी पुस्तक "स्टडीज़ इन इस्लामिक मिस्टीसिज़्म" में कहा है, "सृष्टि के उद्भव से पूर्व ईश्वर अपनी क्रिया के कारण आत्म प्रेम में लीन था परन्तु उस प्रेम को बाह्य रूप प्रदान करने के हेतु उसने अस्त से सत् उत्पन्न किया एवं अपने प्रतीक के रूप में मानव की भी उद्भावना की।" "ज्ञान सागर" में भी कहा गया है कि "संसार में नियम व सुव्यवस्था प्रेम के ही कारण है आकाश के नक्षत्र-मण्डल, सूर्य और चन्द्रमा, वृक्ष, पुष्प व उन पर मँडराते प्रमर सभी प्रेम के कारण संचालित हैं। मछली जल का परित्याग नहीं कर पाती तथा स्त्री और पुरुष स्वतः ही एक दूसरे के प्रति अतुरुक्त हो जाते हैं।"

इसी प्रकार प्रेम का सम्मान सर्वदा व सर्वत्र होता आया है। शुद्ध प्रेम की प्रवृत्ति स्वच्छन्द होती है वह अहेतुक तथा निःस्वार्थ होता है, उसका सम्बन्ध किसी विशेष गुण से नहीं होता। वह तो सामान्य को भी विशिष्ट बना देता है। किसी गुण के आधार पर हुआ प्रेम उस गुण की समाप्ति पर स्वतः ही नष्ट हो जाता है एवं उससे अधिक गुण वाली वस्तु के प्रति पुनः जागृत हो सकता है अतः वह अहेतुक व शुद्ध प्रेम नहीं होता

१- Studies in Islamic Mysticism- R.A. Nicholson

२- ज्ञान सागर पृ० २,४,६

जिसे हृदय की निश्चयात्मक प्रवृत्ति कहा जा सके उसे केवल वासना की ही संज्ञा दी जा सकती है।

प्रेम के लौकिक और अलौकिक दो रूप हमारे समक्ष आते हैं। प्रेम का लौकिक रूप तो एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के प्रति होता है परन्तु उस व्यक्ति का अपने इष्टदेव के प्रति किया गया प्रेम अलौकिक प्रेम की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। अलौकिक प्रेम की साधकता प्रेमी, या भक्त के कारण नहीं अपितु उसके प्रेम पात्र भगवान् के कारण है। ईश्वर की शक्ति, शील और सौंदर्य की महत्ता पर ध्यान केन्द्रित करना तथा उन्हीं का गुणानुवाद करना अलौकिक प्रेम के वर्णन आता है।

इस प्रकार साधना में प्रेम की व्यापक महत्ता सर्वदा से स्वीकृत हुई है फिर सुफ़ी इससे किस प्रकार बच सकते थे उनकी तो साधना का विशाल भवन ही प्रेम की आधारशिला पर आधारित है। परन्तु उनकी साधना मादन भाव की होती है इसका कारण सुफ़ियों का यह विश्वास है कि मादन भाव को अपनाते से ही प्रियतम की प्राप्ति सुलभ हो सकती है। इस मादन भाव की प्राप्ति उन्हें शमी जानि से हुई^१। मादन भाव में सौंदर्य को ही प्रेम का मूल कारण माना गया है। इब्नुल अरबी का कथन है, "प्रेम का मूल कारण सौंदर्य है।" सुफ़ी साधक भी ईश्वर के सौंदर्य पर ही मुग्ध होते हैं। उन्हें ईश्वर के जलाल से अधिक उसके जमाल पर मरोसा है और ईश्वरीय सौंदर्य की प्राप्ति के हेतु वे सांसारिक सौंदर्य की प्रशंसा करना पाप नहीं

1. The Religion of the Scimites- Robertson smith pp 515

2. The Mystical philosophy of Muhiuddin Ibnul Arbi-A.L.Ahlf pp 173

समझते अपितु वे लौकिक प्रेम को ही जलौकिक प्रेम का निमित्त स्वीकार करते हैं। इश्क मजाजी क्यात् लौकिक प्रेम द्वारा ही इश्क हकीकी क्यात् जलौकिक प्रेम की प्राप्ति सम्भव है ऐसा सूफियों का दृढ़ विश्वास है।

अतः सूफियों की साधना पूर्णरूपेण प्रेम पर अवलम्बित है। प्रेम पर उनका इतना व्यापक अधिकार है कि प्रेम को सूफी मत का पर्याय समझा जाता है। प्रेम के सम्बन्ध में सूफियों ने विभिन्न मन्त्रव्य प्रकट किये हैं। अबूतालिब का कथन है कि प्रियन्म के दर्शनों की इच्छा प्रेम का ही लक्षण है। हाफिज का कथन है, “ प्रेम से जिसका हृदय आप्ला-^१वित है वह कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता । सूफी साधक अल शिक्सी ने प्रेम के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि, “ प्रेम हृदय में अग्नि के समान है और जिस प्रकार अग्नि सभी वस्तुओं को गर्मसात् कर लेती है उसी प्रकार प्रेम भी ईश्वरीय इच्छा के अतिरिक्त सभी वस्तुओं को जला डालता है। ”

जुनैद प्रेमी के स्वगुणों का नष्ट होना और उसमें प्रियन्म के गुण आ जाना ही प्रेम का लक्षण मानते हैं इससे प्रेमी की अर्ह मावना नष्ट हो जाती है और वह प्रियन्म के श्रेष्ठ गुणों से युक्त हो जाता है। अलहुज्वरी ने अपनी पुस्तक कश्फुल महजुब में वास्तविक प्रेमी उसी को स्वीकार किया है जो सभी इच्छाओं से रहित है। उनके अनुसार, ईश्वर के

1. Studies in Early Mysticism in the near and Middle east-
- Margret Smith pp 203

2. Outlines of ~~the~~ Islamic Culture - M.A. pp 871

3. Al Ghazzali- The Mystic- Margaret Smith pp 77

4. Kashf Al Mahjub- Al Hujwiri- pp 307

प्रेमी के पास इच्छा नाम की कोई वस्तु ही नहीं रह जाती जिससे किसी भी अच्छी या बुरी वस्तु की वह कामना करे। क्योंकि जो ईश्वर का प्रेमी है उसके लिये ईश्वर के सिवाय कोई भी वस्तु अभीप्सित नहीं होती। एक अन्य स्थल पर भी उन्होंने ईश्वर के प्रति मानवीय प्रेम की व्यंजना की है, “परमात्मा के प्रति मनुष्य का प्रेम एक ऐसा गुण है जो ईश्वर को सर्वस्व मानने वालों के हृदय में श्रद्धा और आलोक के रूप में स्वयं को प्रकट करता है। अतः वह अपने प्रियतम को सन्तुष्ट करना चाहता है और उसके साक्षात्कार के लिये बधीर हो उठता है, उसके बिना उसे चैन नहीं मिलता। सदैव प्रियतम की ही स्मृति उसे बनी रहती है तथा उसके अतिरिक्त वह सबको भुला देता है। अलराजी का कथन है कि सच्चा प्रेम वही है जो प्रियतम की कृपा से न तो घटता है और न उसकी कृपा और स्नेह से वृद्धि को प्राप्त होता है।” जलालुद्दीन रूमी ने भी इस प्रकार के प्रेम की व्याख्या की है उनके अनुसार “हृदय को पीड़ा प्रेमी के प्रेम को व्यक्त कर देती है। हृदय की वेदना से किसी अन्य वेदना की तुलना नहीं की जा सकती। प्रेम एक पृथक् ही वस्तु है जिसमें देवी अनुभूतियाँ होती हैं। यही प्रेम हमें आगे ले जाने में सहायक सिद्ध होता है। इस प्रेम की व्याख्या तर्क का आश्रय लेकर नहीं की जा सकती। प्रेम स्वयं ही अपना व्याख्याकार है। यह ठीक सूर्य के समान है जिस प्रकार सूर्य अपना प्रभाव स्वयं है, उसी प्रकार प्रेम भी अपना प्रमाण स्वयं ही है।”

सूफी साधकों में राबिया का अत्यन्त महत्वपूर्ण

1. Kashf Al Mahjub- Al Hujwiri pp 307

2. Ibid 308

3. Ibid 312

4. The idea of personality in sufism- R.A. Nicholson pp 56

स्थान है। उन्होंने प्रेम को दो भागों में विभक्त किया, सकाम व निष्काम। राबिया के द्वारा विभक्त इन भेदों की व्याख्या जलजाली ने अपनी पुस्तक में की है। जलजाली के अनुसार सकाम प्रेम से राबिया का तात्पर्य उस प्रेम से है जो सुख व आनन्द की उपलब्धि के हेतु किया जाय एवं इस प्रकार ईश्वरीय अनुग्रह प्राप्ति की इच्छा हो। निष्काम प्रेम से राबिया का तात्पर्य ईश्वरीय जमाल पर मुग्ध होना था। ईश्वरीय सौंदर्य पर मुग्ध होने के उपरान्त साधक कामना रहित हो जाता है, उसकी कोई इच्छा भी शेष नहीं रहती। निष्काम प्रेम की प्राप्ति ही साधकों का अन्तिम लक्ष्य होता है। इस प्रकार के प्रेम पर जलालुद्दीन रूमी ने भी जोर दिया है। उनके अनुसार "जिस व्यक्ति की संपूर्ण इच्छायें ईश्वर के साथ एकत्व की प्राप्ति हो जाती हैं, उसी का प्रेम अनन्य है।"

अतः निष्काम प्रेम में प्रियतम के सिवाय किसी अन्य वस्तु की इच्छा नहीं रहती और सूफियों का विश्वास है जब तक ईश्वरीय कृपा नहीं होती साधक के हृदय में निष्काम प्रेम उत्पन्न नहीं होता। जल-हुज्वरी का कथन है कि "साधक चाहे जितना भी प्रयास क्यों न करे निष्काम प्रेम जैसी अमूल्य वस्तु उसे तब तक प्राप्ति नहीं होती जब तक ईश्वर की कृपा नहीं होती।" राबिया ने इसी प्रेम का प्रतिपादन किया है। वे स्वयं को ईश्वर की प्रिय दुलिन सम्झती थी। उनका कथन था, "

1. Rabia the Mystics -Al Ghazzali pp 104, 105

2. The Idea of Personality in sufism-R.A. Nicholson pp 56

3. Kashf Al Mahjub- Alu- Hujwiri pp 177

4. Aliterary History of the Arabs-R.A. Nicholson pp234

“ हे नाथ मैं आपको दिधा प्रेम करती हूँ। प्रथम तो यह मेरा स्वार्थ है कि मैं केवल आपकी इच्छा करती हूँ, किसी अन्य की नहीं। द्वितीय यह मेरा परमार्थ है कि आप अज्ञानान्धकार को मेरे नेत्रों से दूर कर दें हैं जिससे मैं आपका साक्षात्कार कर केवल आप में ही मग्न रह सकूँ। वस्तुतः इसका श्रेय मुझ नहीं मिल सकता क्योंकि यह तो आपकी कृपा का ही प्रसाद है। ”

राबिया को मुहम्मद साहब का मय मो अवश्य था पर वे सुदा के समता उसे तुच्छ समझती थीं। उनका कथन था, “ हे सुदा के रसूल, सभी प्राणी आपको प्रेम करते हैं पर मेरी तबस्था उनसे भिन्न है, मेरे हृदय में ईश्वरीय प्रेम का प्रसार इतना अधिक होगया है कि वहाँ उसके अनिरिक्त किसी अन्य के लिये स्थान नहीं। ” मैकडानल्ड तो मादन भाव का समस्त श्रेय राबिया को प्रदान करते हैं।

इसके पश्चात् मारुफ करखी ने प्रेम और मधु की उद्भावना को उनके अनुसार प्रेम व्यक्ति विशेष की शिदा न होकर ईश्वरीय प्रसाद है। करखी के बाद जुलनून ने राबिया द्वारा प्रतिपादित प्रेम का ही निदर्शन किया। उन्होंने इत्म और म्बारिफ, ज्ञान और प्रज्ञान का भेद बनाकर प्रेम को प्रज्ञात्मक सिद्ध किया। उनका कथन है कि, “ जो हम आँखों से देखते हैं वह सांसारिक ज्ञानहूपर जो हृदय द्वारा जाना जाता

1. A literary History of the Arabs- R.A. Nicholson pp 34

2. Muslim Theology- Macdonald pp 173

3. The Encyclopaedia of Islam Vol. III pp 307

4. The idea of personality in Sufism - Nicholson pp 9

है वही सच्चा ज्ञान है^१ और उसकी पहचान सच्चे प्रेम द्वारा ही हो सकती है। सुलतून के बाद यकीन इस ओर आसर हुए उनके अनुसार^२ ईश्वर के प्रति जीव के प्रेम से, जीव के प्रति ईश्वरीय प्रेम प्राचीन है। अज्ञानवश उसे ईश्वर के प्रति प्रेम का आभास होता है पर वास्तव में वह उस प्रेम के पीछे र चल रहा है जिसका स्रोत ईश्वर है। उनका कथन है कि, “ ईश्वरीय प्रेम की अवस्था में बाह्य कर्मों को महत्त्व न देना चाहिये। उन्होंने^३ में और तू^४ की भावना का अन्त कर जीव और ईश्वर को एकमेव घोषित किया।

‘हल्लाज’ ने भी सूफी साधना में प्रेम का प्रतिपादन किया। उन्होंने प्रेम को ईश्वर के सत्त्व का सार^३ बतलाया। उनका कथन है कि, “ मैं वहीं हूँ, जिसे प्यार करता हूँ और जिसे प्यार करता हूँ, वह मैं ही हूँ। हम एक शरीर में दो प्राण हैं। यदि तू मुझे देखता है तो उसे देखता है और यदि उसे देखता है तो हम दोनों को देखता है। ”

अतः सूफी साधना में प्रेम या इश्क का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। सूफी प्रेम को ही सर्वस्व मान अन्य भावों की उपेक्षा करते हैं परन्तु इस प्रेम को सूफी साधक^४ ईश्वर कृपा द्वारा ही सुलभ मानते हैं। “ ईश्वर कृपा के साथ साथ हृदय की शुद्धि भी परमावश्यक है जिससे अपने मनोमालिन्य को धी नहीं डाला एवं सांसारिक वस्तुओं के प्रलोभन का

1. Studies in Early Mysticism in the near and Middle east-1931
1931 - M. Smith pp 209
2. Journal Royal Asiatic Society - 1906 pp 305
3. Studies in Islamic Mysticism - Nicholson pp 85
4. Kashf-Al Mahjub- Al Rujwiri pp 177

त्याग नहीं किया उन्हें ईश्वर अपने प्रेम का अधिकारी नहीं समझता । जो ईश्वर को प्रेम करने हैं, उन्हें ही ईश्वर प्रेम करता है। बायज़ीद बिस्तामी का कथन है, “ मैं समझता था कि मैं ईश्वर से प्रेम करता हूँ पर ध्यान देने पर मैंने देखा कि मेरे प्रेम करने से पहले ही वह मुझसे प्रेम करता है। ” सूफी ईश्वर को प्रियतम कहते हैं और मानवीय प्रेम को ईश्वरीय प्रेम तक पहुँचने की सीढ़ी मानते हैं। “ जामी ने अपनी एक कविता में इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। उनके अनुसार मैं एक मात्र प्रेम ही ‘ वह ’ से रदा करने में समर्थ हूँ और सांसारिक प्रेम ही परम सत्य तक पहुँचने में सहायक सिद्ध हो सकता है। ”

सूफियों के अनुसार यही सांसारिक प्रेम और मानवीय प्रेम जागे चलकर विश्व ब्रह्माण्ड को वाच्छन्न कर लेता है और ऐसा होने पर साधक सर्वत्र आत्मा और परमात्मा की प्रेम लेता के दर्शन करने लगता है। सौंदर्य की सीमित परिधि अन्त में अनन्त सौंदर्य तक पहुँच जाती है और साधक स्वयं को उस अनन्त सौंदर्य में डुबो देता है। सूफी साधकों का यह भी विश्वास है कि प्रेम के द्वारा ही माया मोह से मुक्ति सम्भव है लेकिन जब साधक के हृदय में प्रेम का संचार होता है तो सांसारिक वास्तुयें स्वयं ही उसके लिये तुच्छ हो जाती हैं। इस प्रकार प्रेम ही माया, मोह से मुक्ति का भी साधन है।

ईश्वर के साथ ‘ एकमेव ’ होना क्यात् पूर्ण मिलन-वस्था के विषय में सूफियों का मतभेद है। कुछ सूफी फना को ही अन्तिम स्थिति मानते हैं। लेकिन हुजवीरी बलसरान्ज वादि उनके इस मत का सफ़हन

करते हुए फना के बाद भी एक स्थिति को स्वीकार करते हैं जिसे 'बका' कहते हैं। हुज्वीरी ने 'फना' और 'बका' के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए बतलाया है कि 'फना' वास्तव में किसी वस्तु की अपूर्णता का ज्ञान और उसे पाने की इच्छा से विरत होना है। उनके अनुसार 'फना' की अवस्था में न प्रेम के लिये स्थान रह जाता है और न घृणा के लिये एवं 'बका' की स्थिति में न 'संयोग' का ज्ञान रह जाता है और न 'वियोग' का ।

अली बिन उस्मान जुल्लाबी 'फना' और 'बका' दोनों को एक ही स्थिति मानते हैं उनका कथन है कि वे सभी एक ही भाव को प्रकट करते हैं केवल कहने का ढंग भिन्न है।

'जिली' का विश्वास है कि 'फना' का अर्थ मानव का ईश्वर में विलीन होना ही सम्झा जाता है। 'बका' का अर्थ प्रायः ईश्वर तत्त्व में अवस्थित होना माना जाता है। शविस्तारी के अनुसार 'फना' का अर्थ मानवीय गुणों का विलय होना और 'बका' का अर्थ ईश्वर के स्वरूपान्तर्गत स्थिति प्राप्त कर लेना है।

हमी का मत इनसे कुछ भिन्न है वे ईश्वर और जीव को स्वरूप से भिन्न मानते हुए भी गुणों से अभिन्न मानते हैं। अतः वे 'फना' का अर्थ गुणावली का नाश और 'बका' का अर्थ ईश्वरीय गुणों का लाभ मानते हैं। अलसर्राज ने 'फना' और 'बका' की व्याख्या अपने ही ढंग

1. The Kashf Al Mahjub - R.A. Nicholson -1911 - Al Hujwiri

pp 243, 246

2. Studies in Islamic Mysticism(1921) R.A. Nicholson pp 93

से की है उनका कथन है¹ कि साधक के हृदय में परमात्मा नहीं प्रवेश करता बल्कि ईश्वर के प्रति साधक का विश्वास, परमात्मा के 'एकत्व' के प्रति उसकी दृढ़ता तथा ईश्वर के स्मरण के प्रति श्रद्धा का ही उसके हृदय में प्रवेश होता है।

निष्कारि ने 'फना' और 'फानी' (लुप्त हुआ) के स्थान पर 'वाक़फ़त' (सौज या साधना का अन्त) और 'वाकिफ़' (वह साधक जो अपनी सौज या साधना का अन्त करके 'सौजे' हुए पदार्थ 'में' लय हो जाता है) का प्रयोग किया है। 'वाक़फ़त' प्रकाशमान है और यह मिन्नत्व के भाव को दूर करता है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार प्रकाश अन्धकार को दूर करता है। यह सभी अस्तित्व वाली वस्तुओं के नश्वर मूल्य को उनके असली और शाश्वत मूल्य में परिवर्तित कर देता है।

अतएव 'वाकिफ़' काल और स्थान की परिधि का अन्निष्क्रमण कर जाता है, वह प्रत्येक घर में प्रवेश करने पर उसमें समा नहीं सकता, प्रत्येक कूप का जल पीने पर भी उसकी तृष्णा नहीं बुझती तब वह मेरे समीप पहुँचता है और 'में' (परमात्मा) ही उसका घर हो जाता है और वह मुझमें वास करने लगता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वह सभी देवी गुणों को सम्पन्न लेता है और सभी मर्मा अनुभूतियों का ज्ञाता हो जाता है वह केवल नामों अर्थात् गुणों से ही सन्तुष्ट नहीं होता वरन् नामी अर्थात् ईश्वर की सौज भी करता है। वह परमात्मा के सत्त्व का चिन्तन करता है और उसमें स्व रूप का सादृश्य पाता है। अब वह

1. The Mystics of Islam (1914) R.A. Nicholson pp 157, 53

प्रार्थना नहीं करता, प्रार्थना तो मनुष्य की ओर से ईश्वर के प्रति होती है परन्तु 'वाकफत' में तो सिवाय ईश्वर के कुछ भी नहीं रहता और 'वाकफत' से भी परे होने पर 'वाकिफ' स्वयं प्रकाश रूप ही जाता है। उस समय ईश्वर का ज्ञान ही उसका ज्ञान है और परमात्मा का गुणानुवाद जब वह करता है तो उसका उत्पत्ति स्थल ईश्वर ही है, वह स्वयं को देखता है जैसा कि वह प्रारम्भ में था^१।

कुछ सूफी साधक इस अवस्था को मृत्यु के बाद की अवस्था मानते हैं लेकिन अधिकांश इस जीवन में ही उस अवस्था की प्राप्ति की बात कहते हैं। परन्तु इन दोनों प्रकार के सूफियों का चरम लक्ष्य की प्राप्ति के विषय में समान ही मत है अर्थात् ईश्वर की प्राप्ति के विषय में दोनों यही स्वीकार करते हैं कि परमात्मा को वही जान सकता है जो स्वयं को जान लेता है कारण कि परमात्मा का साम्राज्य हृदय के भीतर है और उसको जाने बिना परमात्मा को नहीं जाना जा सकता। स्वयं को जानने से तात्पर्य वात्मा को जानना है। और वात्मा को प्रेम द्वारा ही जाना जा सकता है। प्रेम में वात्मा विभोर होने पर ही ईश्वर से मिलन सम्भव है और प्रेम का होना तभी सम्भव है जब वह भावना से छुटकारा मिले। इसकी अत्यन्त सुन्दर वर्णन जलालुद्दीन रूमी ने मसनवी में दिया है, " ईश्वर मिलन के हेतु प्रियतम के द्वार पर सड़ सड़े युग बीत गये पर कपाट न खुला। प्रियतम परिचय माँगता है, उसे अपना परिचय न जाने कितने रूपों में दिया जाता है, कितने कृत्यों का निदर्शन किया जाता है पर उसका मन नहीं पसीजता। वह यही कहता है कि स्थान नहीं। उसका

प्रश्न होता है " कौन ? उत्तर दिया जाता है " मैं ", " बदले में उत्तर मिलता है, कहीं अन्यत्र देखो, यहाँ मैं को शरण नहीं । " भ्रमण करने पर जब कहीं भी मैं को वाश्रय न मिला तो उसे ग्लानि होती है कि इस " मैं " के फेर में पड़ा ही क्यों ? मैं के कारण ही मुझे पृथक् होना पड़ा । यदि मैं न होता तो क्या होता ? इतना सोचना हुआ वह प्रियतम के द्वार पर पहुँच जाता है। ध्वनि उठी " कौन " ? उत्तर मिला " तू " और तब दरवाजा खुल गया । अतः जब तक मनुष्य उस " मैं " और " तू " अर्थात् इस अहं भावना से छुटकारा नहीं पा लेता तब तक उसे प्रियतम की प्राप्ति असम्भव है। यह प्रेम की गली अति संकीर्ण है, जब तक इसमें " अहं " बना रहता है, प्रियतम के लिये स्थान नहीं और " अहं " के नष्ट होने पर ईश्वरत्व की प्राप्ति हो जाती है। यही " बका " की स्थिति है जो " फना " के बाद आती है।

" फना " और " बका " की अवस्थाओं का वर्णन करने हुए जामी ने अपने ग्रंथ " नफ़हल -उल्- उन्स " में एक स्थान पर एक सूफी दरवेश की कब्रि जीवन कथा देते हुए लिखा है, " कोई एक दरवेश जो प्रसिद्ध सन्त शहाबुद्दीन सुहरावर्दी का शिष्य था, परमात्मा के एकत्व का चिन्तन करते करते वाह्लाद की महान् अवस्था " फना " की स्थिति में आगया । एक दिन वह रोने और विलाप करने लगा । शैख शहाबुद्दीन के पूछने पर कि उसे क्या दुःख है ? उसने उत्तर दिया, देखिये, अनेकत्व की बाधा ने मुझे एक के दर्शन से वंचित कर दिया । मैं अस्वीकार कर दिया हूँ और अपनी पूर्वावस्था को पाने में असमर्थ हूँ। शैख ने बतलाया कि वह " बका " की स्थिति का पूर्वाभास है और उसकी वर्तमान दशा पूर्व दशा की अपेक्षा

अधिक उच्च और उत्कृष्ट है।

सूफी साधक यह स्वीकार करते हैं कि ईश्वर मिलन के हेतु अनैकानेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। मंसूर हल्लाज ने कहा है कि " ईश्वर मिलन भी सम्भव है, जब हम कष्टों के मध्य से गुजरे^१। " इसी कारण सूफी साहित्य में प्रेमी को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है। प्रेम के उदय होने से लेकर ईश्वर मिलन अर्थात् " फना " और " बका " की स्थिति तक साधक को भयावह कष्टों का सामना करना अनिवार्य है। इन बाधाओं से ही प्रेम निरंतरता है और मिलन का सच्चा स्वरूप साधक के समक्ष आता है। हुज्वीरी ने लिखा है^२, " प्रिय के द्वारा दुःख मिलने पर प्रेमी अपने प्रेम का सम्बल पाकर प्रिय की कठोरता और उदारता दोनों को ही समान रूप से फेकता है। इस तथ्य को दृढ़ करने के हेतु उन्होंने शिबली को कथा दी है। उसे विदिफ्त सम्मत् पागलखाने में डाल दिया गया। उसके मित्र उससे मिलने आये, उन पर उसने पत्थर फेंकने शुरू कर दिये। उनके भागने पर शिबली ने कहा, " यदि तुम मेरे मित्र होते तो मेरे द्वारा पहुँचाये गये कष्टों से भागते नहीं। "

इस प्रकार प्रिय के द्वारा कष्ट मिलने पर प्रेमी का प्रेम निरंतरता है कम नहीं होता और इन कष्टों के मध्य भी उसे यह आशा निरन्तर रहती है कि कभी न कभी उसका प्रियतम से मिलन होगा। प्रेमी को इन्हीं दृढ़ताओं को लक्ष्य कर श्री चन्द्रबली पाण्डेय ने कहा है, " वियोग की दशा में भी कभी कभी स्वप्न में ही सही प्रेमी को प्रियतम का साक्षात्कार

1. Outlines of Islamic culture-A.M.A. Shushtery pp 350

2. The Kashf-Al Mahjub- translated by R.A. Nicholson-Al Hujwiri pp 312, 313

तथा उसके स्पर्श का सुख मिलता रहता है। यदि चरम संयोग के महासुख का आस्वाद सर्वथा ओचर रहे तो प्राणी भूलकर भी उसके लिये प्रयत्न करे नहीं। उसके लिये याचना की जो बात ही क्या ? सूफी तो यह समझते ही हैं कि लौकिक संभोग उस अलौकिक रसनिधि का एक छींटा ही है जो लुभाने के लिये आनन्द के उत्कर्ष में दे दिया जाता है। सूफी 'वस्ल' की कामना उसी के आधार पर करते हैं। वस्ल में प्रेमी और प्रिय का भाव पूरा पूरा बना रहता है। उसमें कल का मान ही मर हो जाता है। सूफी वस्ल के आगे बढ़कर 'जिमाव' (संपूर्ण) का आनन्द लेते हैं। इस अवस्था में प्रेमी और प्रिय का समन्वय हो जाता है। किसी का अविमान नहीं रह जाता। उसका स्वरूप सायुज्य सा हो जाता है। कैवल्य नहीं। कारण कि भावना के क्षेत्र में द्वैत का सर्वथा लोप नहीं हो सकता उसका कुछ न कुछ भाव बना ही रहता है। यही कारण है कि सूफी भावना के क्षेत्र से आगे बढ़ना चाहते हैं। उनके प्रेम की वृद्धता उसमें सहायक भी होती है। अनेकानेक कष्टों और याचनाओं को भुलकर वे ईश्वर की ओर बढ़ते जाते हैं और फिर अहंत्व की समाप्ति होने पर ईश्वरत्व की प्राप्ति होती है। आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ता है। कठोर संसार भी आनन्दमय हो जाता है एवं उन्हें 'बर्क' या मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है। यही महामिलन की स्थिति है जिसकी प्राप्ति के लिये साधक को सर्वस्व त्याग कर उसी ईश्वर की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील होना पड़ता है।

वस्तुतः सूफी मार्ग की अन्तिम मैजिल प्रेम है परन्तु प्रेम के साथ ही वे 'मारिफ' या ज्ञान को भी महत्त्व देते हैं परन्तु 'मारिफ' भगवत्कृपा से ही प्राप्त होता है। डा० रामपूजन तिवारी का

१-सूफी मत साधना और साहित्य - ले० रामपूजन तिवारी पृ० ३२१

कथन है कि जब मनुष्य अपनी चेष्टाओं के द्वारा सांसारिक शिक्षाओं की सहायता से 'इस्म' हासिल कर सकता है। परमात्मा अनुग्रहपूर्वक 'मारिफ' या वाध्यात्मिक ज्ञान उसे ही देता है जिसे उसने इसके योग्य बनाया है। परमात्मा के अनुग्रह का यह वह प्रकाश है जो हृदय को प्रकाशमान कर देता है और मनुष्य की सम्पूर्ण शक्तियाँ, शारीरिक, मानसिक और वाध्यात्मिक को चकावौंध करने वाली अपनी किरणों से अभिभूत कर देता है। इस ज्ञान के द्वारा ही साधक परमात्मा के दर्शन कर पाता है और इस प्रकार से उसका साक्षात्कार करने हुए उसके साथ एकमेव हो जाता है। आगे वे एक स्थान पर कहते हैं कि "मारिफ परमात्मा के एकत्व का बोध ही है।"

ईश्वर के साथ 'एकत्व' प्राप्त करना ही ज्ञानी का लक्ष्य होता है। जामी ने इस एकत्व प्राप्ति के विषय में कहा है, "हृदय को पवित्र करना और ईश्वर के सिवाय हर वस्तु से अपने हृदय को रिक्त करना ही एकत्व है।" इस प्रकार उस हृदय में न किसी प्रकार की आकांक्षाएँ रहेंगी और न कामनाएँ ही। पर यह तो तभी सम्भव है जबकि साधक साधना द्वारा अपने समस्त कलुष और वासना दूर करने में समर्थ हो और अन्त में 'वह' को भी भुला दे। तभी परम प्रियतम के साथ उसके मिलन का रास्ता साफ हो जाता है। मार्ग की समस्त बाधाएँ दूर हो जाती हैं और फिर प्रेम द्वारा ही वह परम प्रियतम को प्राप्त करता है। प्रेम द्वारा ही वह प्रिय मिलन की ओर अग्रसर होता है और प्रेम के द्वारा ही उसे 'मारिफ' या ज्ञान की उपलब्धि होती है। यह ज्ञान प्रियतम की प्राप्ति में साधक होता है बाधक नहीं।

सामान्य रूप से सूफियों के प्रेम के निम्नलिखित प्रमुख तत्त्व हैं।

दुःख का प्रादुर्भाव :

यह सूफी प्रेम पद्धति का प्रमुख एवं महत्वपूर्ण तत्त्व है। प्रेमी के हृदय में प्रिय के लिए प्रेम का आविर्भाव होने ही दुःखों का प्रारंभ हो जाता है। इन कष्ट और दुःखों को सूफी प्रिय प्राप्ति में सहायक मानते हैं, बाधक नहीं। कष्ट और बाधाओं के मध्य से गुजरने पर ही प्रेमी का प्रेम निरंतरता है और मिलन का सत्य स्वरूप साधक के समझा जाता है।

वृद्धता और एकनिष्ठता :

सूफियों के प्रेम का दूसरा तत्त्व है, उसकी वृद्धता और एकनिष्ठता। प्रेमी अपने प्रिय के अतिरिक्त अन्य किसी का स्मरण नहीं करता। प्रिय का नाम भी उसके प्रेम का प्रेरक होता है। एकनिष्ठ भाव से सूफी साधक ईश्वर प्राप्ति के लिए अग्रसर होता है। प्रिय से 'वस्ल' ही उसकी एक मात्र कामना रहती है और 'वस्ल' (मिलन) होने पर वह 'जिमाव' (संपृक्त) का आनन्द लेने से भी नहीं चूकता। 'जिमाव' की अवस्था में प्रेमी और प्रिय का समन्वय हो जाता है, और यही एकत्व की स्थिति सूफियों को मान्य है, जो वृद्ध और एकनिष्ठ भाव से प्रिय प्राप्ति के लिए अग्रसर होने पर ही सम्भव हो सकती है।

हृदय की बवित्रता :

प्रेम मार्ग की ओर अग्रसर होने वाले साधक को सर्वप्रथम

अपने हृदय को पवित्र करना पड़ता है। हृदय से समस्त कलुष, मात्सर्न्य और वासना के प्रदूषण करने पर ही वहाँ प्रिय का निवास सम्भव है। प्रेम-भावना का आविर्भाव पवित्र हृदय में ही हो सकता है अतः प्रिय प्राप्ति के लिए हृदय को दर्पण के समान निर्मल रखना पड़ता है जिससे पूर्णरूपेण प्रियतम का प्रति-बिम्ब उतर सके ।

अहंकार, क्रोध और ईर्ष्या का लोप :

प्रिय प्राप्ति हेतु अग्रसर होने वाले साधक का हृदय पवित्र होना चाहिए । फलस्वरूप उसमें अहंकार, क्रोध और ईर्ष्या की भावना भी शेष नहीं रहनी चाहिए , तभी वह विश्व की समस्त संकीर्णताओं से मुक्ति पाकर परम प्रियतम की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हो सकता है। अहं की भावना के लोप होने पर ही हृदय में प्रियतम का प्रवेश सम्भव है। तभी ईश्वरत्व की प्राप्ति होती है। यही स्थिति 'बका' की है, जो सूफी साधक को काम्य है और जिसकी उपलब्धि 'फना' के बाद सम्भव है। अतः सूफी प्रेमसाधना सांसारिक आकर्षण से निर्लिप्त होकर अहंकार, क्रोध और ईर्ष्या का परित्याग कर निरन्तर प्रिय स्मरण और उसकी संयोग प्राप्ति पर जोर देती है।

सूफी प्रेम मार्ग की मंजिलें :

भारतीय सूफी प्रेम मार्ग की चार मंजिलें और उन मंजिलों की चार अवस्थाएँ स्वीकार करते हैं। सर्वप्रथम मंजिल नासूत है जिसमें

साधक को शरीरगत के नियमों का पालन करना पड़ता है। द्वितीय मंजिल 'मत्कूत' कहलाती है जिसमें साधक को 'नरीका' अर्थात् पवित्रता का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। इसमें साधक का त्रि मायिक जगत् की तुच्छताओं का त्याग कर परम पवित्र हो जाना है। तृतीय मंजिल 'जबस्त' है जिसमें साधक आध्यात्मिक शक्ति उपलब्ध करता है और प्रेम मार्ग की बाधाएं स्वतः ही नष्ट हो जाती हैं, यह मंजिल 'मारिफ' या ईश्वरीय ज्ञान की है जहाँ पहुँचकर साधक का हृदय सारिख राग विराग से मुक्त हो जाता है और उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है। इसके बाद साधक चतुर्थ 'मंजिल' 'लाडूत' में प्रक्षारण करता है यही 'हकीकत' या परम सत्य की स्थिति है, जहाँ पर 'अहंत्व' और 'परत्व' की भावना से परे वह प्रिय में एकत्व प्राप्त कर लेता है।

जः सूफ़ी साधक एक ओर जहाँ प्रेम की दृढ़ता एक-निष्ठता एवं हृदय की शुद्धि में विश्वास करता है, दूसरी ओर वह प्रिय और उसके प्रेम को प्राप्त करने के लिए प्रेम मार्ग की मंजिलों को पार करना भी आवश्यक मानता है। प्रेम की एकनिष्ठता, हृदय की पवित्रता और शरीरगत के नियमों का पालन आदि उसकी प्रेम साधना के मुख्य तत्त्व हैं जिनके मूल में प्रिय मिलन का भाव विद्यमान है।

पंचम अध्याय

कृष्ण भक्त कवियों की प्रेम-साधना

भक्ति और प्रेम :

भक्ति ही भगवदाराधना का प्राण है और इस भगवत्-
वाराधना या परमात्म प्रेम के व्यक्तीकरण के अनैकानेक स्वरूप हो सकते हैं,
जिनमें निम्न मुख्य हैं :

- १- शान्त भाव
- २- दास्य भाव
- ३- सख्य भाव
- ४- वात्सल्य भाव और
- ५- मधुर

इनमें शान्त और दास्य तो भाव तक ही रह जाते हैं परन्तु सख्य वात्सल्य और मधुर रति कहे जाते हैं, इन भावों में क्रमशः रति भावना तीव्र होती जाती है। मधुर या माधुर्य भाव प्रेम का सर्वोच्च स्वरूप है। इस भाव से की गई भक्ति माधुर्य भक्ति की संज्ञा से अभिहित होती है। वास्तव में इस भाव से की गई भक्ति से जितनी निकटता का अनुभव भक्त को होता है उतना अन्य भावों से नहीं होता। इस भक्ति से भक्त ही भगवद् विषयक तन्मयता उस कोटि की होती है, जो हमें पति-पत्नी प्रेम में दृष्टिगत होती है। पत्नी पति को अपना सर्वात्म सम-पण कर देती है, उससे उसकी कोई लाज नहीं, कोई दुराव - छिपाव नहीं। इसी प्रकार जब भक्त भगवान् के समक्ष सर्वस्व वर्णन कर देता है, उससे कोई पर्दा नहीं रहता तो ईश्वर भी उसे अपने प्रेम का अधिकारी स्वीकार कर लेते हैं।

‘प्रेम’ केवल माधुर्य भक्ति का ही नहीं अपितु सामान्य भक्ति का भी आधार है यही कारण है कि भक्ति के आचार्यों ने भक्ति को

प्रेम रूपा कहा है। अतः भक्ति और प्रेम का निकटतम सम्बन्ध है। प्रेम हृदय की मनोवृत्ति है। प्रेमियों ने प्रेम की परिभाषा स्वानुभव के आधार पर देने का प्रयास किया है। देवर्षि नारद ने अपने 'भक्ति सूत्र' में प्रेम को अनिवर्त्तनीय प्रेम स्वरूप कहा है और उसकी परिभाषा इस प्रकार दी है :

‘ गुणरहितं कामनारहितं प्रतिदाणवर्धमानमविच्छिन्नं
सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् । २

अर्थात् प्रेम गुण रहित, कामना रहित प्रतिदाण वृद्धि को प्राप्त होने वाला, विच्छेद रहित सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर और केवल अनुभव से ही जाना जा सकता है। इस प्रेम को प्राप्त कर प्रेमी केवल उसे ही देखता है, उसी को सुनता है और उसी का वर्णन करता है तथा उसी का चिन्तन करता है :

‘ तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति तदेव भाषयति तदेव
चिन्तयति । ३

कहण उस के आधार पर महाकवि भवभूति ने प्रेम का चित्रण इस प्रकार किया है :

‘ कीर्तं सुख दुःखयोरनुगुणं सर्वास्ववस्थसु य ,
द्विश्रामो हृदयस्य यत्र जप्ता यस्मिन्नहार्यो रसः ॥ ४

प्रेम एक ऐसा भाव है जिसके उत्पन्न होने से हृदय कोमल हो जाता है, पाषाण पिघल जाते हैं, ममता उत्पन्न हो जाती है और फिर वही भाव परम प्रेम की

१- नारदभक्ति सूत्र (सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा ॥२॥)

२- ,, ५४

३- ,, ५५

४- उच्चराम्बरितम् - भवभूति ३६

उपाधि से युक्त हो जाता है :

‘सम्यहोमसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाकृतः ।

भावः स ख सान्द्रात्मा बुधः प्रेमा निगम्ये ॥ १

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी भी प्रेम को भक्ति का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप घोषित करते हैं। उनके अनुसार निरन्तर स्नेह भी भक्ति है :

‘स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तमप्या मुक्तिर्नवान्यथा ।’ २

यह स्नेह जब सांसारिक वस्तुओं या व्यक्तियों के प्रति होता है तो लौकिक कहलाता है और उस परम तत्त्व के प्रति किया गया अनुराग लौकिक प्रेम या भक्ति की संज्ञा से अभिहित होता है। दाईं ओर के बने हुए इस अमोघ अस्त्र का जाग्रत ग्रहण कर भक्त गण उस निराकार को साकार रूप में पाकर अपने नेत्रों की प्यास बुझाने का प्रयास करने लगा रहा है। परन्तु क्या वह इस नेत्रों की प्यास को बुझा सका है ? वह प्रेम ही क्या जो अघाना जानि, वह भक्ति ही क्या जो समस्त विश्व को अपने प्रभु में लय न कर दे और वह साधना ही क्या जो सांसारिक माया मोह को दूर हटाकर अपने प्राणेश्वर के हर भाण वसण्ड रूप से दर्शन न करे । इस प्रेम भक्ति और साधना के मूल उत्स का पता लगाने के हेतु हम उन्हीं श्रोतों का अवगाहन करना समीचीन समझते हैं जिनमें माधुर्य भक्ति के तत्त्व स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं। भक्ति समन्वित सर्व प्राचीन ग्रंथ वेदों में भी माधुर्य और प्रेम की अजग सारिता प्रवाहित होती दृष्टिगोचर होती है। वस्तुतः वाज की

१- भक्ति रसामृत सिन्धु - चतुर्थ - प्रेम भक्ति सहरी - १

२- तत्त्वदीप निबन्ध - ज्ञान सागर वम्बई , श्लोक ४६ पृ० १२७

रसोपासना उसी वेदमयी उपासना का विकसित रूप है, जिसे साधकों ने मक्ति की चरम स्थिति की अवस्था में अनुभव किया था। ऋग्वेद का प्रस्तुत मंत्र इसी माधुर्य और प्रेम की प्राचीनता की ओर संकेत करता है :

इमे हिमि ब्रह्म कृतः सुते सखा मधौ न मदा वासते ।

इन्द्रे कार्यं जरि नारी वसूयसो रथे न पादमा दधुः ॥ १

अर्थात् जिस प्रकार मधु मक्सिया शहद का मधुर रस पान करने के लिए उसके चहुँ ओर बैठी रहती है, उसी प्रकार साधक यहाँ अपने इष्टदेव के प्रेम के रसास्वादन हेतु उसमें वस जाने के लिए विकल रहता है।

जिस प्रेम पद्धति का स्वरूप वेदों में उपलब्ध है, शनैः

शनैः उसका विकास उपनिषद् काल में हुआ। उपनिषद् वेदों से पृथक् नहीं अपितु वेदों के ही ज्ञान काण्ड के नाम से प्रख्यात है। उपनिषदों में अनेक स्थानों पर ईश्वर के सच्चिदानन्द और प्रेम स्वरूप का वर्णन है। भगवान् के प्रेम मय रूप का रसास्वादन वही साधक कर सकता है, जो सदैव स्नेह सिंचित मन से उनका स्मरण करता रहे और अपना हृदय उनके रूप में लीन कर दे, तत्पश्चात् ही वह नेत्रों से इष्टदेव का दर्शन करके परम आनन्दमय स्थिति की प्राप्ति कर सकता है :

न संदृशे तिष्ठिति रूपमस्य न चक्षुणा पश्यति कश्चनैनम् ।

हृदा मनीषा मनसामिबलुप्तो य एतद्भिदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ २

बृहदारण्यक उपनिषद् में एक स्थल^३ पर उदाहरण द्वारा ईश्वर प्रेम की दशा

१- ऋग्वेद - ७।३।२

२- कठोपनिषद्- तृतीय वल्ली

३- यज्ञ बृहदारण्यक उपनिषद्- अध्याय ४ ब्राह्मण ३ (२१)

वर्णित की है, ' व्यवहार में जिस प्रकार अपनी प्रिया भार्या का वार्त्तिन करने वाले पुरुष को न बाहर का जान रहना है और न ब्रह्मवर्त्तिक इसी प्रकार पुरुष भी उस प्राज्ञात्मा द्वारा वार्त्तिगित होने पर अर्थात् उसकी अनुभूतियों का विषय ही जाने पर बाह्य विषयों के साथ साथ ब्रह्मवर्त्तिक विषयों से भी अभिज्ञ रहना है। और इस अवस्था में वह परमानन्द की स्थिति को प्राप्त कर लेता है। परमानन्द की स्थिति को प्राप्त करने के हेतु कठोपनिषद् में सत्त्व अग्न्यास पर जोर दिया है।

पुराणों में तो प्रेम का महत्वपूर्ण स्वरूप दिखाई देता है। भागवत पुराण इस दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट है। श्रीकृष्ण की पति रूप में वारा-धना करने का स्पष्ट सन्देश भागवत ने ही दिया है। भगवान् कृष्ण ने कहा है-

‘ मयि निर्वद्धहृदयाः साधवः सपदर्शनाः ।

वशी कुर्वन्ति मां भक्त्या सन्निभैः सत्पत्नि यथा ॥ २

अर्थात् जैसे पतिव्रता स्त्री अपने प्रातिव्रत्य से अच्छे वाचरण करने वाले अपने पति को वशीभूत कर लेती है, उसी प्रकार अपने हृदय के प्रेम से बाँध कर रखने वाली तथा समदृष्टि वाले सज्जन भक्ति द्वारा मुक्त वश में कर लेते हैं। भागवत के दशम स्कन्ध में श्रीकृष्णावनार से लेकर उनकी केलि क्रीड़ाओं के अनेकानेक चित्र दर्शाये गये हैं परन्तु फिर भी भागवतकार ने जलौकिता का दामन नहीं छोड़ा है। यही कारण है कि जब भी उसे सनय भिता है, उसने ऐसे चित्र प्रस्तुत किये हैं जिनसे आभास होता है कि गोपियाँ सदा कृष्ण को देवत्व प्रदान किये

१- यदा पद्मावतिष्ठन्त्ये जानानि मनसा सह ।

बुद्धिश्च न विनेष्टि न तामाहुः परमार्गिणिम् ॥ कठोपनिषद् श्लोक १०
तृतीय वल्ली

२- श्रीमद्भागवत- ६, ४

करती थी, फिर भागवत में प्रेम की ही प्रधानता होने के कारण गोपी भाव को श्रेष्ठतम ठहराया गया है। गोपियों के प्रेम में एक निष्ठा और बल्य अनन्यता है, उनका प्रेम सब ओर से सिमटकर श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों में केन्द्रित हो गया है। ऐसी अवस्था में कृष्ण दर्शन के अभाव में उन्हें एक एक पल युग सम व्यतीत हो तो कोई वाश्चर्य नहीं :

कृति यद् भवानर्हिकाननं,

तुटियुगायते त्वामपश्यताम् ,

कुटिल कुन्तलं श्री मूर्त्तं च ते ,

जड उदीचानां पद्मकृदृक्षाम् ॥ १

अर्थात् है कृष्ण जब दिन के समय तुम बन विहार हेतु चले जाते हो तो तुम्हारे दर्शन के अभाव में हमें एक एक क्षण युग के समान लगता है और जब तुम संध्या समय वापिस आते हो और धुंधराली अलकों से युक्त तुम्हारा सुन्दर मुखारविन्द हम देखती हैं, उस समय पत्तकों का गिरना हमारे लिए भार हो जाता है और ऐसी अवस्था में नेत्रों की पत्तकों का निर्माणक विधाना हमें मूर्त्त जान पड़ता है। गोपियों का प्रेम इतना अधिक परिपक्व होने पर भी महान्म्य ज्ञान से शून्य नहीं, वे इस बात से अनभिज्ञ नहीं कि उनके कृष्ण केवल यशोदानन्दन ही नहीं अपितु समस्त देहधारियों व अन्तरात्मा के साक्षी हैं और ब्रह्मा जी की प्रार्थना पर ही उन्होंने सम्पूर्ण जगत् की रक्षार्थ अवतार धारण किया है। कृष्ण के प्रति इतनी निष्ठा इतनी होने के कारण ही उद्व को भी गोपियों के सम्मुख नत मस्तक होना पड़ता है।

इस प्रकार गोपियों का प्रेम सब ओर से अनाविल सिद्ध होता है। मधुर भाव की भक्ति में यही प्रेम भक्तों का प्राप्य माना

गया है। गोपी भाव के अनिर्बन्ध भागवत में प्रेम के अन्य रूप भी दिखाई देने हैं जैसे भक्तों का दास्य भाव, माता पिता का वात्सल्य भाव और सखाओं का सख्य भाव। परन्तु गोपियों का माधुर्य भाव ही इनमें सर्वोपरि है।

पाँचरात्र संहिताओं में प्रेम का जो रूप दर्शाया गया है, इसमें ईश्वर के स्त्री रूप की उर्वना साधना का आवश्यक अंग थी। शैवा-गम और शाक्त मन्त्रों की साधना पद्धति का वांछित प्रभाव माधुर्य भक्ति के राधा तत्त्व पर लक्षित होता है। शैवों में शिव भक्ति की जैसी कल्पना है और शाक्तों में त्रिपुर सुन्दरी का जो रूप वर्णित हुआ है, उसे राधा भाव गोपी भाव आदि के साथ मिलाकर देखने का आग्रह उनके कृष्ण भक्त करते हैं, युगल तत्त्व या युगल नद भाव के मूल बीज भी शैव और शाक्तों की साधना पद्धति में प्राप्त होते हैं। तन्त्र में कृष्ण को काम बीजात्मक और राधा को रति बीजात्मक कहा गया है। बौद्ध तान्त्रिक साधना, सहजिया साधना, और वैष्णव सहजिया साधना सभी में युगल रूप का वर्णन है जिसे माधुर्य भक्ति में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। तन्त्र में परकीया साधना का जैसा काम लिप्त वर्णन उपलब्ध है, उसे तान्त्रिक साधना से हटाकर माधुर्य भाव के प्रेम का साधन बनाया गया। बौद्ध तान्त्रिक साधना का भी माधुर्य भक्ति के विकास में अप्रत्यक्ष हाथ रहा है। बौद्ध सहजिया सम्प्रदाय भी वास्तव में मधुर भाव का पोषक था।

दक्षिण के आत्मार भक्तों के गीतों में प्रेम और शृंगार की ध्वनि गूँजती है। आत्मारों के लिए प्रेम भक्ति का ही पर्यायवाची है। ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम का उद्घाटन करने वाले आत्मारों के लगभग चार सहस्र गीत बतलाये जाते हैं, जिन्हें नाथ मुनि ने 'नालायार प्रबन्धम्' में संकलित किया गया है। इस प्रबन्ध का सम्मान दक्षिण भारत के वैष्णव समाज में वेदों के

स्तर पर है। जालवार भक्तों में गोदा जाण्डाल (रंग नायकी) का नाम बहुत सुनने में आता है। जाण्डाल की उपासना माधुर्य भाव की थी, वह भगवान् को सदा अपना प्रियतम मानती थी, ठीक गोपियों की भाँति । जालवार भक्तों की माधुर्य भाव की उपासना का प्रभाव श्री सम्प्रदाय पर पड़ा, जिसके फलस्वरूप वागे चलकर भगवान् राम की भी मधुर उपासना प्रारम्भ होगई । भक्ति को प्रेम सम्बन्ध में परिवर्तित कर जालवारों ने मध्य-युगीन भक्त कवियों के लिये वादशं स्थापित किया और इस वादशं को ग्रहण करने वाली तथा कृष्ण भक्ति की रसमयी उपासना का प्राचीन प्रचारक निम्बार्क सम्प्रदाय है। माधुर्य भाव को ग्रहण करने वाले उपर्युक्त भक्तों अतिरिक्त संस्कृत कवि जयदेव ने अपने काव्य 'गीतगोविन्द' में विशुद्ध माधुर्य भाव के प्रेम का निरूपण किया । इस काव्य में शुद्ध शृंगार रस का चित्रण है। कवि ने राधा कृष्ण की रहस्यमयी क्रीड़ाओं को आध्यात्मिक महत्त्व प्रदान किया । श्रीकृष्ण के विषय में, गोपियों के साथ उनकी क्रीड़ा का दृश्य उपस्थित करते हुए कवि ने कहा है :

‘ शिलष्यति कामपि चुम्बति कामपि रमयति कामपि रामाम् ’

अर्थात् किसी का आलिंगन करते हैं, किसी का चुम्बन करते हैं और किसी के साथ रमण भी करते हैं। इस प्रकार के पूर्ण वासनात्मक दिसलाई देने वाले चित्रों में भी हमें प्रेम भाव का कोरा वासनात्मक या कामुकतापूर्ण रूप ही नहीं मिलता अपितु उसका सहज, निश्चल शुद्ध और अलौकिक रूप भी उपलब्ध होता है। इसके उपरान्त मैथिल कोकिल विद्यापति ने राधा कृष्ण के प्रेम का चित्रण लौकिक रूप में किया, परन्तु जयदेव की रचना मध्यकालीन मनोवृत्ति के

इतने अनुकूल सिद्ध हुई कि न केवल वैष्णव भक्त कवियों के लिए, वरन् शुद्ध शृंगार की दृष्टि से काव्य रचना में प्रवृत्त होने वाले कवियों के लिए भी वह आदर्श स्वरूप बन गई। प्रेमिका गोपियों के जिस प्रेम अथवा गोपी भाव को भागवत में महत्त्व प्रदान किया गया है, उसे जयदेव ने राधा भाव में ग्रहण कर और अधिक सौंदर्य प्रदान किया। इसी राधा भाव को वैष्णव भक्तों ने अपनाया। ब्रज मण्डल के लगभग सभी वि सम्प्रदायों के प्रवर्तकों ने राधा कृष्ण की प्रेम सरिता में डुबकी लगाकर स्वयं को कृतार्थ किया।

निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रेम का स्वरूप :

पूर्ववर्ती वैष्णव सम्प्रदायों में निम्बार्क सम्प्रदाय का स्थान अन्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भागवत में कृष्ण और गोपियों की लीलायें सामान्य रूप से वर्णित हैं। वहाँ कई स्थानों पर गोपियाँ स्वयं को कृष्ण की दासी कहती हैं, पर सखी रूप में कृष्ण की सेवा का वर्णन भागवत में उपलब्ध नहीं होता। निम्बार्क ने सखी रूप का महत्त्व वर्णित किया है। उन्होंने सहस्र सखी परिसंविता राधा कृष्ण के ध्यान का उत्तेजकिया है, वे ही सखी भाव की ओर संकेत करने वाले प्रथम वाचार्थ हैं।

इस सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के साथ श्रीराधा को भी उपासना के क्षेत्र में उतनी ही प्रधानता दी गई है। यहाँ राधा के बिना कोई उपासक कृष्ण को प्राप्त करना तो दूर रहा उनका सामीप्य भी नहीं पा सकता। इसी कारण श्री निम्बार्कचार्य जी का मत है कि कृष्ण का प्रेम प्राप्त करने के लिए पहले श्री राधा से विनगी करनी चाहिये, यथा :

मुकुन्दस्त्वया प्रेमढोरेण बद्धः

पत्नीं यथा त्वामनुप्राप्यमाणः ।

उष्णीडयन् हादमेवानुगच्छन् ,

कृपा वर्तते कारयानो मयीष्टिम् ॥ १

अर्थात् हे राधा । तुमने पत्नी की भाँति, अपना अनुकरण करते हुए मुकुन्द को प्रेमरूपी ढोरे से बाँध कर लिया है। वे कृष्ण तुम्हारे साथ क्रीड़ा करते हुए प्रेम का अनुसरण कर विद्यमान रहते हैं, वतः मेरे ऊपर उन कृष्ण की कृपा करावो । राधा कृष्ण का यह प्रेम रसमय और अनन्य है, जो इस सम्प्रदाय में स्वकीया भाव स्वीकार किया गया है। इस प्रेम के वशीभूत हो कृष्ण स्वयं ही राधा राधा रहते रहते हैं।

हरिव्यासदेवाचार्य जी ने शान्त, दास्य, सत्य, वान्सत्य मधुर और उज्ज्वल सभी रसों का उल्लेख करने पर भी मधुर रस का ही महत्व वर्णित किया है।^१ यही कारण है कि उपास्य युगल की मधुर रस की लीलाओं का ध्यान और चिन्तन इस सम्प्रदाय के रसिक भक्तों की आराधना है, क्योंकि राधा कृष्ण की इन लीलाओं का प्रेरक तत्त्व प्रेम ही है। इनके चिन्तन द्वारा भक्त भी प्रेम का अनुभव करते हैं और इसी कारण वे राधा कृष्ण के विहार को महत्ता प्रदान करते हैं। विहार ही भक्तों के साध्य प्रेम की प्राप्ति का एक मात्र उपाय है। राधा कृष्ण का विहार लौकिक रति से सर्वथा भिन्न है, लौकिक रति से देहन्द्रियों को सुख मिलता है, पर राधा कृष्ण प्रेम की प्रेरणा से इस

१- श्री निम्बार्क कृत- राधाष्टक स्तोत्रम् सं० ४

२- युगल शतक : सहज सुख पृ० २८

३- सिद्धान्त कृष्णमणि - श्लोक १०

प्रकार के विहार में व्यस्र होते हैं। राधाकृष्ण का यह विहार मधुर होने के साथ साथ रस प्रदायक है पर इसकी साधना अत्यन्त कठिन है। भाव दशा को प्राप्त करने पर ही इसकी साधना हो सकती है और तभी राधा कृष्ण की रसमयी लीलाओं का प्रत्यक्ष दर्शन सम्भव है। यही भाव दशा प्रेम की सर्वोत्कृष्ट अवस्था है जिसको प्राप्त करने के बाद साधक को कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रहता ।

निम्बार्क सम्प्रदाय की इस रसमयी उगासना का प्रभाव परवर्ती वैष्णवाचार्यों पर पड़ा । परिणामस्वरूप वल्लभ, चैतन्य राधा वल्लभ तथा हरिदासी सम्प्रदाय की मधुर मन्दाकिनी ब्रज में प्रवाहित हो चली ।

वल्लभ सम्प्रदाय में वर्णित प्रेम का स्वरूप :

आचार्य वल्लभ ने भक्ति के दो प्रकार वर्णित किए हैं^१ : मयांदा भक्ति और पुष्टि भक्ति । मयांदा भक्ति साधन सापेक्ष है, जिसमें मजन, पूजन आदि साधनों द्वारा ईश्वर की प्राप्ति बतलाई गई है, परन्तु जो साधन निरपेक्ष होकर केवल ईश्वरानुग्रह मात्र से स्वतः प्रादुर्भूत हो, वह पुष्टि भक्ति या रागात्मिका भक्ति कहलाती है। वल्लभाचार्य जी ने इसी भक्ति को सर्वोच्च कहा है क्योंकि इस भक्ति के द्वारा साधक को परमात्मा के साथ वार्तालाप , गायन तथा रमण आदि करने की योग्यता प्राप्त हो जाती है। परन्तु इस भक्ति का आविर्भाव केवल भगवान् के अनुग्रह से ही हो सकता है। अतः जीव का यही कर्तव्य है कि ईश्वरानुग्रह की सिद्धि हेतु उनकी सेवा एकाग्र निष्ठा व अनन्यता के साथ करे । भगवान् का सत्त्वं निरन्तर ध्यान और निष्ठा ही मुख्य वस्तु है और इस निष्ठा के उत्पादन के लिए अनेक भावों का वाग्राय

लिया जा सकता है।^१ दास्य, सस्य, वान्सत्य और मधुर जिस किसी भाव से सम्भव हो भगवान् का भजन ही जीव का एक मात्र धर्म है।

वल्लभाचार्य जी ने भगवद्गुह की प्राप्ति के लिए भक्त के हृदय में उक्त प्रेम का होना आवश्यक माना है। इस प्रेम के उत्पन्न होने पर ही साधक ईश्वर के वियोग में दुःख अनुभव करेगा, फलस्वरूप उसकी प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील होगा। यही वल्लभाचार्य जी की शुद्ध पुष्टि भक्ति है, जो मधुर साधना का प्रतीक है। इसकी तीन अवस्थायें हैं- स्नेह, वासक्ति और व्यसन। ये तीनों ही अवस्थायें भगवान् के प्रति हमारी भक्ति को दृढ़ता के हेतु आवश्यक मानी गई हैं। व्यसन की अवस्था सर्वश्रेष्ठ है, इसमें साधक स्वयं को विस्मृत कर परमानन्दमय हो जाता है। ऐसी अवस्था में उसे सब ओर जाने उपास्य देव इस स्वरूप ही जान पड़ते हैं। परन्तु इस प्रकार की भक्ति का अधिकार वल्लभ सम्प्रदाय में केवल गोपियों को दिया गया है। गोपियाँ भी यहाँ तीन प्रकार की वर्णित हैं :

१- ब्रजगिना

२- गोपी और

३- गोपांगना

प्रथम प्रकार की गोपियाँ कृष्ण के बालरूप की उपासिका थीं अतः गोपी तथा गोपांगना कृष्ण की आराधना पति भाव से करती थीं, अतः ये दोनों कृष्ण के मधुर रूप की उपासिका थीं।

इन दोनों प्रकार की गोपियों में एक वे कुमारिकायें

थीं जिन्होंने प्रारम्भ से ही कृष्ण का पति भाव से भजन किया था उनके गुणों और रूप माधुरी पर मुग्ध होकर, दूसरी वे विवाहिता गोपियाँ थीं, जिन्होंने पर पुरुष कृष्ण से परकीय रूप में प्रेम किया था। वल्लभ सम्प्रदाय में प्रथम प्रकार की अर्थात् गोपियों का ही प्रेम अधिकारी रूप में वर्णित है। परकीय प्रेम का वहाँ वर्णन अवश्य है पर तन्यल्प मात्रा में। डा० दीन दयाल गुप्त ने कहा है : “ वियोग और संयोग अवस्थाओं में स्त्री रूप को लेकर उन्होंने जो प्रेमानुभूति की है वह बहुधा स्वकीय भाव की ही है। परकीय भाव का व्यवहारीकरण तल्प है।” राधा को कृष्ण की आनन्दान्तरिक शक्ति स्वीकार करते हुए वल्लभ सम्प्रदाय में उन्हें अनन्यपूर्वक स्वकीया नायिका ही माना गया है। नन्ददास के “स्याम सगाई” ग्रंथ में राधा का स्वकीयान्व स्पष्ट लक्षण है।

‘ सुनत सगाई स्याम खाल सब आनि फूले ,
 नाचत गावत चले, प्रेमस में अनुकूले ।
 जगुमनि रानी घर सज्यौ, मोलनि चौक पुराइ ,
 कजलि बघाई नन्द के, नन्ददास बलि जाइ ।
 कि जोरी सोहनी ।। २

वल्लभ सम्प्रदाय के तन्य भक्तों ने भी राधा को कृष्ण की दुलहिन के रूप में चित्रित किया है। गोपियाँ आदि भी वहाँ राधा का ही स्वरूप स्वीकृत हैं। यही कारण है कि राधा के समान गोपियों के भी

१- अष्टशाप और वल्लभ सम्प्रदाय- डा० दीनदयालु गुप्त - पृ० ६२३

२- स्याम सगाई - नन्ददास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- पृ० १२२ पद २८

दो रूप स्वीकार किये गए हैं। " प्रथम ईश्वर की आनन्द और सृष्टि कारिणी शक्ति का रूप, द्वितीय कान्ता भाव से ईश्वर की भक्ति करने वाले अनन्य भक्तों का रूप । कान्ता भाव को वल्लभ सम्प्रदाय में अत्यन्त महत्त्व प्रदान किया गया है। वल्लभाचार्य जी का मत है कि कृष्ण के नित्य रास में स्त्रियाँ या स्त्री भाव को धारण करने वाले पुरुष ही प्रवेश पा सकते हैं।

अतः स्पष्ट है कि वल्लभ सम्प्रदाय में मधुर भाव की उपासना को वाञ्छित मत्त्व प्राप्त हुआ। इस प्रकार की उपासना में भक्त राधा और कृष्ण तथा गोपी और कृष्ण की प्रेम लीलाओं का गान करता है। लीला को आचार्य वल्लभ ने विलास की इच्छा का नाम प्रदान किया है। राधा कृष्ण की इन लीलाओं का गान करता हुआ उपासक जब तक गोपी भाव को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक इन्हीं में संलग्न रहता है। इस उपासना का आधार भूत तत्त्व प्रेम है। राधा कृष्ण की लीलाएँ तो कृष्ण प्रेम प्राप्ति का साधन मात्र हैं। क्योंकि ये लीलाएँ प्रेम प्रकाशन के हेतु ही हैं। गोपियों और कृष्ण की लीलाएँ यों तो काम भावना से पूर्ण लक्षित होती हैं पर वे काम रहित स्वीकार की गई हैं। इसका कारण यह है कि उनकी उपासना बलौकिक थी। निष्काम भाव से कृष्ण की उपासना कर उन्होंने अपने लौकिक काम का ध्वंस कर डाला था। सत्य भी है यदि गोपियों का काम लौकिक होता, तब तो उसके पूर्ण होने पर सृष्टि उद्भूत होता। परन्तु ऐसा न होकर उस मधुर भक्ति के द्वारा वे सार्वत्रिक मोह पाश से मुक्ति पा गई थीं। स्वयं आचार्य वल्लभ ने एक स्थान पर स्वीकार किया है कि रास लीला काम पोषक होने

१- अष्टकाप और वल्लभ सम्प्रदाय- ले० दीन दयालु गुप्त - पृ० ५०६

२-

22

24

६२३

३- सुलोधिनी (भागवत तृतीय स्कन्ध) वल्लभाचार्य

पर भी वस्तु:करण के सभी दोषों को दूर करने वाली हैं। गोपियों का कृष्ण के साथ इस काम रहित रमण का उद्देश्य है प्रेम प्रकाशन। गोपी और कृष्ण की क्रीड़ायें संयोग और वियोग दोनों पदार्थों में लक्षित होती हैं। संयोग व पदा की लीलाओं के अन्तर्गत दानलीला, जल विहार, वन विहार आदि समाविष्ट हैं।

वियोग पदा के लिए आचार्य बल्लभ ने स्वयं कहा है :

“ यद्गदुःखं यशोदाया नन्ददादीनां च गोकुले ।

गोपिकानां च यद्गदुःखं नन्दगदुःखं स्यात्प्रमदवच्चिन् ।। २

अर्थात् मेरे हृदय में यशोदा, नन्द तथा गोप और गोपियों के समान विरह वेदना उत्पन्न हो ।

प्रेम में विरह का स्थान महत्वपूर्ण है क्योंकि प्रेम की तीव्रता प्रिय के प्रति विशेष आकर्षण, उसके अभाव में उससे मिलने की उत्कट अभिलाषा आदि भावों का विरह में प्रादुर्भाव होता है। नन्ददास जी ने चार प्रकार का विरह वर्णित किया है प्रत्यदा, फलान्तर, वनान्तर और देशान्तर। नन्ददास जी का प्रत्येक ग्रंथ प्रेम भक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है। कृष्ण प्रेम ही कवि की दृष्टि जान पड़ता है। इसी प्रेम में उसे प्रेम भक्ति कहा है :

“ जो वह लीला गावे चित्त दे सुने सुनावे ।

प्रेम भगति सो पावे वरु सबके मन भावे । ” ३

१- भागवत पर सुबोधिनी टीका- रास प्रकरण - १०।३१।१४

२- गोदृश ग्रंथ- बल्लभ निरोध लक्षणा १

३- नन्ददास ग्रंथावली पृ० २४

प्रेम भक्ति को कवि ने साधन और साध्य दोनों माना है कारण रास लीला के गान, भवण व कीर्तन से उसकी उपलब्धि होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वल्लभ सम्प्रदाय में साधक राधा कृष्ण की लीलाओं का निरन्तर स्मरण करता रहता है, स्मरण करते २ जब वह आत्म विभोर हो जाता है तभी वह उनकी मधुर लीलाओं का वास्वादन कर सकता है और यह अवस्था तभी सम्भव है जब वह स्त्री भाव प्राप्त करे। स्त्री भाव धारण किये बिना साधक राधा कृष्ण की लीलाओं में तादात्म्य स्थापित नहीं कर सकता और इस प्रकार वह उनके मधुर प्रेमास्वादन से वंचित ही रहता है।

चैतन्य सम्प्रदाय के प्रेम का स्वरूप :

चैतन्य सम्प्रदाय की भक्ति में रस सिद्धान्त को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है। इस विषय में रूप गोस्वामी जी का ग्रंथ 'भक्ति रसामृत सिन्धु' भक्ति रस का सर्गोपाग विवेचन प्रस्तुत करता है। उन्होंने उस अनिवर्तनीय राग विशेष को भक्ति माना है, जिसे मक्त जन भगवान् का मजन करते हुए उनके चरणों के माधुर्य द्वारा उपलब्ध करते हैं :

राग बन्धन केनापि तं मजन्तो ब्रजन्त्यमी ।

बह० श्रिपद्मसुधाः प्रेरुपास्तस्य प्रिया जगः ॥ १

रूपगोस्वामी जी के अतिरिक्त जीव गोस्वामी जी तथा कृष्ण राज कविराज ने भी भक्ति को रस रूप ठहराया। उन्होंने अपनी भक्ति सन्दर्भ में इसकी व्याख्या इस प्रकार की है कि जिस प्रकार विषयी पुरुषों को स्वभाववश ही विषय संसर्ग की लुब्धा होती है एवं जलों को सौंदर्य के प्रति तथा कर्णों को मधुर राग

१- भक्ति रसामृत सिन्धु - पूर्व विभागे द्वितीया, साधन भक्ति लहरी श्लोक ८५

के प्रति वाकर्षण होता है, उसी प्रकार भक्त को जब श्री भगवान् में वाकर्षण या वृष्णा उत्पन्न हो जाती है तो उसे "रागानुगा" कहते हैं। "कृष्णादास कविराज" ने भी इस प्रकार की रागानुगा या मधुर भाव की भक्ति को सर्वश्रेष्ठ कहा है जिसके वश में स्वयं श्रीकृष्ण हैं :

परिपूर्ण कृष्ण प्राप्ति रह प्रेम हैते ।

रह प्रीतिवश कृष्ण कहे भागवते ॥ २

इस प्रकार चैतन्य सम्प्रदाय में मधुर रस पूर्ण भक्ति ही सर्वत्र स्वीकृत है। कारण इस भाव में संकोच, मर्यादा और परत्व की भावनायें पूर्णरूपेण लुप्त हो जाती हैं। "स्व" का वास्तव्य कृष्ण सुख देना में विलीन हो जाता है। यह अनुराग लौकिक दाम्पत्य्य रति से सर्वथा पृथक् है। इसमें किसी भी प्रकार के स्वार्थ, जर्हकार की गन्ध नहीं। ईश्वर के प्रति यह अलौकिक प्रेम है, अतएव गौणीय वैष्णव रस सिद्धान्त में मधुर रस को सर्वोपरि स्थान दिया गया है तथा शान्त रस को निकृष्ट ठहराया गया। सच्चिदानन्द कृष्ण के प्रति यह प्रेम अष्टांगिक मार्ग से होकर महाभाव की चरम अवस्था को प्राप्त कर लेता है, ये अष्टांगिक मार्ग क्रमशः इस प्रकार हैं :

१- रति

२- प्रेम

३- स्नेह

४- मान

५- प्रणय

१- तत्र विषयिणः स्वाभाविको विषयसंनिष्ठाभयः प्रेमरागः यथा चक्षुरादीनां सौन्दर्यादीनां तादृशा एवात्र भक्तस्य श्री भगवत्यपि राग इत्युच्यते ॥

- जीव गीस्वामी कृत भक्ति रत्न सन्दर्भ

२- चैतन्य चरितामृत २।८। ६६ कृष्णादास कवि राज

६- राग

७- अनुराग तथा

८- महाभाव

साधन भक्ति हृदये हय रतिर उदय ,
रति गाढ़ हैले तार प्रेम नाम कय
प्रेम वृद्धि क्रमे नाम स्नेह, मान, प्रणय,
राग, अनुराग भाव महाभाव हय ॥ १

और इस महाभाव की साकार मूर्तिराधा हैं क्योंकि रसमयी उपासना की वे ही कारण हैं। कृष्ण के प्रति राधा का प्रेम अपूर्व है। कृष्ण भी इस प्रेम के वशीभूत हैं। यही कारण है राधा की प्रसन्नता को ही कृष्ण की प्रसन्नता मानकर वैतन्य सम्प्रदाय का भक्त उपासना में अग्रसर होता है। महाभाव स्वरूपा राधा के सौंदर्य रस सागर में डुबकी लगाकर साधक उन्हीं भावनस्वरूपा राधा के लिए इस सम्प्रदाय में अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है। राधा कृष्ण की वाहलादिनी शक्ति है। इन्हीं वाहलादिनी शक्ति का सार प्रेम है, प्रेम का सार भाव और भाव की पराकाष्ठा ही महाभाव है। महाभाव स्वरूपा श्री राधा ठकुरानी हैं जो सर्वगुणों की तानि और कृष्ण कान्ताजों में शिरोमणि हैं। उनका चित, इन्द्रियों और स्वरूप सभी कृष्ण प्रेम से पूर्ण हैं। वे श्रीकृष्ण की निज शक्ति हैं और उनकी क्रीड़ाजों में सहायिका हैं :

ह्लादिनीर सार प्रेम, प्रेम सार भाव, भाविर परम काष्ठा नाम
महाभाव ।

महाभाव स्वरूपा श्री राधा ठकुरानी, सर्वगुण तानि कृष्णकान्ता
शिरोमणि ।

कृष्ण प्रेम मावित जार चित्तेन्द्रिय काय, कृष्ण निज शक्ति राधा

क्रीड़ा सहाय ॥ १

कृष्ण कान्ताओं के लक्ष्मीगण, महिषीगण और ब्रजगिना तीन वर्ग हैं। इन तीनों में प्रेम की तीव्रता के आधार पर ब्रजगिनार्यै श्रेष्ठ मानी गई हैं पर राधा इस ब्रजगिनाओं में भी शिरोमणि हैं वनः राधा और कृष्ण का प्रेम इस सम्प्रदाय में प्रमुख स्थान रखता है ।

राधा और कृष्ण के बाद चैतन्य मत में गोपियों का स्थान है। यहाँ कृष्ण और गोपियों का प्रेम रागानुगा भक्ति पर आधारित है। गोपियों के लिए कृष्ण सुख ही सर्वस्व है। यही कारण है कि इस सम्प्रदाय में साधारणरूढ़ि, समन्वयता, और समर्था रति को तीन प्रकार की मान कर समर्था रति को श्रेष्ठ माना है क्योंकि इसमें अपने स्वार्थ की गंध भी नहीं रहती, उपासक भक्त भगवान् के ही सुख और सेवा का ध्यान रखता है और उस प्रकार की रति के लिए वहाँ गोपियों का उदाहरण दिया गया है^१ गो-पियाँ "त्वदीया भाव" (तू ही कृष्ण है) और "मदीया भाव" (कृष्ण मेरे हैं) इन दो भावों के आधार पर कृष्ण से प्रेम और उनकी वाराधना करती हैं। गोपियों का प्रेम ही इस भक्ति का चरम उदाहरण है। देवर्षि नारद ने भी "तथाहि ब्रजगोपिकांश्च" कहकर अपने भक्ति सूत्र में गोपियों के प्रेम को ही उत्कृष्ट प्रेम की संज्ञा प्रदान की है ।

चैतन्य मत में प्रेम की तीव्रता प्रकट करने के लिए परकीयाप्त का समावेश किया गया है। वाचार्यों और भक्तों का विश्वास है

१- चैतन्य चरितामृत - कृष्णदास कविराज- आदिलीला - परि० ४

२- भागवत सम्प्रदाय - ले० बलदेव उपाध्याय पृ० ५२७

कि प्रेम की जितनी मर्मस्पर्शिनी अभिव्यक्ति परकीया भाव में ही सकती है उतनी स्वकीया में नहीं। परकीया भाव में मिलन हेतु अनेकानेक विघ्न बाधाओं के अतिक्रमण के कारण उत्कण्ठाक्षिय और प्रेम रस के उदीपन का अधिक अवसर मिलता है अतः परकीया भाव ही मधुर रस का परम उत्कर्ष है। शृंगार का चिद्व्यापार एक रहस्यमणि की माला के समान है, जो उसमें परकीय मधुर रस को उस मणिमाला में कौस्तुभ विशेष मानना चाहिये^१। जीव गोस्वामी जी ने भी स्वकीय की अपेक्षा परकीया भाव में रस का परम उत्कर्ष स्वीकार किया है^२ परन्तु यह परकीया भाव केवल ब्रज की गोप वधूओं में ही सम्भव है और ब्रजधाम के अनिरिक्त अन्य कहीं परकीया लीला का अस्तित्व नहीं :

‘ परकीया भावे अत्रि रसैर उत्लास ब्रज बिना इहार अन्यत्र नाहि वास ।

ब्रज वधू गणैर बह भाव निखधि तार मध्ये श्री राधाभावेर अवधि ॥ ३

अतः चैतन्य सम्प्रदाय में परकीया भाव को ‘ रसैर उत्लास ’ कहा गया है। रागानुगा भक्ति की मान्यता होने पर भी इस सम्प्रदाय में परकीया भाव की स्वीकृति है। रागानुगा भक्ति का एक मात्र आधार प्रेम है जिसमें शास्त्रों और श्रुतियों के बन्धन भी मान्य नहीं। कवि ‘ कर्णपूर ने अपने चैतन्य चन्द्रोदय’ नामक नाटक में रागानुगा भक्ति और प्रेम का सम्बन्ध स्थापित करने हुए कहा है :

“ रागानुगा भक्ति प्रेम का अवलम्ब प्राप्त कर बहने वाली वह वेगवती है जो किसी प्रकार बन्धन स्वीकार न करके, जो कुछ भी उसके सम्मुख आता है उसे प्रताड़ित कर ले जाती है। ” और इस प्रकार

१- मीरा की प्रेम साधना- डा० भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र माधव - पृ० ८२

२- अत्र परमीकर्षः शृंगारस्य प्रतिष्ठितः ॥ - उज्ज्वलनीलमणि- रूपगोस्वामी

३- चैतन्यचरितकण्ठमुक्त - कृष्णदास कविराज- जादिलीला परि० ४

४- चैतन्य चन्द्रोदय - कर्णपूर - द्वितीय अंक - श्लोक १६, २०

की भक्ति का अधिकारी केवल वही व्यक्ति ही सकता है जो ब्रजवासियों की प्रेम भावना को प्राप्त करने का प्रयास करे। अतः रागातुगा भक्ति मान्य होने के कारण ही परकीया प्रेम वेदविहित मार्ग के प्रतिकूल होने पर भी इस सम्प्रदाय में स्वीकृत है।

चैतन्य सम्प्रदाय में उसी भाव को प्रेम माना है जो :

‘ सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंस कारणं ।

यद् भाव बन्धनं मूलोः सप्रेम परिकीर्तितः ॥ १

अर्थात् ऐसे दो व्यक्तियों का भाव बन्धन ही प्रेम कहलाता है, जो नाश का कारण उपस्थित होने पर भी नष्ट नहीं होता।

चैतन्य सम्प्रदाय में प्रेम और काम में अन्तर स्वीकार किया गया है क्योंकि जहाँ प्रेम में मत्त अपना सुख भगवान् के सुख में पर्यवसित कर देता है, वहाँ काम में व्यक्ति स्वसुख हेतु ही प्रयत्नशील रहता है। कृष्ण रूप सखी के (कृष्ण ही सखी के वेश में) पड़ने पर श्री राधा उनसे प्रेम और काम का अन्तर स्पष्ट करते हुए कहती है :

‘ प्रेमाहि काम इव मानि वहिः कदाचि-

तेनामिर्तं प्रियतमः सुखमेव विन्देत् ।

प्रेमेव कुत्रचिद्वैद्यत एव कामः ।

कृष्णस्तु तत् परिचिनोति कलात् कलावान् ॥ २

अर्थात् प्रेम ही सभी कभी काम के समान बाहर दिखाई पड़ने लगता है और

१- उज्ज्वलनीलिमणि- रूपगीस्वामी - श्लोक ॥ ५७

२- प्रेम सम्पुट- विश्वनाथ चक्रवर्ती- श्लोक ५८ पृ० २६

प्यार श्रीकृष्ण इससे अपार आनन्द की प्राप्ति करते हैं, परन्तु कभी कभी यही काम किसी जन में प्रेम के समान दृष्टिगोचर होता है और केवल कलावान् श्रीकृष्ण ही इससे परिचित रहते हैं। अतः कृष्ण सुख की उपलब्धि हेतु किया गया यत्न प्रेम ही श्रेणी में और स्वसुख या किसी अन्य जन के लिये किया गया प्रयत्न काम के अन्तर्गत आता है। चैतन्य सम्प्रदाय की रागानुगा भक्ति का प्राण जो प्रेम है वह नितान्त शुद्ध एवं आत्म समर्पण के भाव से युक्त है। अगर यह कहें कि इस शुद्ध और उज्ज्वल प्रेम प्राप्ति का साधन होने के फलस्वरूप ही रागानुगा भक्ति इतनी महत्वपूर्ण है तो अतिशयोक्ति न होगी।

राधावल्लभीय सम्प्रदाय के प्रेम का स्वरूप :

राधावल्लभीय सम्प्रदाय में स्वीकृत प्रेम का स्वरूप अन्य वैष्णव सम्प्रदायों की अपेक्षा विचित्र और मोहक है। इस सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण को नित्य माना गया है। राधा और कृष्ण हो नहीं अपितु यहाँ नित्य विहार के सभी विधायक तत्त्व नित्य हैं, जैसे ब्रज, सहचरि, आनन्द, विहार और झुंगार और ये विधायक तत्त्व राधा कृष्ण की विहार लीलाओं में सहायक इस रूप तथा प्रेम रूप हैं: उदाहरणार्थ -

‘गौर श्याम सहचरि विभिन्न सम्पत्ति नित्य विहार,
अन्तरंग सौँ प्राट है हित के नैन निहार ॥ १

राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा ही इष्टदेवी और आराध्या के रूप में स्मरण की जाती है। यही कारण है साधक सर्वप्रथम राधा के चरणों में अनुराग करते हुए उनके उस अद्भुत रूप दर्शन की कामना करते हैं।

१- सुधर्म बोधिनी - लाइलीदास जी पृ० २

जिसमें प्रेम, रस, सौंदर्य, लावण्य और केलि की मधुरिमा व्याप्तही । राधा वल्लभ सम्प्रदाय के संस्थापक श्री हित हरिवंश जी श्रीराधा को अपना इष्ट मानकर उनकी वाराधना करते हुए कहते हैं :

‘ ईशानी च शची महासुखनुः शक्तिः स्वतन्त्रा परा ।

श्री वृन्दावननाथपद्महिणी राधैव सेव्या मम ॥ १

अर्थात् राधा महासुखरूपा तथा स्वतन्त्रपरा शक्ति हैं। वृन्दावन नाथ श्रीकृष्ण की पट्ट महिणी राधा ही मेरी सेव्या हैं, अन्य कोई नहीं । राधा की शक्ति में तो भक्त इतना तन्मय है कि यदि राधा मधुर रसास्वाद के हेतु उसे अपने प्रियतम (कृष्ण) को भी दे दें, तो भी वह अपनी स्वामिनी राधा को विस्मृत नहीं कर पायेगा ।

परम पावन प्रेम लीला की एक मात्र उत्पत्ति स्थल श्रीराधा में भक्त जनों की निरन्तर ऐसी ही प्रीति रहती है। नित्य विहार के दूसरे विधायक तत्त्व भगवान् श्रीकृष्ण हैं। इस सम्प्रदाय के कृष्ण केवल वृन्दावन में ही दृष्टिगोचर होते हैं अन्यत्र नहीं, जिसका वर्णन करने में श्रुति शिरो-भाग (उपनिषद्) भी असमर्थ हैं जो शिव, शुक आदि के लिए भी क्लाम्य है, जो प्रेमाभूत माधुरी से युक्त और नित्य किशोर हैं, उस कृष्ण की रूप सुधा पान के हेतु साधक के नेत्र सदैव चंचल रहते हैं :

‘ यद्वृन्दावन मात्र गोचर महो यन्मनुर्लोक शिरो -

प्यारोर्ह दामने न यच्छिव शुकादीनां तु यद् यानगम् ।

१- राधासुधानिधि- हितहरिवंश जी- श्लोक ७८

२- ,, ,, ,, ८७

बत्प्रिमाभूत माधुरी रसमयं यन्नित्यं कैशोरकं,
तदूर्पं परिवेष्टुमेव नयनं लोलायमानं मम ॥ १

श्रुति, शिव तथा शुक वादि के लिये भी अप्राप्य श्री कृष्ण भक्तों के हेतु रस धन हैं। ये ही कृष्ण प्रेम के वश में होकर राधा के चरणों पर लोटते हैं, उनकी प्रसन्नता के लिये पत्कों के पाँवड़े बिखारते हैं, एवं उनके सभी कर्माँ की सेवा करके सुख प्राप्त करते हैं :

‘जहाँ जहाँ राधा प्यारी धरति चरन पिय,
वहाँ वहाँ नैननि के पाँवड़े बनावहीं
महाप्रेम रंग रंग तिनही के प्यार फी,
सेवा सब कर्माँ की करें सब पावहीं ॥ २

नित्य विहार के तृतीय विधायक तत्त्व सहचरी हैं। ये केवल नित्य विहार में ही योग नहीं देती अपितु युगल कृष्ण की सब प्रकार से सेवा करके स्वयं को कृतकृत्य मानती हैं। जैसे तलिता वादि सखियाँ। एक बार श्रीकृष्ण मधुर रस के आस्वादन हेतु नित्य निकुंज पहुँचे, वहाँ वहाँ होने लगी। सघन कुंज के द्वार पर प्यारी के साथ लड़े लड़े दोनों के वस्त्र भीग गये, किन्तु रस दान हेतु दोनों वहाँ से हटे नहीं। श्री तलिता जी उनके सौंदर्य रस से भीगकर दोनों को वहाँ से बचाने का प्रयास करती हैं।

नित्य विहार का अन्तिम विधायक तत्त्व वृन्दावन है, जिसे कृष्ण धाम होने के कारण वैष्णव भक्तों ने गोलोक और वैकुण्ठ से भी

१- राधासुधानिधि- हित हरिवंश, श्लोक ७६

२- बयालीस लीला- भजन सुतिय श्रुतला- पृ० १०६- ध्रुवदास

३- स्फुटवाणी- हितहरिवंश जी - पृ० १५

बढ़कर माना है। नित्य विहार से व्यंजित प्रेम ही इस सम्प्रदाय में पूर्णता को प्राप्त माना जाता है। प्रेम की वही स्थिति यहाँ स्पृहणीय मानी जाती है जो विरह मिलन की संकीर्ण सीमाओं में बाध न हो। विरह मिलन की यह अद्भुत स्थिति अन्य किसी सम्प्रदाय में दिखाई नहीं देती। यहाँ पर प्रेमी और प्रियतम पल भर को भी एक दूसरे से पृथक् नहीं होते, परन्तु फिर भी विरह सदृश अदृष्टि का अनुभव करते हैं। यह विरह सूक्ष्मविरह की कोटि में जाता है, एवं प्रेम को नित्य और मधुर बनाये रखने के लिए ही इस सम्प्रदाय में इस प्रकार की सृष्टि की गई है। इस प्रकार के विरह से तात्पर्य है कि नित्य विहार में मिलन तो होता है पर प्रेमाधिक्य के कारण संयोग में भी उन्हें यही अनुभव होता है कि हम पूर्ण रूप से मिले नहीं। कः राधा कृष्ण यहाँ मिलन और विरह की अनुभूति एक साथ ही करते हैं। इस विरह को बचटपटी प्रकार का ठहराकर श्री ध्रुवदास जी ने इसकी विलक्षण स्थिति पर विचार करते हुए कहा है :

‘बचटपटी भाँति का विरह भूलि रह्यो सब कोइ ।

जल पीवत है प्यास को प्यास भयो जल सोइ ॥ १

श्री बलदेव उपाध्याय ने राधावल्लभीय प्रेम और विरह के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है, ‘प्रेम विरहा ही राधावल्लभीय पद्धति का सार है। मिलने में भी विरह जैसी उत्कण्ठा इसका प्राण है। युगल किशोर श्री राधा-वल्लभलाल के नित्य मिलन में वियोग की कल्पना तक नहीं है। परन्तु इस मिलन में प्रेम की क्षीणता नहीं, प्रत्युत प्रणिधान नूतनता का स्वाद है, चाह तथा बचटपटी है। प्रेमासव का अनवरत पान करने पर भी अदृष्टि रूपी महान् विरह की छाया सदा बनी रहती है, प्रतीत होता है :

१- रहस्यमयी लीला - पृ० १८७ - श्री ध्रुवदास जी

“ मिलेहि रहत मानों कबहुँ मिले ना ” १

इस प्रकार यह प्रेम मिलन की नित्यता स्वीकार करते हुए भी सूक्ष्म विरह से युक्त है जो अन्य सम्प्रदायों से सर्वथा नूतन व पृथक् है।

राधावल्लभीय प्रेम का सिद्धान्त है उसमें सन्तुष्ट भाव का होना अर्थात् राधा और कृष्ण की चेष्टायें स्वयं के लिए^{नहीं} बल्कि एक दूसरे के लिए हुवा करती हैं। वे अपनी परितुष्टि के लिए प्रयत्नशील न होकर दूसरे के परितोष के लिए ही वात्स्य समर्पण करते हैं, और फिर स्वयं भी शान्ति लाभ करते हैं,

“ जोई जोई प्यारी करे, सो मोहि मावै ”^२

इहे इस सम्प्रदाय के प्रेम सिद्धान्त का मूल है।

राधा वल्लभ सम्प्रदाय में प्रेम की अनन्यता ही प्रेम का प्राण और प्रेमी का जीवन है। श्री हितहरिवंश जी ने अनन्यता को धर्म का वाधार स्वीकार किया है, और श्री व्यास जी ने उसे प्रेम मार्ग के हेतु अन्या-वश्यक ठहराया है। उनका कथन है कि यद्यपि अन्य व्रत का निर्वाह तत्काल की धार पर चलने के सदृश कठिन है, फिर भी इसके बिना प्रेमी भक्त बनने का अधिकार ही नहीं प्राप्त होता ।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में प्रेम के साथ नेम का भी स्थान है। पर वही नेम इस सम्प्रदाय में ग्राह्य है जो प्रेम प्राप्ति में साध्य हो, यही कारण है कि जागन्मिक विधि विधान अर्थात् जप, तप और यज्ञ इसके अन्तर्गत नहीं आते । इसके अन्तर्गत तो प्रिया, प्रियम की विविध केलि झीझार मान,

१- भागवत सम्प्रदाय- बलदेव उपाध्याय- पृ० १८७

२- हित चौरासी पद सं० १ हित हरिवंश जी

३- व्यास वाणी- पूर्वाह्न पद सं० १७५

विरह और पित्तन वादि ही जाते हैं क्योंकि ये सब प्रेम की प्राप्ति और वृद्धि में सहायक हैं।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में प्रेम के साथ २ काम का भी स्थान है पर वह काम लौकिक वासना जन्म काम न होकर प्रेम मार्ग में प्रेरक भाव है, जिससे नित्य दिहार में प्रेम वास्वाय बन जाता है। राधावल्लभीय मक्तों के प्रेम और काम सम्बन्धी विचार निम्बार्क और चैतन्य सम्प्रदायमुयायियों से भिन्न नहीं। राधा कृष्ण प्रेम को निष्काम प्रेम भी कहा गया है, यद्यपि यह निष्काम भाव वाध्यात्मिक दृष्टि से ही सम्पन्न होता है, लोक में यह दिसाई नहीं देता, संसार में तो सकामता ही दिसाई देती है :

‘दुःख की मूल सकामता सुख की मूल निष्काम ।

विरह वियोग तहाँ न कहूँ रस मैं हूँ सुख घाम ॥ १

इस प्रकार के प्रेम में दीनता का होना भी परमावश्यक है। प्रेमी में जितना दीनता का बाधित्य होगा, उसका प्रेम उतना ही उच्च कोटि का होगा। प्रेम को उच्च और दृढ़ बनार रसने के हेतु सत्संग भी आवश्यक है। साधक को प्रेम प्राप्ति के लिए वृन्दावन वास कर रसिक मक्तों का संग करना चाहिये। इस सत्संग से उसे राधाकृष्ण की रास लीलाओं के श्रवण का सुकवसर मिलेगा एवं धीरे धीरे उनमें उसकी रुचि बढ़ेगी। यही रुचि प्रेम का केंद्र है, जिसे साधक को नाम, जप, लीला, स्मरण वादि से पुष्ट करना चाहिये।

वतः राधावल्लभ सम्प्रदाय में व्यंजित प्रेम का स्वरूप

१- हृवदास कृत- व्यालीस लीला - पृ० सं० २४१

वर्तमान स्पष्ट है। यह प्रेम अनन्य व एक रस है। निम्बार्क तथा चैतन्य सम्प्रदायों में श्रीकृष्ण की उपासना क्रमशः स्वकीया एवं परकीया भाव से की जाती है। वल्लभ सम्प्रदाय में गोपियों के विरह की स्थिति को ही उत्कर्ष प्रेम की स्थिति स्वीकार किया गया है पर राधावल्लभीय सम्प्रदाय में प्रेम को स्थायी, अनन्य व एकरस रहने के लिये प्रेम की वही स्थिति श्लाघ्य मानी जाती है जिसमें स्वकीया परकीया का ज्ञान ही न हो। कारण स्वकीया में मिलन है, विरह नहीं और परकीया में विरह है मिलन का सम्पूर्ण सुख नहीं वतः दोनों ही भाव अपूर्ण हैं। वतः स्वकीया परकीया भाव से परे नित्य मिलन की अवस्था का प्रेम ही यहाँ स्वीकृत है। यही इस प्रेम की विशेषता है। साधक को सखी भाव धारण कर नित्य मिलन में लीन राधा कृष्ण की सेवा करनी चाहिए। गो० हित हरिवंश जी ने सखी की सेवा विभिन्न प्रकार की मानी है। उनके अनुसार सभी सखी काम केलि की उत्कण्ठा से पूर्ण कुँज की ओर प्रस्थान करती हुई। राधा के पीछे सकेत कुँज का लक्ष्य करती हुई जाती हैं, और कभी विहार के उपयुक्त चन्दन, गन्ध आदि सामग्री लाकर राधा के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। सखी भाव साधकों को सख्य में ही नहीं प्राप्त होता, इस भाव की साधन हेतु उन्हें पूर्ण वैराग्य अपेक्षित है। शारीरिक वैराग्य की अपेक्षा मानसिक वैराग्य ही अधिक मान्य है।

इस प्रकार राधावल्लभीय प्रेम शुद्ध एवं सात्विक है।

श्री बलदेव उपाध्याय जी ने इस प्रेम के विषय में कहा है, स्वकीया, परकीया विरह मिलन एवं स्वपर भेद रहित नित्य विहार रस ही श्री हित महाप्रभु का इष्ट तत्त्व है।^२

१- राधा सुधानिधि- हित हरिवंश जी, श्लोक २२

२- श्री बलदेव उपाध्याय कृत- भागवत सम्प्रदाय- पृ० ४४०

हरिदासी सम्प्रदाय के प्रेम का स्वरूप :

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी थे । ये निम्बार्क साधना पद्धति के ही समर्थक थे , परन्तु गोपी भाव को ही ईश्वर प्राप्ति का एक मात्र उन्नत साधन स्वीकार कर इन्होंने हरिदासी सम्प्रदाय नाम से स्वतन्त्र मत की प्रतिष्ठा की । राधा कृष्ण की पारस्परिक मधुर लीलाओं में लग्न रहना ही इस सम्प्रदाय की विशेषता है। यहाँ राधा कृष्ण का पारस्परिक प्रेम स्वकीया और परकीया भाव से परे नित्य विहारी भाव का स्वीकार किया गया है। इसका कारण इस सम्प्रदाय के अनुयायी भगवत् रसिक जी ने बताया है कि स्वकीया और परकीया शब्द लौकिक प्रेम के सूचक हैं। राधा कृष्ण का प्रेम यहाँ तलौकिक स्वीकार किया गया है। राधा कृष्ण भक्तों पर अपना प्रेम प्रकट करने के हेतु ही परस्पर लीला विहार में लगे रहते हैं । भगवत् रसिक जी की निम्न वाणी में प्रेम की तलौकिकता द्रष्टव्य है :

‘ कोउ सुकिया कोउ परकीया, कलप किर मतवादि
जोरी भगवत् रसिक की नित्य अनन्त जनादि ॥
नित्य अनन्त जनादि लोक से रीति विलक्षण ।
श्रुति स्मृति विलगाय देसि अनुभव के जडाण
सहन प्रेम माधुर्य रहन कुरागे दोउ ॥ १

इस तलौकिक प्रेम को वास्वाय बनाने के हेतु राधा कृष्ण के विहार में काम चैष्टाओं को भी अपनाया गया है पर ये काम चैष्टायें प्रेम की वृद्धि में साधन मात्र हैं, साध्य नहीं । कामयुक्त रसि में रस की स्थिति

वादि, मध्य और वन्त में समान न रहकर परिवर्तित होती रहती है, पर नित्य विहार में रसधार समान रहती है श्री बिहारिन्देव के अनुसार :

‘ श्री बिहारिन्देव की स्वामिनि रसिक शिरोमणि ।

वादि, मध्य, वन्त एक रस सम्पत्ति सुरति निबन्धी ॥ १

लौकिक प्रेम में जिस मान और विरह की स्थिति स्वीकार की गई है, वह नित्य विहार में मान्य नहीं, क्योंकि यहाँ राधा कृष्ण सदैव संयोगावस्था में रहते हैं। वन्तः स्थूल मान, विरह वादि के लिए वहाँ स्थान नहीं। सदैव संयोगावस्था में जो अदृष्ट रहती है, वही यहाँ सूक्ष्म विरह की कोटि में जाती है। इस सम्प्रदाय में भी राधावल्लभ सम्प्रदाय के समान राधा को इष्ट देवी के रूप में माना गया है। निरुज विहारो कृष्ण द्वारा बालेंगित सुरति रंग से युक्त अपनी शोभा से करोड़ों, कामदेव को पराजित करने वाली, हविर्गुण राधा का साधक यहाँ सदैव स्मरण करना है। और उन श्री राधा के साथ ही कृष्ण को भी इस सम्प्रदाय में उपास्य स्वीकार किया गया है। राधा माधव युगल के मन्त्र जाप से ही इष्टदेव का रूप प्रकट होता है, जो नित्य आनन्द की मूर्ति है एवं रसिकों द्वारा आराध्य हैं। सखी भाव की यहाँ प्रधानता है। बिना श्री ललिता जी की कृपा से साधक राधा कृष्ण के प्रेम की साधना नहीं कर सकता ।

हरिदासी सम्प्रदाय के अनुयायी स्वामी हरिदास जी को ललिता सखी का अवतार मानते हैं। उनका विश्वास है कि श्री ललिता (हरिदास) ने जिस प्रकार श्री वाराधना राधा कृष्ण की है, वह वन्त्यन्त

१- बिहारिन्देव की वाणी -

कठिन है। श्री राधा जी की प्रिय सखी ललिता जी का विश्वास पात्र सखी समाज ही उपासना के उस स्वरूप को प्राप्त कर सकता है, भगवत् रसिक जी का कथन है :

“वाचराज ललिता सखी, रसिक हमारी ह्राप ।
 नित्य किशोर उपासना, जुगल मंत्र की जाप,
 जुगल मंत्र की जाप, वेद रसिकन की बानी ।
 अरे वृन्दावन धाम, इष्ट स्यामा महारानी ।
 प्रेम देवता मिले बिना, सिद्धि होइ न कारज ।
 भगवत् सब सुख दानि, प्राण मे रसिका चारज ॥

इस प्रेम देवता की उपलब्धि के लिए हरिदासी सम्प्रदाय में कुछ साधन उल्लेखित हैं, जिनका अनुसरण करते हुए साधक शनैः शनैः रसोपासना के मार्ग की ओर कदम बढ़ाता है, और सिद्धि प्राप्त हो जाने पर रसास्वादन करता है। ये साधन इस प्रकार हैं :

रसिकों का सत्संग
 नित्य निर्झुज विहार का इष्ट रसना
 नित्य विहार का श्रवण
 गुरु चरणों में स्नेह
 निर्झुज विहार का मजन व गायन
 सखी भाव की भावना
 तन मन से राधा माधव के सुख हेतु प्रयत्नशील होना,
 उनके विहार सुख को देख जानन्द मग्न होना एवं
 प्रत्येक क्षण उनकी सेवा के लिए प्रस्तुत रहना । इन साधनों में संलग्न रहने

पर साधक केवल विहार लीलाओं के प्रेम का ही वास्वादन करना है, उसे अन्य बातों से कोई मतलब ही नहीं रह जाता। इस प्रेम रस के वास्वादन से रोग व रोग पुलकित ही जाता है एवं नेत्रों से वानन्दाशु प्रवाहित होने लगते हैं। यही प्रेम प्राप्ति सत्ती सम्प्रदाय के साधकों का मूल उद्देश्य है एवं इस मूलोद्देश्य की उपलब्धि हृदय शुद्धि पर निर्भर है। हृदय शुद्धि के निमित्त एकान्त वन में कठोर साधना इस सम्प्रदाय में स्वीकृत नहीं है। वरन् साधक गृह में रहते हुए भी समस्त वस्तुओं से उपराम रहकर हृदय शुद्धि कर सकता है। स्वामी हरिदास जी इसी प्रकार का जीवन यापन करते थे :

‘ घर ही घर बन भयो कुंज पुलिन बिच रास ।

‘ बिहारिनि दास हरिदास को जग ते रहि उदास ॥

हरिदासी सम्प्रदाय के अनुसार रस दशा की प्राप्ति के हेतु साधक उन लीलाओं से केवल चक्षु लाभ ही नहीं करना अपितु वह स्वयं भी उनमें भाग लेता है और इसीलिए वह स्वयं को राधा की सत्ती स्वीकार करता है, इससे इन लीलाओं में भाग लेता हुआ वह अपने दृष्टदेव के दर्शन लाभ भी कर सकता है। भगवत रसिक की प्रस्तुत वाणी में प्रिया प्रियम् के प्रेम प्रसाद को पाने की वाक्यांश द्रष्टव्य है :

“ हैं हम रसिक जन्य प्रिया पिय कुंज महल के वासी ,
नई नई कैलि विलोकेँ दाण दाण रति विपरीणि उपासी ।
बीरी, बसन, सुगन्ध वारसी स्खले करत स्वासी,
देन प्रसाद प्रेम से हंसि- हंसि कहि कहि भगवत दासी ॥ १

ससी रूप में मन्त्र उपास्य देव राधा कृष्ण की विहार लीलाओं में भाग लेता हुआ उन लीलाओं के उपयुक्त सामग्री पान, वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य वादि एकत्रित करता है और अपने वाराध्य युगल के लीला करने पर स्वयं उनकी रस क्रीड़ाओं के दर्शन कर कृतकृत्य हो जाता है।

इस प्रकार हरिदासी सम्प्रदाय में राधा कृष्ण का प्रेम स्वकीया, परकीया भाव से रहित तथा नित्य विहारी स्वीकार किया गया है। राधा कृष्ण स्वयं नित्य हैं, अतः उनका प्रेम भी नित्य है। मन्त्र इस प्रेमोपलब्धि के लिए साधना मार्ग की ओर प्रवृत्त होता हुआ ६ उपास्य युगल की लीलाओं का रसपान करके उन्हीं में लीन रहकर प्रेम दशा को प्राप्त करने की चेष्टा करता है। उन लीलाओं में स्वयं को विस्मृत करने पर ही वह अपने व्यास में सफल कहा जा सकता है।

उपर्युक्त प्रेम पद्धति के विकास पर दृष्टिपात कर हम कह सकते हैं कि यह प्रेम भावना युग विशेष की देन नहीं, सदियों से चली आ रही है। वेद, उपनिषद्, तंत्र संहिता वादि में इसके बीज निहित हैं, यह बात दूसरी है कि वैष्णव भक्ति सम्प्रदायों तक आते आते इसका रूप स्पष्ट लक्षित होने लगा, परन्तु है यह प्राचीन देन ही, वासिर हो भी क्यों न सौंदर्य के प्रति आकर्षण तो मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है और उस अनन्त सौंदर्य की रूप सुधा सरिता में सराबोर होकर तो किसी की व्यास बुझती नहीं। कवि कोकिल विद्यापति ने भी कहा है :

‘जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित मेल ।’

अर्थात् जन्म जन्मान्तर तक भी उस रूप सुधाकर का पान करने पर नेत्रों को

तृप्ति नहीं मिलती। उस कृष्ण तृप्ति के हेतु ही राधा कृष्ण की रसमयी भक्ति के प्रेम रस में साधक और भक्तों ने स्वयं को डोर दिया।

साधक को इस प्रेम मयी साधना की चरम सीमा में पहुँचने पर प्रेम देवता का प्रसाद प्राप्त होता है, और तब वह सांसारिक दुःखों से मुक्ति पाकर सदा सर्वदा के लिये उस ब्रह्मानन्द में विलीन हो जाता है, यही इस प्रेम प्राप्ति का चरम लक्ष्य है।

षष्ठ अध्याय

बालीच्यकालीन सूफी एवं कृष्ण भक्त कवियों तथा उनकी रचनाओं का

परिचय

किसी भी युग की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों को अवगत कराने में उस युग की संस्कृति का महत्वपूर्ण योग होता है। संस्कृति एक ओर जहाँ धर्म के क्षेत्र को स्पर्श करती है, वहाँ दूसरी ओर साहित्य को भी प्रभावित करती है। साहित्य ही उस युग की संस्कृति के ज्ञान प्राप्त करने का और उस युग की परिस्थितियों की विज्ञता के हेतु उस समय के कवियों और उनकी रचनाओं की जानकारी परमावश्यक है। किसी स्थितियों में उस कवियों का जन्म हुआ और किन परिस्थितियों से प्रभावित होकर उन्होंने काव्य रचना की ? ये महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जिनके सन्तोषजनक समाधान के लिये हमें उन कवियों की रचनाओं का अध्ययन करना आवश्यक है।

सूफी कवि और काव्य :

भारत में सूफी साहित्य की परम्परा का प्रवर्धन मुसलमानों के आगमन के पश्चात् हुआ । इस साहित्य का प्रस्फुटन मुख्य रूप से तीन रूपों में हुआ : निबन्ध-साहित्य, जीवनी-साहित्य और काव्य । निबन्ध साहित्य की ओर कम सूफी प्रवृत्त हुए । 'गज़ाली' ने इस ओर महत्वपूर्ण कदम उठाया । उनका 'इहयायउल्लुमुदीन' इस रूप में प्रशंसनीय है। गज़ाली के पूर्व और पश्चात् कुछ सूफियों ने इस क्षेत्र में कार्य किया पर गज़ाली की समानता कोई न कर सका ।

सूफी साहित्य के दूसरे अंग 'जीवनी-साहित्य' की रचना 'अरबी' और 'फारसी' दोनों ही भाषाओं में उपलब्ध है। 'अवार' की पुस्तक 'तजकिरातुलजीलिया' इस क्षेत्र में अन्यन्त प्रसिद्ध है। 'दौलतशाह'

की "तज किरातुलशुजरा" में भी सन्तों की जीवनी है। जामो की रचना "नफ हातुलउम्स" भी सूफी सन्तों की जीवनी के लिये प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रंथ भी जीवनी-साहित्य के रूप में वर्णित हैं पर वे इतने महत्वपूर्ण नहीं।

सूफी साहित्य का तृतीय अंग काव्य ही सूफियों के मत का प्राण और सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। सूफी साहित्य के इस अंग का विवेचन करना हमें अभीष्ट है। अरब में सर्वप्रथम प्रेम्काव्य और वीर काव्य का प्रवर्तन हुआ। डा० रामकुमार वर्मा ने हिन्दी-साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में इस सम्बन्ध में लिखा है कि "प्रेम काव्य की रचना विशेषकर मुसलमानों के कोमल हृदय की अभिव्यक्ति है। जब मुसलमानी शासन भारत में स्थापित हो गया तो हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियाँ परस्पर स्नेह-भाव के जागरण की आकांक्षा करने लगीं।" इससे स्पष्ट है कि प्रेम काव्य की पद्धति मुसलमान अपने साथ ही लाये। स्फुट हिन्दों और गजलों के रूप में अपने विचार व्यक्त करने की प्रणाली अरब में बहुत प्राचीन थी, लेकिन मसनवी पद्धति पर ईश्वरीय प्रेम प्रतिपादित करने की प्रणाली ईरान के सूफी कवियों की देन है। सूफी मसनवी लिखने वालों में तीन कवियों का स्थान सर्वोच्च है, सनाई, अवार और रुमी। सनाई का सुप्रसिद्ध ग्रंथ "हदीकुतुल हदीकुत" है। यहाँ पर उन्होंने ईश्वर सम्बन्धी रहस्य उद्घाटित किये हैं। अवार ने लगभग एक लाख बीस हजार पदों की रचना की है। इसके अतिरिक्त उन्होंने "मसिकुवेर", फंडनामा, असरारनामा आदि प्रसिद्ध ग्रंथों का भी प्रणयन किया है। श्री रामपूजन त्रिवारी ने इनके मसिकुवेर के विषय में लिखा है "अवार ने मसिकुवेर में साधक के मार्ग की कठिनाइयों और चरम लक्ष्य तक पहुँचने का वर्णन बड़े ही रोचक ढंग से किया है।

१- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डा० रामकुमार वर्मा -

इसके लिये उन्होंने रूप का वाक्य ग्रहण किया है। संसार भर के पदार्थों की कान्फ्रेंस बुलाने तथा उसमें हृद हृद के नेता चुने जाने के वर्णन से यह पुस्तक प्रारम्भ होती है।

अरब के बाद रूमी का नाम आता है। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'मसनवी म जानवी' है। इसका महत्त्व इसी बात से वर्णित है कि यह ग्रंथ फारसी भाषा का कुरान कहलाता है। मसनवी के रचयिताओं में जिस प्रकार रूमी का नाम प्रसिद्ध है उसी प्रकार गजलों में हाफिज सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। फारिज, फिरदौसी और सादी भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

अरबी और फारसी दोनों में ही सूफी साहित्य की रचना हुई पर उसका वास्तविक सौंदर्य फारसी साहित्य में ही प्राप्त होता है, इसका कारण है फारसी काव्य में अरबी की अपेक्षा अधिक स्वच्छन्दता व रसान्मकता पाया जाना। अरबी और फारसी के अतिरिक्त सूफी साहित्य अन्य भाषाओं में भी लिखा गया। मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् जहाँ जहाँ सूफियों ने पदार्पण किया, वहाँ की भाषाओं में अपनी काव्य रचना प्रारम्भ कर दी। सिन्ध और पंजाब में ही सर्वप्रथम मुसलमानों के आक्रमण हुए इसी कारण वहाँ की भाषाओं में सूफी काव्य की रचना सर्वप्रथम हुई। अधिकतर सूफी कवियों ने अपने निवास स्थान में बीती जाने वाली कौलियों में और वहाँ की कथाओं के माध्यम से अपने काव्य की रचना कर डाली।

पंजाब के सूफी साधक प्रारम्भ में अपने काव्य की रचना

फारसी भाषा में उसी परम्परा और वादश को अपनाकर करते थे । कुछ समय पश्चात् उन्होंने उर्दू में काव्य रचना प्रारम्भ की जिसका वादश भी फारसी साहित्य ही था । पन्द्रहवीं शताब्दी में चिरित्या सम्प्रदाय के शैल इब्राहीम फरीद ने सर्वप्रथम फाजी में लिखना प्रारम्भ किया । इसके उपरान्त इस दिशा में अन्य कई सूफी कवियों ने अपने कदम बढ़ाये जिसमें लाल हुसैन मियाँ, सुल्तान बाहू, बुल्लेशाह, अलीहंदर तथा हाशिम के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार ११ वीं से १६ वीं शताब्दी तक और उसके पश्चात् भी सूफी दरवेश भारत में जातिरहे और अपने सिद्धान्तों को काव्य का रूप प्रदान कर सूफी धर्म का प्रचार करते रहे । इन दरवेशों के अतिरिक्त सूफी धर्म के प्रचार में उन सूफी कवियों का भी कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं जिन्होंने प्रेम काव्यों द्वारा अपने मत का प्रचार किया । ये कवि लोक-प्रचलित प्रेम कहानियों को आधार बनाकर मसनवी शैली में प्रेम काव्यों की रचना करते थे और उन्हीं के द्वारा जनता में सूफी सिद्धान्तों का प्रचार करते थे । हिन्दी के इन सूफी कवियों की एक लम्बी परम्परा है। जिसका प्रारम्भ मुस्ता दाऊद की "चन्दायन" मानी जाती है।

"चन्दायन" की ऊपर प्रथम सूफी प्रेमास्थान माना जाये तो ईस्वी सन् की चौदहवीं शताब्दी से ही इस परम्परा का प्रारम्भ ही जाना है। कुछ विद्वान् जायसी के निम्न विवरण के आधार पर सूफी प्रेम काव्य का प्रारम्भ निश्चित करने का प्रयास करते हैं :

"विक्रम धँसा प्रेम के वारा । सप्तावति कहँ गरुड पतारा ।
मधू पाक मुग धावति लागी । गगनपूर होइगा वैरागी ॥
राजकुँवर कंचनपुर गरुज । मिरगावती कहँ जोगी मरुज ॥

साध कुँवर सँहावत जोगू । मधुमालति कर कीन्ह वियोगू ॥

प्रेमावति कहँ सुरसर साधा । ऊणा लागि अनिरुध बर बाँधा ॥१

उपर्युक्त पंक्तियों से केवल यही निश्चित होता है कि कवि जायसी के समय में वर्णित नायक नायिकाओं के आधार पर प्रेम कहानियाँ प्रसिद्ध थीं, यह ध्वनित नहीं होता कि तत्काल ये कथाएँ पुस्तकाकार में कुतुबन, मीमन वादि सूफी कवियों द्वारा लिखी जा चुकी थीं । जायसी के समय तो सूफी कवि कृत 'मधुमालती' का अस्तित्व होने का प्रश्न ही नहीं उठता कारण मीमन ने अपने ग्रंथ की रचना लिखि इस प्रकार दी है :

संवत् नाँ से बावन मैऊ , सती पुरस कलि परिहरि मैऊ ।

तो हम चित उपजा अमिलासा, कथा एक बाँधउ रसमासा ॥

सुरस बचन जहाँ लागि सुने, कवि जो समाने ते सम गुने ॥

जो सम कहँ सुरस रस मासी, सुनहुँ कान दे प्रेम अमिलासी ॥ २

अतः यह निश्चित है कि मधुमालती का रचनाकाल सन् ६५२ हि० (सन् १५४५ ई० अथवा संवत् १६०२ विक्रम ई है। जायसी सन् ६४६ हि० तदनुसार १५४२ ई० में मृत्यु को प्राप्त हुए । अतः मीमनकृत 'मधुमालती' जायसी के बाद की रचना है और उनका इस ग्रंथ के विषय में पद्मावत में उल्लेख करना सम्भव नहीं ।

पद्मावत की उक्त पंक्तियाँ वाचार्य शुक्ल द्वारा संपादित 'जायसी ग्रंथावली' के अनुसार हैं जो पूर्णरूपेण शुद्ध प्रतीत नहीं होती कारण

१- जायसी ग्रंथावली- ना० प्र० सभा काशी सं० २००६ वि० पद्मावत पृ० १००

२- मीमन कृत मधुमालती - सं० डा० शिवगोपाल मिश्र- पृ० १५

३- सूफी महाकवि जायसी- डा० जयदेव- पृ० ३८

कि मधुमाली की प्राप्त प्रतियों में कुँवर का नाम मनोहर है न कि सण्डावन ।
डा० माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित 'जायसी ग्रंथावली' में नायक का नाम मनोहर ही है :

साधा कुँवर मनोहर जोगू, मधुमालि कह कीन्ह वियोगू ।१

मौलाना दाऊद : चन्दायन -

इस समय सूफी काव्य विषयक उपलब्ध सामग्री के आधार पर इस परम्परा के प्रवर्तक फीरोजशाह तुगलक बादशाह के राज्य-काल में मौलाना दाऊद नामक सूफी कवि थे और उनके ग्रंथ 'चन्दायन' से प्रेम काव्य का प्रारम्भ माना जाता है।

विद्वानों ने मुल्ला दाऊद के ग्रंथ 'चन्दायन', 'चन्दावन', 'चन्दावन', 'चन्द्रावन', 'चन्द्रावनी', 'चन्दनी', 'नूरक व चन्दा' आदि नाम दिये हैं पर 'चन्दायन' ही इनमें सर्वाधिक प्रचलित है। मौलाना दाऊद और चन्दायन के विषय में सर्वप्रथम सूचना 'डिस्ट्रिक्ट गजेटियर बाव् दि युनाइटेड प्राविन्सेज' में मिलती है और इसके पश्चात् जहाँगीर (राज्यकाल १६०५- २७ ई०) के समकालीन अब्दुल-कादिर अलबदारूनी ने अपनी पुस्तक 'मुन्तसबुवारीस' में चन्दायन का रचना काल सन् १३७० या उसके कुछ बाद मानकर कुछ प्रामाणिक तथ्यों का भी निर्देश किया है। डा० रामकुमार वर्मा तथा परशुराम चतुर्वेदी ने इस ग्रंथ का रचना

१- जायसी ग्रंथावली- हिन्दुस्तानी ऐकडेमी- पद्मावन - पृ० २७६

२- गजेटियर बाव् दि प्राविन्स बाव् अवध भाग १ पृ० ३५५

३- मुन्तसबुवारीस, सम्पादक मौलवी अबुलकवली, बिबलीजी थिफ्ट इण्डिका सीरीज सन् १८६६ ई० भाग १ पृ० २५०

४- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डा० रामकुमार वर्मा पृ० ३०६

५- सूफी काव्य संग्रह, परशुराम चतुर्वेदी - पृ० ६३

काल सम्वत् १३७५ निर्धारित किया। परन्तु मनेर की पोथी में इन सबसे पूर्व एक अन्य ही रचना काल वर्णित है वहाँ स्पष्ट रूप से 'बरस सात सै होइ रबयासी, निहि याह कवि सरसउ मासी' इस प्रकार कहा गया है अर्थात् 'चन्दायन' का रचना काल सन् ७८१ हि० तदनुसार सन् १३७६ ई० अथवा सम्वत् १४३६ वि० है। यही रचना काल विद्वानों को सर्वाधिक मान्य है।

कुतुबन- मिरगावती :

चन्दायन के बाद प्राप्त होने वाला दूसरा सूफी काव्य कुतुबन (१५ वीं शताब्दी का अन्तिम भाग और १६ वीं शताब्दी का प्रथम भाग) कृत मिरगावती है जिसका रचना काल ६०६ हि० (वि० स० १५६० अर्थात् सन् १५०३ ई०) है। 'चन्दायन' और 'मिरगावती' के मध्य लगभग दो सौ वर्षों का व्यवधान है इस दीर्घ अवधि में किसी सूफी प्रेम काव्य की रचना न हुई हो ऐसा नहीं हो सकता परन्तु अभी तक उनका पता नहीं चल सका। चौसम्भा वाली प्रति के शुद्ध में एक अर्द्धाली में सन् ६०६ हि० का ही उल्लेख हुवा है यही नहीं कवि ने यह भी लिखा है कि यह संपूर्ण कृति कवि ने दो मास दस दिन में पूर्ण की :

“ ----- ही । नौ सौ नव जब सँवत् वही ।

९

९

दोय मास दस दिन मही । यह रे दोराये जाय ।

एक एक बोल मोती जस मुखसा। झूठा मन चित लाय ॥ २

१- हिन्दी साहित्य- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ० २६४

२- कुतुबन कृत- मृगावती - डा० शिवगीपाल मिश्र - पृ० २०३

इस ग्रंथ में कवि ने प्रेम कथा के माध्यम से ईश्वर के प्रति साधक के प्रेम को वर्णित किया है। बीच बीच में लौकिक प्रेम का आश्रय ग्रहणकर अलौकिक प्रेम का भी संकेत किया है। इसकी कथा दुसान्त है।

जायसी :

“कृतवन” “कृत” “मिरावली” के बाद सूफ़ी काव्य परम्परा की तीसरी और सर्वाधिक महत्वपूर्ण कड़ी जायसी कृत पद्मावत है। जायसी के जन्म के सम्बन्ध में निम्न कदांती है जो अस्पष्ट है और साथ ही रहस्यपूर्ण भी :

“भा अवतार मोर नव सदी, तीसब रस ऊपर कवि बदी ॥ १

इस कदांती के अर्थ विद्वानों ने भिन्न २ निकाले हैं। आचार्य शुबल का मन्तव्य है : “उन पंक्तियों का ठीक ठीक तात्पर्य नहीं सुलना। “नव सदी” ही पाठ मानें तो जन्म काल ६०० हिजरी। सन् १४६२ के लगभग ठहरना है। दूसरी पंक्ति का अर्थ यही निकलेगा कि जन्म से तीस वर्ष पीछे वे अच्छी कविता करने लगे। प्रो० रामपूजन तिवारी के अनुसार इस पंक्ति का अर्थ यह हो सकता है कि अपने जन्म के वर्ष का संकेत करने के लिए कवि यह कहना चाहता है कि मेरा जन्म ६०० हिजरी में हुआ (लेकिन) मैं तीस बरस बढ़ाकर कहा क्योंकि ६०० हिजरी से ३०० वर्ष पहले ८७० हिजरी। सन् १४६४ ई० में उनका जन्म हुआ। इससे जायसी के जीवन की अन्य घटनाओं से भी संगति बैठ जाती है। दूसरी बात यह है कि कवि ने अपनी रचना के संबंध

१- जायसी ग्रंथावली- आसिरी कलाम - पृ० ३४० आचार्य राम चन्द्र शुबल

२- ,, भूमिका भाग - पृ० ५ - ,, ,,

में अगर यहाँ संकेत किया है तो फिर "वासिरी कलाम" में ही जागे चलकर निम्न पंक्ति में अपनी रचना के सम्बन्ध में जो उन्होंने कहा है, उसका कोई अर्थ न होगा :

"नौ से बरस इतीस जो भर, तब रहि कविता वासर कहे ॥" १

डा० कमल कुल्लैष्ट^२ उपर्युक्त पंक्ति पर दृष्टिपात कर जायसी का जन्म काल सन् ६०६ मानते हैं। उनके अनुसार ६३६ हि० में उन्होंने वासिरी कलाम की रचना की। "मा अवतार----- कवि बदी क्यहूँ तीस बरस की वायु में उन्होंने यह रचना की और वह नवव सदी में पैदा हुए थे। ६३६ हिजरी में से तीस बरस निकाल देने पर ६०६ जाता है।

विद्वानों के उक्त पत्तों के साथ इस सम्बन्ध में कुछ अन्य बातें भी विचारणीय हैं। प्रथम मनेर शरीफ से "पद्मावत" की शाहजहाँ कालीन हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हुई है, उसमें अस्तरावट भी है। अस्तरावट की पुष्पिका के अन्त में सन् ६११ हि० उल्लिखित है। यदि जायसी का जन्म सन् ६०० या ६०६ हि० मानते हैं तो जायसी का इतनी छोटी अवस्था में अस्तरावट ऐसे ग्रंथ की रचना करना असम्भव है।

द्वितीय जायसी ने "पद्मावत" में ईश्वर, मुहम्मद साहब, सलीफावों की प्रशंसा करने के पश्चात् तत्कालीन बादशाह शेरशाह सूरी को इस प्रकार वाशीवादि दिया है :

"दीन्ह असीस मुहम्मद, करहु जुगहि जुग राज ।

बादशाह तुम जगत के, जग तुम्हार मुहताज ॥ ४

१- हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका- प्रो० रामपूजन तिवारी पृ० १७५

२- मल्लिक मुहम्मद जायसी- डा० कमल कुल्लैष्ट भाग १ पृ० १६

३- पद्मावत, व्याख्याकार डा० वासुदेवशरण अग्रवाल - प्राक्कथन पृ० ३२

४- जायसी ग्रंथावली - पद्मावत पृ० ५

शेरशाह ने सन् १५७० दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार किया था , उस समय वह ५४ वर्ष के लगभग था । स्वाभाविक है बादशाह को वाशीर्वाद देने वाला कवि शेरशाह से वायु में बढ़ा ही रहा होगा ।

क्तः जायसी की जन्म सम्बन्धी मान्यताओं पर विचार करने पर उनका जन्म नवीं सदी (८००- ८६६ हि०) ही युक्ति युक्त प्रतीत होता है। अपने जन्म स्थान के विषय में उन्होंने स्वयं उल्लेख किया है :

“ जायस नगर धरम बस्थान ” १

रचनायें :

जायसी की रचनाओं के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। उनके ग्रंथों में “ पद्मावत , बसरावट, वासिरी कलाम, चित्रोला, कहरानामा और मसलानामा प्रकाश में आये हैं।

पद्मावत :

इस ग्रंथ का रचनाकाल विवादास्पद है। कुछ एक दल इस ग्रंथ का रचना काल सन् १२७७ हिजरी मानता है और दूसरा सन् १४७७ हिजरी के पक्ष में है। डा० मातङ्ग प्रसाद गुप्त दूसरे पक्ष को मानने वाले हैं। लेकिन बंगाली कवि बलाजील (ईसवी सन् की सत्रहवीं शताब्दी) इसका रचना काल १२७७ हि० ही मानते हैं। दोनों पक्षों का अध्ययन करने पर यही उचित प्रतीत होता है कि कवि ने पद्मावत का आरम्भ तो १२७७ हि० में ही किया, परन्तु इसका समापन अपने शाहि वक्त शेरशाह सूरी के राजत्वकाल १४७७ हि० में किया । इससे दोनों मत ही सही बैठ जाते हैं।

इस कथनक के दो भाग हैं प्रथम में राजा रत्नसेन के ऐकान्तिक प्रेम का अत्यन्त सुन्दर चित्रण है और इसकी पहली रानी नागमती का हृदयघाही वियोग वर्णित है।

दूसरे भाग राघव के निकाले जाने से लेकर पद्मिनी के सती होने तक ये कुछ ऐतिहासिकता का समावेश हो गया है। संक्षेप में ऐतिहासिक तथ्य तो केवल इतना है कि भवाड़ के राणा समरसिंह के बेटे और पद्मिनी के पति रत्नसिंह (१३०२-३ ई०) के राज्यकाल में बलाउद्दीन सिलखी ने बिचौड़ पर बड़ाई की और ६ माह के घेरे के अनन्तर राणा रत्नसिंह को पराजित कर जीत लिया उस भयानक युद्ध में रत्नसिंह, गौरा और बादल वीर गति को प्राप्त हुए तथा पद्मिनी शव सहित सती होई। पर जायसी ने इसमें कल्पना का मिश्रण किया है।

पद्मावती नाम भारतीय साहित्य में नया नहीं।

संस्कृत के कई काव्यों में इस नाम का उल्लेख है और वाचार्य शुक्ल सिंहल द्वीप में पद्मिनी का पाया जाना गौरसर्फी साधुओं की कल्पना मानते हैं। परन्तु गुरु गौरस से प्रायः सात सौ वर्ष पूर्व महाराजाधिराज हर्षवर्धन ने सिंहल की राजकुमारी रत्नावली को इसी नाम से प्रसिद्ध अपनी नाटिका की नायिका बनाया था। डा० दशरथ शर्मा का अनुमान है कि यही रत्नावली शनैः २ हमारे हिन्दी साहित्य की पद्मावती में परिणत हुई होगी^३। उनका कथन है कि कल्कि पुराण की कथा यूँ तो पद्मावत की उपकथाओं से भेल नहीं जाती पर दोनों में पद्मावती सिंहल देश की राजकुमारी है, उसे सुर की सहायता

१- राजपूताने का इतिहास- राय बहादुर गौरी शंकर हीराचन्द वोफा -पृ० ४६५

२- जायसी ग्रंथावली- वाचार्य रामचन्द्र शुक्ल - प्रस्तावना पृ० २४

३- साहित्य सन्देश- सम्पादक कसेन्द्र - वर्ष १३ अंक ६ दिसम्बर १९५१

४- कल्कि पुराण, प्रथम स्रष्ट, अध्याय ३-७ और द्वितीय स्रष्ट अध्याय १-३

मिलती है, विवाह सम्बन्ध में भी शिव सहायक हैं और प्रेमिका को प्रेमी सर्व-प्रथम सुप्तावस्था में मिलती है।

पदमावत में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों का अपूर्व सम्मिलन है। हिन्दू घराने की कहानी के माध्यम से उदार हृदय सूफी कवि जायसी ने पावन और पुनीत प्रेम का उज्ज्वल सन्देश सरस और सराहनीय ढंग से सरल तथा सुस्पष्ट भाषा में प्रस्तुत किया है जिसके फलस्वरूप पदमावत पवित्र परम प्रेम का एक विर-स्मरणीय सफल साहित्यिक अनमोल ग्रंथ रत्न बन गया है।

जायसी ने 'पदमावत' के अन्त में निम्न कर्दालियाँ लिखकर पदमावत को अन्योक्ति कह दिया है :

‘तन बितउर मन राजा कीन्हा, हिय सिंघल बुधि पदमिनी चीन्हा ।

० ० ०

नागमती यह दुनिया धन्धा, बाँवा सोइ न रहि चित बंधा ॥

० ० ०

प्रेम कथा रहि मति विवारहुं, बुझि लेहुं जौ बुझे पारहुं ॥ १

वधिकांश विवेचकों ने इस रूपक में रामसेन को मन का, पदमावती को बुद्धि अथवा चैतन्य स्वरूप ईश्वर का तथा इसी प्रकार अन्य प्रतीक मान कर समस्त प्रबन्ध को व्यंग्यार्पित कह दिया है परन्तु बाबू गुलाबराय उप-सुक्ति रूपक को अतुलित ठहराते हुए कहते हैं कि प्रत्येक स्थान पर रूपक ठीक नहीं बैठता । तोना यदि गुरु है तो उसे मृत्यु माजारी का मय क्यों ? कलाउद्दीन को माया कहा गया है और नागमती को दुनिया धन्धा । माया और दुनिया

का धन्या प्रायः एक ही चीज़ है।^१ परन्तु स्तना कहने पर भी वे यह भाव प्रकट करते हैं कि “ फिर भी मोटे तौर से रूप का निर्वाह अच्छा हुआ है। ” डा० गुलाबराय जी का मत प्रतीत्यादक है। परन्तु डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी स्पष्ट रूप से लिखते हैं, “ काव्य के अन्त में तन चित्तोर मन राजा कीन्हा ” जो सही है वह मूल ग्रंथ का नहीं है। “ पद्मावत ” की प्राचीन प्रतियों से यह बात सिद्ध हो चुकी है इसलिये जो लोग पद पद पर पद्मावत में रूप निर्वाह की बात सोचते हैं वे गलती करते हैं। पद्मावत का कवि रूप निर्वाह के लिये प्रतिज्ञाबद्ध नहीं है। ”

वस्तुतः पद्मावत वन्योक्ति न होकर समासोक्ति है। समासोक्ति पद्धति के द्वारा कवि स्थान स्थान पर परोक्ष स्था की ओर इंगित करना हुआ दृष्टिगोचर होता है। पद्मावत के अतिरिक्त जायसी ने अन्य ग्रंथों का भी प्रणयन किया है। नागरी प्रचारिणी पत्रिका, बंगाल एशियाटिक सोसायटी, पं० रामचन्द्र शुक्ल तथा जनश्रुतियों के आधार पर उनकी रचनाओं की जो सूची उपलब्ध होती है उससे ज्ञात होता है कि उनकी संख्या २० से अधिक है, उनमें से पद्मावत के अतिरिक्त चित्ररेखा, कसरावट, वासिरी कलाम ही उपलब्ध होते हैं। परन्तु ये रचनार्थ पद्मावत के समान महत्वपूर्ण नहीं।

मैफन-:मधुमालती :

जायसी के बाद सूफ़ी कवियों में मैफन और काव्यों में पद्मावत के बाद मैफन कृत मधुमालती ही श्रेष्ठ रचना मानी जाती है। पहले इसकी जितनी प्रतियाँ प्राप्त थीं वे सब अपूर्ण थीं अतः इसका निश्चित

१- हिन्दी कवि समीक्षा- सं० डा० नगेन्द्र तथा डा० विजयेन्द्र स्नातक,
दिल्ली सन् १९५२ - बाबू गुलाब राय का लेख- मल्लिक मुहम्मद बहाउद्दीन
जायसी - पृ० ५०

२- वही पृ० ५०

३- हिन्दी साहित्य- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० २७५

रचनाकाल ज्ञात न होने के कारण जेक लेस्को का यह अनुमान था कि यह पद्मावत के पूर्व की रचना है। वाचार्य शुक्ल जी जैसे विद्वान् ने भी 'मधु-मालती' का रचना काल 'पद्मावत' के पूर्व वि० सं० १५५० और १५६५ के मध्य में समझा^१। परन्तु अब यह कथन निराधार हो चुका है। 'मधुमालती' का एक संस्करण १६५७ में हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी से प्रकाशित हुआ और तत्पश्चात् एक अन्य संस्करण (सम्पादक डा० माता प्रसाद गुप्त) प्रयाग से सन् १९६१ ई० में मुद्रित होकर प्रकाश में आया। मधुमालती में ग्रंथ लिपि इस प्रकार है :

‘संवत् नौ सै बावन भयऊ , सती पुरुष कलि परिहर गयऊ ।

तौ हम चित उपजा अमिलासा, कथा एक बाँधक रसभासा ।

सुरस बचन जहाँ लगि सुन, कवि जो समाने ते सब गुने ।

जो सम कहै सुरस रस भासी, सुनहु कान दे पेम अमिलासी ॥ २

उपर्युक्त पंक्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मधु मालती की रचना सन् ६५२ हि० (सन् १५४५ ई०) में हुई ।

‘मधुमालती’ से सम्बन्धित कई रचनाएँ इससे पूर्व की उपलब्ध होती हैं। संस्कृत में भवभूति ने ‘मालती माधव’ नामक नाटक की रचना की। डा० शिव गोपाल मिश्र के शब्दों में कालान्तर में मालती माधव को उलट कर ‘मधु मालती’ कर दिया गया। यही नहीं चरित नायक मधु या माधवन होकर कुछ कथाओं में मनोहर होने लगा और उसका उपनाम मधु या माधव रखा गया। मालती माधव के अतिरिक्त चतुर्भुज दास कृत मधुमालती तथा किसी अज्ञात कवि द्वारा लिखित ‘मधुमालती’ की कथा की गुजराती

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास- वाचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ० ६८

२- रंजन कृत- मधु मालती - सं० डा० शिवगीपल मिश्र पृ० १४

३- भूमिका पृ० ८

प्रति भी 'मैकनकृत' मधुमालती से पूर्व रचित कृतियाँ मानी जाती हैं।
 'मैकन' की रचना के बाद भी इस कथा से प्रेरणा प्राप्त करके कुछ अन्य
 रचनार्य रची गईं। जैसे नुसरती कृत 'गुलरने इस्क' (रचनाकाल १५२ हि०
 ज्यवा स० १६०२ वि०) तथा सुविख्यात प्रेमास्थानकार कवि जान कृत 'मधु-
 कर मालती' (रचनाकाल स० १६६१)।

जायसी ने भी अपने पदमावत में 'मधुमालती' का
 उल्लेख किया है- 'साधाकुंवर मनोहर जोगू, मधुमालति कहँ कीन्ह वियोगू'।

जायसी का सैकत मैकन कृत 'मधुमालती' की ओर
 नहीं हो सकता क्योंकि पदमावत मधुमालती से पूर्व की रचना है। यह सैकत
 चतुर्भुजदास कृत मधुमालती की ओर भी नहीं हो सकता क्योंकि उनकी रचना के
 नवयुग नायिका कहीं भी विद्युत्त वर्णित नहीं हुए और न नायक कहीं योग
 साधना ही करता है। अतः जायसी का सैकत किसी बख अन्य ही मधुमालती
 की ओर है।

'मधुमालती' में प्रेम की व्यापक और गूढ़ भावना तथा
 मर्मस्पर्शिणी भाव-व्यञ्जना का निदर्शन है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों
 में "इस काव्य में भी समासोक्ति पद्धति में भगवान् की ओर सैकत हैं। इसमें
 मधुमालती के रूप के बहाने समस्त प्रकृति में व्याप्त व्यापक रूप की ओर सैकत
 किया गया है। 'मधुमालती' कनेसर नगर के राजकुमार मनोहर तथा महारस
 नगर की नगर-की राजकुमारी मधुमालती की प्रेम कहानी है। कवि मैकन ने

१- इसका उल्लेख आखन्द नाहटा ने 'हिन्दुस्तानी पत्रिका' जनवरी सन् १९३६

मधुमालती नामक दो रचनार्य पृ० ६५-६६ पर किया है।

२- जायसी ग्रंथावली- हिन्दुस्तानी स्कैडेमी- पदमावत पृ० २७६

३- नागरी प्रचारिणी पत्रिका- हीरक जयन्ती अंक पृ० १६६ डा० माला प्रसाद
 गुप्त का लेख- चतुर्भुज दास की मधुमालती

४- हिन्दी साहित्य- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० २६६

इस प्रेम कहानी में भारतीय तत्वों को अपनाया है। मनोहर तथा प्रेमा, तरारचंद और मधुमालती का एक दूसरे की सहायता करना एवं निस्वार्थ प्रेम, सच्ची सहाय-
भूति तथा संयम का वादशे उपस्थित करना भारतीयता के ही अनुकूल है। जोगी
होकर निकलना, समुद्र यात्रा करना, नौका टूटना और जंगल में ऐसी सुन्दरी
से साक्षात् करना जो राधास द्वारा वहाँ लाई गई है। अप्रश कथा साहित्य
के अनुसार है। मंत्र, तन्त्र तथा जादू जादि भी अप्रश साहित्य में यत्र तत्र देखने
को मिल जाते हैं। मरकन के बारहमास में भी भारतीयता का स्पष्ट समावेश
दृष्टिगत होता है। "मधुमालती" में अनेक स्थलों पर कर्मफलवाद तथा पुनर्जन्म
में विश्वास पाते हैं जो हिन्दू धर्म की विशेषताएँ हैं।

"मधुमालती" की कथा सुखान्त है। डा० शिव गोपाल
मिश्र ने लिखा है "कुतुबन और जायसी तथा अन्य सूफ़ी लेखकों ने संयोग के
अन्तर्गत स्त्रियों या रानियों को सती होते देखि लिया है पर इस बात में
मरकन सर्वथा भिन्न हैं उन्होंने मधु मालती को मनोहर से मिला तो दिया
पर उसे सती न होने दिया।" इसका कारण उन्होंने स्वयं दिया है :

"उत्पति जग जेती चलि आई, पुसं मारि ब्रज सती कराई ।

मैं कोहन्ह येहि मारि न पारेई, सही मरिहि जे कलि बीतारै ।

सत सुनौ संसार सुभाउ, जोमरि जिए सो मरे न काउ ॥ २

जब सभी को एक न एक दिन इस संसार से प्रयाण करना ही है तो मरकन इस
कार्य को अपने हाथ में क्यों ले यही सोचकर उन्होंने मधुमालती का अन्त दुःख
नहीं होने दिया ।

१- मरकन कृत मधुमालती सं० डा० शिवगोपाल मिश्र - भूमिका पृ० ३६

२- मधुमालती सं० शिवगोपाल मिश्र पृ० १६४

उसमान कृत : चित्रावली :

सूफी काव्य में उसमान की 'चित्रावली' भी कम महत्व-पूर्ण नहीं। 'चित्रावली' का रचनाकाल कवि ने स्वयं वर्णित किया है। शाहे-बख्त की प्रशंसा के वर्णन उसमान ने जहाँगीर की प्रशंसा की है। इसी सुगमता-पूर्वक अनुमान लाया जा सकता है कि जहाँगीर के समय में ही कवि का स्थिति-काल है। जहाँगीर का शासन काल स० १६६२-१६८४ था अतः उसमान का समय भी यही माना जा सकता है। कवि ने सन् १०२२ हिजरी (सन् १६१३ ई०) में चित्रावली की रचना की उन्होंने स्वयं इस विषय में कहा है :

‘ सन् सहस्र बाईस जब आई, तब हम बचन चारि एक कहे । ’ १

काली नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९०४ में इस ग्रंथ का प्रकाशना चला जिसका सम्पादन श्री जगन्मोहन वर्मा ने सन् १९१२ ई० में किया। उन्होंने इस पुस्तक की भूमिका में बतलाया है कि ‘‘ यह पुस्तक सर्वप्रथम बाबू अमीरसिंह जी की महाराज साहिब बनारस के पुस्तकालय में उपलब्ध हुई। अमीर सिंह जी सभा की ओर से सौजन्य कार्य करते थे, यह प्रति कंधी लिपि में सन् १८०२ (अर्थात् सन् १७४५ ई०) की लिखी है।

उसमान की चित्रावली का आधार बहुत कुछ जायसी का पद्मावत प्रणीत होता है। डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार 'चित्रावली' को हम पद्मावत की छाया कह सकते हैं। जिस प्रकार जायसी ने अपनी रचना

१- चित्रावली- स० जगन्मोहन वर्मा पृ० १४

२- .. भूमिका पृ० ६

३- पृ० १६

४- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डा० रामकुमार वर्मा
पृ० ३२१ संस्करण १९५८

का प्रारम्भ 'मंगलाचरण' और ईश्वर स्तुति आदि से किया है उसी प्रकार उसमान ने भी :

“ वादि बसानो सोई चितैरा , यह जग चित्र कीन्ह जेहि कैरा ।
कीन्हैसि चित्र पुरुष जौ नारी, को जलपर उस सैं सवारी ॥ १

अतः ईश्वर को सर्वशक्तिमान मानकर उसमान ने अन्य सूफी कवियों की ही भाँति भारतीय विचार धारा को अपनाया है। प्रस्तुत कथा कुँवर सुजान और चित्रावली की प्रेम कथा है। सुजान चित्रावली के चित्र सौंदर्य को देख मोहित हो जाता है तथा उसके स्मरण में विकल रहता है। अन्य सूफी प्रेमास्थानों की भाँति जेक कठिनाईयों को भेसता हुआ वह अन्त में चित्रावली को पानि में समर्पण हो जाता है। प्रारम्भ में उसमान ने शिव का जो रूप वर्णित किया है वह हिन्दू परम्परा के अनुकूल ही है। इसके पश्चात् देवमढ़ी का उल्लेख फारसी साहित्य का अभाव जान पड़ता है। परन्तु यह कथानक रुढ़ि-मन्त्र रूप में अफ़ग़ानिस्तान की रचनाओं में भी प्राप्त है अतः उसे पूर्णतया भारतीय मानना ठीक नहीं। चित्रसारी में कुँवर जिस प्रकार चित्रावली के चित्र को देखकर मोहित हो जाता है यह परम्परा भारतीय तथा फारसी दोनों ही साहित्यों में मिलती है। चित्रावली का सरोवर में स्नान करना तथा कुमुद का उसे चन्द्र समझकर विकसित होना बहुत ज्यों तक पद्मावत से साम्य रहता है :

“ बिगसि कुमुद देखि ससि रेता, मैं तेहि रूप जहाँ जो देता । ” १

इसी प्रकार मानसरोवर के तट पर जाकर ससियाँ पद्मावती से कहती हैं :

“ ऐ रानी मन देखु बिचारी । रहि नैहर रहना दिन चवारी ।
जो लगि बहै पिता कर राखु । सेलि लेहु जो सेलहु बाजु ॥ ३

१- चित्रावली पृ० १

२- ,, ६५

३- पद्मावत पृ० २३

चित्रावली में भी इस प्रकार सलियाँ कहती है :

‘सुख सरवर उह फिदाघर, लहर तरंग अपार ।
 सेलि लेहु जो सेलिवे, कोउ न वखनहार ॥ १

चित्रावली में उसमान ने अन्य सूफियों की भाँति सूफी मार्ग की चार मंजिलों और चार अवस्थाओं का भी निर्देश किया है। उदाहरणार्थ सूफी मार्ग की प्रथम मंजिल ‘शरीकत’ का वर्णन करते हुए उसमान कहते हैं :

‘प्रथम मीनपुर नगर सोहाबा , मीन बिलास पाउ जहँ काया । २

फारसी मसनवियों की भाँति उसमान ने इस काव्य में दो एक स्थलों पर वास्तव्य तत्त्वों का भी समावेश किया है जैसे देव की कल्पना । इसके अतिरिक्त अजगर का सुजान को विरह ज्वाला की दग्धता के कारण उगल देना, एक पक्षी का सुजान और हाथी दोनों को लेकर वाकाश मार्ग में उड़ जाना ।

इस प्रकार हम देखते हैं, उसमान की चित्रावली सूफी काव्य परम्परा में अनुपम है।

उसमान के पश्चान् न्यामत साँ जान ’ (जन्म काल विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध अथवा उससे कुछ पहले , मृत्यु काल अठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध) का नाम लिया जाता है। इनके लगभग ६० ग्रंथ उपलब्ध हैं जो ‘हिन्दुस्तानी एकेडेमी’ संग्रहालय में सुरक्षित हैं। जिनमें से २६ ग्रंथों की गणना प्रेमाख्यानों के अन्तर्गत हो सकती है यद्यपि सभी प्रेमा-

१- चित्रावली पृ० ४६

२- ,, पृ० ८०

३- सूफी काव्य संग्रह- परशुराम चतुर्वेदी पृ० १५५

स्थान सूफी परम्परा में नहीं जाते । सूफी परम्परा में जाने वाले प्रेमास्थानों में कथा रत्नावली, कथा कनकावली, कथा कलावली, कथा रूप मंजरी, ग्रंथ बुधि सागर, कथा कवलावली आदि प्रमुख हैं। पं० परशुराम चतुर्वेदी ने उनके विषय में लिखा है कि "जतकवि कदाचित् कवि पहले और सूफी उसके अनन्तर कहे जा सकते थे । उनकी प्रेम गाथाओं सूफी प्रेम गाथाओं के अनन्तर किस प्रकार जा सकती है। कारण उनमें कुछ साधारण लक्षणों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ये कर्त्तों की स्तुति करते हैं, मुहम्मद के गुण गाते हैं और कभी कभी उनके चार साथियों की भी चर्चा कर देते हैं। इस प्रकार वे शाहिवक्त का नामोल्लेख करते हैं और अपने पीर का परिचय भी देते हैं। अपने तथा अपनी रचना के विषय में भी कुछ कह देते हैं। इनमें से कोई भी बात नियमित रूप से सर्वत्र नहीं पाई जाती, न इनके किसी कथा रूपक का ही कोई स्पष्टीकरण लब्ध होता है।

डा० श्यामनारायण पाण्डेय तो स्पष्ट रूप से उनके सूफी कवि होने का विरोध करते हैं। "जान कवि ने मसनवी की शैली का अनुसरण अवश्य किया है पर उनकी कथाओं में सामान्य ढंग के प्रेम का ही विकास हुआ है। कुतुबन, जायसी, मीरान, उसमान शैख नबी आदि की भाँति उनमें प्रेम दर्शन की न तो स्थापना की गई और न इस दृष्टि से कथानकों और चरित्रों का ही विकास हुआ ।

उपरोक्त विवेचन पर दृष्टिपात कर हम कह सकते हैं

कि जान कवि की रचनाओं में वे भाव उपलब्ध नहीं जिनके आधार पर वे सूफी कवियों की श्रेणी में उच्च स्थान पाने के अधिकारी हो सके ।

१- सूफी काव्य संग्रह- परशुराम चतुर्वेदी - पृ० १५७

२- मध्य युगीन प्रेमास्थान - डा० श्याम मनोहर पाण्डेय पृ० ११३

शैलान्वी : ज्ञानदीप :

इसके बाद सूफ़ी कवियों में 'शेखनबी' और काव्यों में ज्ञानदीप का नाम आता है। कवि के जीवन चरित्र से सम्बन्धित कुछ ही तथ्य ज्ञान दीप के अन्तर्सिद्ध के रूप में उपलब्ध होते हैं। कवि का नाम शेखनबी था तथा उसका स्थितिकाल जहाँगीर का राज्य काल (स० १६६२-१६८४) ही होता है। 'ज्ञानदीप' की ग्रंथ तिथि भी इस बात को बत देती है। शेखनबी ने ज्ञानदीप के रचनाकाल का उल्लेख इस प्रकार किया है :

ॐ स्फुट ह्जार सन रहे कबीसा, राज सुलही गनहु बरीसा ॥
संमत सोरह से किरवरा, उक्ति गरन्त कीन्ह अनुसरा ॥
वलदेमऊ दोलपुर थाना, जाउनपुर सरकार सुमाना ॥
तहन्ना शेष नबी कवि कहीं, शब्द अमर गुन फिलमहीं ॥ १

इन कदांतियों से स्पष्ट है कि इस ग्रंथ का निर्माण सन् १०२६ हिजरी अर्थात् सम्वत् १६७६ वि० में हुआ अतः यह प्रमाणित होता है कि शैल नदी जहाँगीर बादशाह के समकालीन थे ।

कवि ने अपने ग्रंथ के सम्बन्ध में लिखा है कि उसने बीर
शृंगार वादि के वाक्य से 'जोग' का वर्णन किया है :

वीर सिंगार विरह बिनु पावा, पूरन पद लै जोग सुनावा ॥
जोग जुगति वेद जच्छर हीए, रहि न गवा बिनु परगट कीए ॥ २

ज्ञानदीप में प्रेमकथा का सुन्दर वर्णन है। प्रेम मार्ग पर व्यस्र होने में साधक को कितनी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है, यह

इस ग्रंथ से मली भाँति ज्ञात हो जाता है। इस ग्रंथ में विरह-भावना के साथ आध्यात्मिक भावना का पर्याप्त छुट है। पं० परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है :
 “ इस रचना के अन्तर्गत सारी बातें भारतीय परम्परा के ही अनुकूल कही गई जान पड़ती हैं और इसमें प्रेम-भाव नायक की जेपना पहले नायिका में ही जाग्रत होना तक दर्शाया गया है। परन्तु ऐसा करते समय भी कवि ने ज्ञान और योग साधना से कहीं बढ़कर प्रेम तत्त्व का महत्त्व सिद्ध करके तथा एक सौंदर्य मुग्धा रमणी का ‘यूसुफ जुलेखा’ वाली प्रेम कहानी की स्त्रियों की भाँति अपनी अँगुली में चोट पहुँचाने पर भी उससे अप्रभावित रहना दिखलाकर उसमें शायी अन्तर्भावों को भी स्थान दे दिया है।

अधिकांश सूफ़ी प्रेमास्थानों की भाँति कथा सुसान्त है। कवि चाहता है इसके द्वारा सभी की आनन्द वृद्धि हो ।

उपर्युक्त सूफ़ी प्रेमास्थानों के अतिरिक्त कासिमशाह का ‘हंस जवाहिर’ (रचनाकाल हि० सं० ११४६ अर्थात् सन् १७६३ ई०) ‘नूर मुहम्मद’ की इन्द्रावती और अनुराग बाँसुरी (रचना काल क्रमशः हि० सं० ११५७ अर्थात् सं० १७४४ ई० तथा ११७८ ई०) तथा हुसैन जली की ‘गुह्यावती’ वादि प्रसिद्ध हैं।

कुच्छाभक्तकविः

कृष्ण भक्त कवि और काव्य :

निम्बार्क सम्प्रदाय के कवि और काव्य :

यद्यपि सूर ही ब्रजभाषा के प्रथम कृष्ण भक्त कवि स्वीकार किये गये हैं परन्तु इनसे पूर्व निम्बार्क सम्प्रदाय में भी ब्रज भाषा में

१- हिन्दी साहित्य- सं० धीरेन्द्र वर्मा एवं डा० ब्रजेश्वर वर्मा, द्वितीय सङ्क

पृ० २६५- २६६

काव्य रचना प्रारम्भ होगई थी ।

श्री भट्ट जी :

इस सम्प्रदाय के भक्तों में श्री भट्ट जी ने सर्वप्रथम ब्रज भाषा में काव्य रचना की । इनके जन्म काल के विषय में मतभेद है जैसे अधिकांश लोग उनका जन्म विक्रमीय संवत् १५६५ के लगभग स्वीकार करते हैं।

रचनार्य :

इनका ' युगल शतक ' ग्रंथ निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्तों में 'वादि वाणी ' के नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ का प्रकाशन श्री ब्रज बिहारी शरण ने संवत् २००६ में कराया । इसमें सौ पद हैं जिनकी रचना परम्परागत शास्त्रीय भावों की दृष्टि में रसकर हुई । इन पदों में ६ प्रकार के सुत्तों का वर्णन है। सिद्धान्त सुत्त , ब्रजलीला सुत्त, सेवा-सुत्त, सहन सुत्त, सुरत सुत्त तथा उत्साह सुत्त । निम्बार्क सम्प्रदाय के सिद्धान्तों और तत्त्वों को सम्झने में यह ग्रंथ अत्यन्त उपयोगी है।

हरिव्यास जी :

निम्बार्क सम्प्रदाय में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका जन्म चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था ।

रचनार्य :

इनकी प्रसिद्ध रचना महावाणी है, जो ब्रजभाषा में उपलब्ध होती है। अपने गुरु भट्ट जी के आदेश पर उन्होंने ' युगलशतक ' का

१- महावाणी - प्रकाशक ब्रजबिहारी शरण

माध्य लिखा, जो महावाणी के नाम से प्राप्त होता है। संस्कृत में भी उन्होंने कई ग्रंथ लिखे उनके नाम इस प्रकार हैं : सिद्धान्त रत्नाञ्जलि, वष्टयाम, श्री निम्बार्क वष्टीचर नाम की टीका, तत्त्वार्थ पंचक तथा पंच संस्कार निरूपण वादि ।

श्री परशुराम देव :

ये निम्बार्क सम्प्रदाय के सन्त हरिव्यास जी के प्रमुख शिष्य थे । इनके जन्म काल के विषय में कोई ऐतिहासिक आधार नहीं मिलता । जनश्रुति और उनकी कविता के द्वारा केवल इतना ही विदित हुआ है कि वे जयपुर राज्य के वन्तर्गन वादि गौड़ ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए । ' नाम माहात्म्य ' के वाणी अंक में उल्लिखित है कि आपने गौड़ ब्राह्मण कुल में सं० १५४४ विक्रम में जन्म लिया । परन्तु इस कथन का कोई स्पष्ट आधार नहीं मिलता ।

रचनार्थ :

मिश्रबन्धु विनोद में इनके द्वारा विरचित पाँच ग्रंथों का उल्लेख है। परन्तु ' परशुराम सागर ' ही इनमें विशेष रूप से प्रसिद्ध है। यह ग्रंथ उनकी समस्त वाणियों का संग्रह है। इसमें प्रधानतः उपदेश, सत्संग, माया का त्याग, सन्त स्वभाव वर्णन, गृहस्थ धर्म, भगवद् शरणागति, संन्यास गुरुवा वस्त्र धारण, कलियुग, दास भाव, ज्ञान, कर्म श्री गुरु सेवा वादि अनेक धार्मिक विषयों से सम्बन्धित रचनार्थ संगृहीत हैं। इनकी भाषा में राजस्थानी भाषा का पुट है। सुगुण तथा निर्गुण दोनों विचारधाराओं से प्रभावित उनकी काव्य रचनाओं में उपलब्ध होती है। निर्गुण ब्रह्म को निर्दिष्ट कर उन्होंने कबीर के समान कविता की है। इनकी कविताओं में अर्थ गौरव के

१- ब्रह्म कर्म कारिणी गई, गई जनेऊ जाति ।

जब हम हुए राम जन, परसा परम सुजाति ॥

- परशुराम सागर, दोहा सङ्घ- सं० वियोगी विश्वेश्वर सं० ६५३

२- नाम माहात्म्य - वाणी अंक पृ० ३७

साथ साथ उपदेश की प्रवृत्ति भी प्रसृत है।

वानन्दधन जी :

इनका जन्म संवत् १७३० में हुआ और मृत्यु सं० १८१७ में^१। बाप वृन्दावन में सर्वेश्वर घाट पर रहते थे और जाफ़ा सखी नाम 'बहुगुनी' था जो इनके द्वारा लिखित 'वृष्णभानुपुर सुषमा' नामक ग्रंथ से भी सिद्ध होता है^२ :

'राधा नाथ बहुगुनी राख्यौ, सोई बरष हिये वभिलाख्यौ ॥

रसिक गोविन्द :

'शिव सिंह सरोज' में रसिक गोविन्द जी को संवत् १७५० में वर्तमान बताया गया है^३। मिश्रबन्धु विनोद में इनका कविता काल सं० १८५८ कहा गया है।

'शिवसिंह सरोज' में बतलाया गया काल प्रमूर्ण है। कारण कवि ने अपने ग्रंथ 'रसिक गोविन्दानन्दधन' में रचना काल इस प्रकार दिया है :

“वसु सर वसु ससि ऊँ रवि दिन पंचमी बसन्त ।

रख्यौ गोविन्दानन्द धन वृन्दावन रस वन्त ॥”

अर्थात् यह ग्रंथ वृन्दावन में 'वसन्त पंचमी' रविवार संवत् १८५८ में लिखा

१- धनानन्द कविच, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र- प्रस्तावना पृ० २७-२८

२- सर्वेश्वर वृन्दावन धामाक्षि पृ० २८७

३- शिवसिंह सरोज- पृ० ६८

४- मिश्रबन्धु विनोद पृ० ८४८

गया इससे पूर्व भी कई ग्रंथ इनके द्वारा लिखे जा चुके थे। इस प्रकार विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से प्रायः अन्त तक इनका रचना काल है। पण्डित बलदेव उपाध्याय ने इनके नौ ग्रंथों का उल्लेख किया है उनके नाम इस प्रकार हैं : अष्टदेश भाषा, फिगल ग्रंथ, समय प्रबन्ध, रसिक गोविन्द, रामायण सूचिका, कल्लुगरासी, युगलस माधुरी, लक्ष्मिन चन्द्रिका तथा रसिक गोविन्दानन्द घन^१।

रसिक गोविन्द जी ने अपनी कविताओं में उत्कृष्ट रस वादि का सौंदर्यपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है। इनके काव्य में पांडित्य के साथ साथ सहृदयता भी उपलब्ध होती है।

वल्लभ-सम्प्रदाय के कवि और काव्य :

सूरदास :

वृष्टहाप के कवियों में सूरदास का प्रमुख स्थान है।

उनके जन्म स्थान और जन्म तिथि को लक्ष्य कर अनेक मत उपस्थित किये गये हैं। "चौरासी वैष्णवन की वाचा"^२ में सूरदास के जन्म स्थान अथवा जन्म तिथि के विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसी प्रकार "नामादास" कृत "भक्तमाल" में भी सूर के जीवन वृत्तान्त सम्बन्धी कोई तथ्य नहीं मिलता। सूरदास के जन्म स्थान के सम्बन्ध में हरिराय जी ने भाव प्रकाशवाली "चौरासी वैष्णवन की वाचा" में बतलाया है^३, कि उनका जन्म सीही ग्राम में हुआ था। सीही दिल्ली से चार कोस की दूरी पर ब्रज की दिशा में है।

१- रसिक गोविन्द और उनकी कविता - पृ० १६-२१

२- लक्ष्मी वैकटेश्वर ह्याफिस्तान की संवत् १६८५ शके - १८५० की छपी प्रति

३- अग्रवाल प्रेम, मथुरा से प्रकाशित

४- निज वाचा, सूर निर्णय-द्वारका दास परीक्ष और प्रसु दयाल मीनत पृ० २२

पुष्टि सम्प्रदाय के विश्वास के अनुसार सूरदास जी वायु में बल्लमाचार्य जी से १० दिन छोटे थे । इस बात की पुष्टि श्री गोकुल नाथ जी के कथन से ही जाती है। “ सो सूरदास जी जब बाचार्य जी महा-प्रभु को प्राकट्य मयों है, तब उनकी जनम मयों है । सो श्री बाचार्य जी सों ये दिन दस छोटे हुते । ” चाहे जो हो, बहुत दिनों से चली आई इस परंपरा को वैसे ही नहीं उड़ाया जा सकता, भले ही उसे एक मात्र प्रमाण न माना जाय । आज अधिकांश विद्वान् इस परंपरा को प्रामाणिक मानने के पक्ष में हैं कि सूर की जन्म तिथि सं० १५३५ की वैशाख सुखी पंचमी, मंगलवार है। देहावसान का समय आज के शोध कर्त्ता सं० १६४० मानते हैं वैसे अधिकांश हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने सं० १६२० स्वीकार किया है।

सूरदास के विभिन्न नामों का उल्लेख मिलता है जैसे सूर, सूरदास, सूरज, सूरजदास, सूर श्याम, सूर सुजान, सूर सरस आदि । इन नामों के विषय में विद्वानों में मतभेद है कि ये सभी नाम ‘सूरसागर’ के रचयिता सूरदास के हैं अथवा किसी अन्य व्यक्ति के । डा० जनार्दन मिश्र ‘सूरसागर’ में वाये हर ‘सूरज’, ‘सूरजदास’ तथा ‘सूर श्याम’ आदि नाम से जुड़े पदों को प्रक्षिप्त मानते हैं। परन्तु डा० दीन दयालु गुप्त, डा० मुंशी राम शर्मा इस मत से सहमत नहीं । वे विचार शैली आदि की दृष्टि में रक्कर उन पदों को भी सूरदास का ही स्वीकार करते हैं।

सूरदास जी की रचनाएँ :

अनेक सूचनाओं के आधार पर सूर की कृतियाँ निम्न-

-
- १- निज वात्ता- सूरनिर्णय- परीस और मोतिल पृ० २२
 - २- सूर निर्णय पृ० ५३, अष्टहाप परिचय पृ० १२७ अष्टहाप और बल्लम सम्प्रदाय पृ० २१२
 - ३- सूरदास- डा० जनार्दन मिश्र पृ० ७
 - ४- अष्टहाप और बल्लम सम्प्रदाय- डा० दीन दयालु गुप्त -पृ० १६६। २०५
 - ५- सूर सौरभ- मुंशीराम शर्मा- द्वितीय भाग पृ० ५०, ५२

लिखित है :

- १- सूरसागर
- २- सूर सारावली
- ३- साहित्य लहरी
- ४- भागवत भाषा
- ५- दशम स्कन्ध भाषा
- ६- सूरदास के पद
- ७- नागलीला
- ८- गौवर्धन लीला
- ९- सूर पचीसी
- १०- प्राण प्यारी
- ११- व्याहृती
- १२- भव रंगिनी
- १३- सूर रामायण
- १४- दानलीला
- १५- मानलीला
- १६- सूर सक्ती
- १७- राधारसकेलिकौहल
- १८- सूरसागर सार
- १९- सूरशतक
- २०- नल दमयन्ती
- २१- हरिवंश टीका
- २२- रामजन्म
- २३- एकादशी माहात्म्य
- २४- सेवाफल

इनमें प्रथम तीन ग्रंथों को छोड़कर अन्य सभी के विषय में बाणभट्ट के अनुसन्धानकर्तार्यों द्वारा यह निश्चित हो चुका है कि उनमें से कुछ तो सूरसागर के पदों का ही संकलन है और कुछ किसी अन्य सूरदास की रचनाएँ हैं। भाव प्रकाशकार के अनुसार सूरदास जी सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पहले विनय और विरह के पदों की ही रचना करते थे, इनमें उनका प्रिय विषय विरह ही था। पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित होने समय आचार्य जी के मुखारविन्द से भागवत के दशम स्कन्ध की अनुक्रमणिका सुनने के अनन्तर वे मगध लीला भी गाने लगे। गोकुल जाने पर बाल लीला के वर्णन में सूरदास जी की दक्षता देखकर आचार्य जी ने उन्हें श्रीनाथ जी के मन्दिर की कीर्तन सेवा सौंप दी। तभी से वे नित्य नवीन पदों की रचना कर श्रीनाथ जी के सम्मुख गाने लगे।

कुछ समय बाद उनके पदों का संग्रह 'सूरसागर' नाम से संकलित होगया। सम्पूर्ण सूर सागर की रचना श्रीमद्भागवत के समान ही है। भागवत के ही समान इसमें १२ स्कन्ध हैं परन्तु पदों की श्रेष्ठता और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से दशम स्कन्ध का विशेष महत्त्व है। इसमें कवि ने अपने उपास्य की लीलाओं का गान किया है। कवि की काव्य प्रतिभा कमनीय कला और भावुकता का आधार स्तम्भ यही स्कन्ध है। भागवत में भी यह स्कन्ध सबसे बड़ा है। इसी विशाल आकार के कारण यह पूर्वाधं और उचराधं दो वर्गों में विभक्त है। पूर्वाधं में जन्म से लेकर कंस वध पर्यन्त सभी बाल लीलाओं का वर्णन है। श्रीकृष्ण का जन्म, नामकरण प्रसंग माटी मढ़ाण, उलूखन बन्धन, बालवत्स हरण, कालियदमन, वंशीवादन आदि के चित्रों के साथ फघट प्रस्ताव, गोवर्धन लीला, दान लीला आदि के वर्णन भी पूर्वाधं में ही उपलब्ध है। रासलीला का

प्रारम्भ कृष्ण के वंशी वादन से होता है और इस प्रसंग के बाद राधा कृष्ण के संयोग और रति सम्बन्धी वर्णन हैं। राधा के रुठने, मनुहार दूती के कार्य आदि के चित्र भी यहाँ उपस्थित हैं। धृष्ट नायक कृष्ण की सज्जित नायिकाओं के साथ प्रेम लीला, हिण्टोल लीला, गोचारण, वंशीवादन और फाग लीला के चित्र भी यहाँ विस्तारपूर्वक चित्रित हैं। और इसके बाद कृष्ण को गोकुल से मथुरा लाने के लिये कंस द्वारा अक्रूर को भेजने का प्रसंग प्रारम्भ होता है। माता पिता के करुण वात्सल्य का चित्रण कवि ने हृदयग्राही ढंग से प्रस्तुत किया है। सुप्रसिद्ध भ्रमरगीत भी जो हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है इसी के अन्तर्गत आता है।

‘सूरसागर’ के दशम स्कन्ध का उचरार्ध भी अति सुन्दर बन पड़ा है यह भागवत के समान वृहत् आकार का नहीं है इसमें केवल एक सौ अड़तालीस पद हैं जिनमें अरासन्ध से युद्ध, वाण विधा और ऊष्णा, अनिरुद्ध विवाह, कुरुक्षेत्र में कृष्ण और ब्रजवासियों की मेट लड़ाई का वर्णन तथा राधा कृष्ण की अन्तिम आध्यात्मिक मेट का वर्णन उपलब्ध है, इनमें कुछ वर्णन भागवत से साम्य रखते हैं और कुछ एकदम पृथक्ता लिये हैं।

सूरदास जी का मन दशम स्कन्ध के पूर्वार्ध में ही अधिक रमा है। इसमें कृष्ण की विविध प्रेमपूर्ण लीलाओं का गान है। ‘भ्रमरगीत’ जैसा उपालम्भ काव्य तो समस्त हिन्दी जगत् में उपलब्ध नहीं। ज्ञान कर्ण से गर्वित उद्धव ब्रज में पहुँचकर गोपियों को योग का उपदेश देने हैं तथा ज्ञान के समस्त भक्ति की हीनता प्रदर्शित करते हैं। गोपियों के लिये यह असह्य था। उनका कृष्ण प्रेम में अतुरक्त मन यह गर्वारा नहीं करता, वे अनेकों व्यंगपूर्ण

उक्तियों द्वारा उद्धव के ज्ञान को सर्व कर देनी हैं। उनका मन तो एक था जो कृष्ण के साथ ही चला गया था फिर योग और ज्ञान का उपदेश वे किस प्रकार ग्रहण करें :

“ मधुकर हूयां नाहीं मन भेरा ।

गयो जो संग नन्द- नन्दन के बहुरिं कीन्हो फेरो ।

उन नैननि मुस्कान मोल ले कियो परायो चरो ।

जाके हाथ परयो ताही को बिसरयो बास बसेरयो । १

इस प्रकार गोपियों हास्य तथा व्यंगपूर्ण उक्तियों से अपने हृदय के भाव व्यक्त करती हैं। ये उक्तियाँ विरह व्यथा की तीव्रता के कारण सीधे हृदय पर चोट करती हैं।

“ सूरसागर ” के अतिरिक्त सूरदास जी के “ सूर सारावली ” और साहित्यलहरी दो मुख्य ग्रंथ और बनलाये जाते हैं। “ सूर सारावली ” सरसी और सार कुन्द में लिखा गया ११०७ द्विपद कुन्दों का एक ग्रंथ है। “ सूर सारावली ” की चार प्रतियाँ प्राप्त होती हैं। दयाराम भाई कृत गुजराती अनुवाद, राग कल्पद्रुम में प्रकाशित प्रति, लखनऊ और बम्बई से सूरसागर के साथ प्रकाशित प्रतियाँ । परन्तु विद्वानों के अथक् प्रयास के फलस्वरूप भी आज तक कोई हस्तलिखित प्रति नहीं उपलब्ध हुई । एक बात तो अवश्य है कि कोई न कोई हस्तलिखित प्रति अवश्य थी जिससे दयाराम भाई ने स० १८८० के श्रावण मास में गुजराती में अनुवाद किया पर उस मूल प्रति के अभाव में उसका प्रतिलिपि समय और प्रामाणिकता अनिश्चित है। शेष प्रतियाँ में नवल किशोर प्रेस लखनऊ

१- सूरसागर - काशी नागरी प्रचारिणी सभा- पद ४३४१

वाली प्रति ही प्राचीनतम है जिसका प्रथम संस्करण स० १६२० में प्राप्त हुआ । ऐसी अवस्था में उस प्रति की प्रामाणिकता को लक्ष्य कर कुछ कहना युक्ति संगत नहीं :

सूर सारावली का प्रारम्भ मंगलाचरण से होता है :

‘ अविगत वादि अनन्त अनूपम अलस पुरुष अविनाशी ।

पूरान्ना ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोक विलासी ॥

यही मंगलाचरण किंचित् शब्द परिवर्तन के साथ ‘सूरसागर’ में भी द्रष्टव्य है परन्तु सारावली का विषयारम्भ, समाप्त कुछ विशेष प्रसंगों का विस्तार तथा किंचित् दार्शनिकता इस बात का धोतक है कि यह सूरसागर की अनुक्रमणिका न होकर एक स्वतन्त्र ग्रंथ है।

साहित्य लहरी का निर्माण काल स० १६२७ माना जा सकता है। यह दृष्टकूट पदों का संग्रह है। यद्यपि सूर सागर में भी दृष्टकूट पद उपलब्ध है पर ‘साहित्य लहरी’ के पदों की शैली अपेक्षा कृत सबल है। इसके अतिरिक्त ‘सूर सागर’ में उपलब्ध दृष्टकूट पदों में केवल श्रीकृष्ण की लीला का ही गान किया गया है। काव्यांग का विवेचन नहीं। इसके विपरीत ‘साहित्य लहरी’ के लगभग सभी पदों में श्रीकृष्ण लीला के साथ ही उल्लेख, नायिका तथा भावों का भी शृंगाराबद्ध वर्णन है। इसी कारण डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी इस रचना को सूर कृत नहीं मानते, उनका कथन है कि यह आश्चर्यजनक बात है कि सूर जैसा भक्त कवि भी नायिका भेद और उल्लेखों का सुलकर वर्णन करे और दूसरी बात यह है कि साहित्य लहरी के अधिकांश पदों में सूर का वंश परिचय उपलब्ध है जो सूर जैसे भक्त को शोभा नहीं देता। द्विवेदी जी, ब्रजेश्वर वर्मा तथा डा० राम कुमार वर्मा इस रचना के सूर की होने के विषय में यह

प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं कि इसमें अनेक स्थलों पर सूर, सूरजदास आदि नाम आये हैं पर यह कोई सबल प्रमाण नहीं इसका सण्डन डा० मुंशीराम शर्मा ने अपने 'सूर सौरभ' तथा 'सूरदास और भगवद् भक्ति' नामक ग्रंथों में यह कहकर किया है कि ये एक ही कवि के कई उपनाम हैं। रचना में इन नामों के आने का यह अर्थ नहीं कि यह सूरजदास, सूर श्याम या अन्य किसी कवि की रचना है।

परमानन्ददास :

श्री परमानन्द जी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । 'चौरासी वैष्णव की वार्ता' में इसका उल्लेख है। वहाँ उनका परिचय कान्य कुब्ज ब्राह्मण कहकर दिया गया है, 'परमानन्द जी को जनम कन्नीज में कन्नीजिया ब्राह्मण के घर भयो' । पुष्टि सम्प्रदाय में प्रचलित विश्वास के अनुसार परमानन्द दास श्री वल्हमाचार्य जी से पन्द्रह वर्ण छोटे थे ।

'नाभादास' कृत 'भक्तमाल' में चार परमानन्दों का उल्लेख है। एक स्वामी परमानन्द जी श्री श्रीधर स्वामी के गुरु संन्यासी थे । दूसरे श्री परमानन्द जी सारंग थे । जिनके जीवन, काव्य और भक्ति के विषय में भक्तमाल में पूर्ण प्रकाश डाला गया है। तीसरे परमानन्द जी जगन् विख्यात योगी हुए । और चौथे परमानन्द जी बौली थे जिनके घर पर

१- चौरासी वैष्णवन की वार्ता- पृ० २६०

२- अष्टहाप- द्वितीय संस्करण - पृ० ५

३- नाभादास कृत - भक्तमाल पृ० ३७३

४- ,, ,, ५६५

५- ,, ,, ८४३

मागवत धर्म की दृढ़ ध्वजा गड़ी थी। इन चारों में 'परमानन्द सारंग' को ही अष्टछापी परमानन्द स्वीकार किया जाता है।

परमानन्द दास जी की रचनार्थ :

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की सौज रिपोर्टों में परमानन्ददास, परमानन्द हित और परमानन्द किशोर नामक तीन व्यक्तियों का उल्लेख है। उन्हीं रिपोर्टों में परमानन्ददास द्वारा रचित दान लीला, ध्रुव चरित तथा हनुमन्नाटक की टीका और पद, परमानन्द हित कृत हितहरिवंश की जन्म बधाई, गुरु भक्ति, गुरु प्रताप, राधाष्टक, रस-विवाह, जमुना-मंगल, जमुना माहात्म्य तथा परमानन्द किशोर कृत कृष्ण चौलीसी नामक रचनाओं का भी संक्षेपीकरण उपलब्ध है। इनमें जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है परमानन्द हित और परमानन्द किशोर अष्टछापी परमानन्द जी से भिन्न हैं। परमानन्ददास कृत कही जाने वाली रचनाओं दानलीला, ध्रुवचरित तथा हनुमन्नाटक की टीका में दानलीला के अनिर्वक्त शेष सन्देहास्पद है। सौज रिपोर्टों में 'ध्रुवचरित' को दत्तियार्जुन पुस्तकालय में संगृहीत बनाया गया है। परन्तु वहाँ जगन्नाथ और जगदेव कृत 'ध्रुवचरित' तो उपलब्ध है पर परमानन्द दास कृत नहीं। अब तक प्राप्त परमानन्द दास जी के पदों में ध्रुव चरित से सम्बन्धित पदों का भी सर्वथा अभाव है। 'हनुमन्नाटक' के विषय को दृष्टि में रखते हुए इसे अष्टछाप के किसी कवि की कृति मानने में सन्देह रहता है। सभा की सौज रिपोर्टों के अनुसार इसका कर्ता परमानन्द ब्रजचन्द का पुत्र था। इस प्रकार 'दानलीला' ही एक ऐसी कृति है जो अष्टछापी कवि परमानन्द

१- ध्रुवदास कृत भक्त नामावली

२- अष्टछाप परिचय- पृ० ३०१

दास कृत कही जा सकती है। परन्तु यह कोई स्वतन्त्र रचना न होकर अन्य प्रसंगों के समान ही परमानन्द सागर का अंश मात्र है। 'परमानन्द दास जी की दान लीला की गोपियाँ वलि सरल हृदया तथा कृष्णारागानुबक्ता हैं। यही कारण है कृष्ण के दधि दान मार्गने पर वे उनका सबल प्रतिवाद नहीं कर पाती।

परमानन्ददास जी के प्राप्त ६३० पदों का विभाजन डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल ने चार शीर्षकों में किया है :

१- वर्णाश्रम के पद

२- नित्य सेवा के पद

३- दीनता विनय माहात्म्य आदि के पद

४- परिशिष्ट परमानन्द सागर के पदों का यह वर्गीकरण पुष्टि सम्प्रदाय की सेवा-पद्धति के अनुरूप हुआ है। 'परमानन्द सागर' के लीला विषयक पदों और श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के वर्ण्य विषय में बहुत अंशों तक समानता है।

कृष्णदास :

भक्तमाल में कृष्णदास नामक ६ भक्तों का उल्लेख है। उनमें अष्टशाय के कृष्णदास सम्भवतः श्री बालकृष्ण (कृष्णदास जी) हैं।^२ जिनके विषय में वहाँ कहा गया है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के संप्रदाय में जो भजन रीति प्रचलित थी कृष्णदास जी उसमें पूरे और गुणागार हुए।

१- परमानन्दसागर- पद संग्रह- सं० डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल प्र

२- श्रीभक्तमाल - पृ० ५८२

आपकी कविता निर्दोष वर्तकृत तथा श्रीगोपाल जी के सुश्रु से भूषित होती थी। आप सदैव सन्तों के साथ रहा करते थे तथा भगवद् चिन्ता ही आपके लिए एक मात्र वस्तु थी और इनकी अनन्य भक्ति को देखकर ही 'गिरिधरनारी' कृष्ण का नाम मर्म साफ़ा दिया। अर्थात् गिरिधारी कृष्ण चन्द्र जी ने श्रीकृष्णदास जी पर प्रसन्न होकर अपने नाम में साफ़ा किया अर्थात् आपका नाम 'कृष्ण' (बालकृष्ण या कृष्णदास) रखाया और आपका नाम का पद बनाया।

हरिराय जी कृत 'भाव प्रकाश' में उनके जन्मकाल के विषय में बतलाया गया है^१ कि कृष्णदास गुजराती थे, इनका जन्म लगभग स० १५५४ में हुआ तथा वल्लभ सम्प्रदाय में ये स० १५६७ में प्रविष्ट हुए^३। इनकी मृत्यु सम्बत् १६३८ में हुई^४।

रचनार्थ :

इनका पद संग्रह 'कृष्णदास' नामक विद्या विभाग कांकरौली से प्रकाशित हुआ। इसमें इनके कुल ११३४ पद हैं जो नित्य लीला (मंगलाचरण, स्वरूप वर्णन, दान, वासक्ति, वेणु, गान, मान, रास, युगल, रस सुरतान्त) वर्णोत्सव (जन्माष्टमी, बाल लीला, राधाष्टमी, दशहरा, दीपावली, गोवर्धन पूजा, श्री गुसाईं बघाईं, बसन्त, होरी, डोल फूल मंडली, महाप्रभु बघाईं, अदाय तृतीया, रथयात्रा, हिंडोरा, पवित्रा, रासी प्रकीर्ण, जात्रय, विनय, यमुना, गंगा महाप्रभु गुसाईं जी नामक शीर्षक

१- श्रीभक्तमाल- पृ० ५८२

२- वष्टकाप - पृ० ३३१

३- ,, भूमिका भाग पृ० ८, ६

४- ,, ,, १०

आदि में संकलित हैं।

कुम्भनदास :

कुम्भनदास जी का जन्म सं० १५२५ है और मृत्यु सं० १६४० के लगभग ।

रचनार्थ :

कुम्भनदास जी ने किसी प्रबन्ध काव्य की रचना नहीं की। वर्णोत्सव अथवा नित्योत्सव सेवा हेतु उन्होंने जिन पदों की रचना की। वे ही संकलित हो गये। कुछ समय पूर्व अष्टछाप के अन्य कवियों के कीर्तन संग्रहों में साथ उनके संग्रह भी भाग १, २, ३ में प्राप्त होते थे। उन तीनों भागों में कुम्भनदास जी के पदों की कुल संख्या ११५ थी।

इसके अतिरिक्त अधिकारी पद कांकरौली विद्या विभाग और श्रीनाथद्वारा पुस्तकालय की पोथियों में संकलित थे। सं० २०१० में विद्या विभाग कांकरौली राजस्थान ने गोस्वामी श्रीब्रजभूषण शर्मा, पी० कण्ठमणि जी शास्त्री तथा श्री गोकुलचन्द्र जी शर्मा के सम्पादकत्व में कुम्भनदास नाम किसी कवि का जीवन चरित तथा पद संग्रह प्रकाशित किया गया। यह संकलन कांकरौली के सरस्वती मंदार में प्राप्त अनेक पोथियों का आधार लेकर प्रस्तुत किया गया है जिनमें बंध सं० १६।७ पर विद्यमान सं० १८२६ और बंध सं० १०।६ पर विद्यमान सं० १५६६ के लगभग प्रतियाँ मुख्य हैं। इस पद संग्रह में संगृहीत कुम्भन दास जी के ४०१ पद वर्णोत्सव, लीला तथा प्रकीर्ण इन शीर्षकों में विभक्त किये गये हैं।

१- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ३१२

२- कुम्भनदास - कांकरौली प० सं० ४-६ भूमिका

कुम्भनदास जी कृत दो कृतियाँ 'श्याम साई' तथा 'दान लीला' पृथक् से भी प्राप्त हैं। पद संग्रह में इन दोनों शीर्षकों को 'वर्णान्सव' में सम्मिलित कर लिया गया है। वात्सल्य भाव से सम्बन्धित कुम्भनदास जी के कम पद ही प्राप्त हैं, उनमें 'जन्म', 'समय', 'पलना', 'ठूठी', 'कलेउ', 'मासनचोरी' और 'क्रीड़ा' से सम्बन्धित लगभग १३ पद ही ऐसे हैं जिनमें थोड़ा बहुत वात्सल्य भाव है। उनके अधिकांश कीर्तन राधा कृष्ण के संयोग झुंगार से सम्बन्धित हैं। इसके अन्तर्गत 'रास', 'वर्णाकृत वर्णन', 'युगल स्वरूप वर्णन', 'वासक्ति', 'मान', 'सुरतान्त', 'सण्डिता' आदि के पद आते हैं। इसके अतिरिक्त दान प्रसंग, बसन्त, धमार, काग श्री गोसाई जी की बधाई, हिंडोरा, झाक आदि विभिन्न दृष्टिकोणों से रचित पद भी उपलब्ध होते हैं।

नन्ददास :

नन्ददास जी का जन्म संवत् विवादास्पद है और इसका कारण यह है कि उन्होंने अपने काव्य में अथवा अन्य कहीं अपने जीवन के सम्बन्ध में कम ही कहा है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वाचा' तथा 'वष्टकाप की वाचा' में इनके जीवन के विषय में जो कुछ मिलता है वह पर्याप्त नहीं है। नाभादास कृत 'भक्तमाल' में भी इनके जीवन वृत्तान्त का कुछ ही उल्लेख उपलब्ध है।

नन्ददास जी का जन्म काल लिखने का आधुनिक प्रयास करने वाले सर्वप्रथम व्यक्ति शिव सिंह सेंगर विदित होते हैं। उनके 'सरोज'

में नन्ददास जी का जन्म संवत् १५८५ प्राप्त होता है^१। किस बाधार पर उन्होंने यह संवत् लिखा इसका कोई स्पष्ट प्रमाण उन्होंने नहीं दिया। इन्हीं का अनुसरण डा० रामकुमार वर्मा ने किया है। बाबू श्याम सुन्दरदास, डा० दीनदयालु गुप्त और प्रमुदयाल मीनल ने इनका जन्म समय सं० १५६० माना है। बाबू श्याम सुन्दरदास जी ने अपने अनुमान का स्पष्टीकरण नहीं किया^२। डा० गुप्त के अनुसार नन्ददास जी सं० १६१६ में गौस्वामी जी की शरण आये, उस समय उनकी अवस्था २५ या २६ वर्ष की रही होगी। संवत् १६१६ में से २६ वर्ष निकाल देने पर इनका जन्म संवत् १५९० स्थिर हो जाता है^३। श्री प्रमुदयाल मीनल के अनुसार नन्ददास जी गौस्वामी तुलसीदास के अनुज थे, तुलसीदास जी का जन्म समय संवत् १५८६ है। नन्ददास जी तुलसीदास जी से २,१ वर्ष अवश्य ही छोटे रहे होंगे। ऐसी अवस्था में इनका जन्म समय सं० १५६० स्थिर हो जाता है^४। अतः विभिन्न तर्कों का आश्रय ग्रहण कर विद्वान् संवत् १५६० को ही नन्ददास जी का जन्मकाल स्वीकार करते हैं।

रचनायें :

नन्ददास जी के नाम से प्रचलित रू ग्रंथों का उल्लेख डा० दीन दयालु गुप्त ने अष्टकाप और वल्लभ सम्प्रदाय में किया है पर इन रचनाओं

१- शिवसिंह सरोज- शिवसिंह सरोज- पृ० ४४२

२- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा पृ० ५५१

३- हिन्दी साहित्य- डा० श्यामसुन्दर दास- चतुर्थ संस्करण पृ० १६२

४- अष्टकाप और वल्लभ सम्प्रदाय- डा० दीन दयालु गुप्त पृ० २६१

५- अष्टकाप परिचय- प्रमुदयाल मीनल- पृ० ३०६

६- अष्टकाप और वल्लभ सम्प्रदाय- प्रथम संस्करण पृ० ३२५

में निम्नलिखित ही मान्य है : रास पंचाध्यायी, रूप मंजरी, रसमंजरी, अनेकार्थ मंजरी, विरह मंजरी, नाम मंजरी अथवा नाम माला, दशम स्कन्ध, भागवत, श्याम सगाई, सुदामा चरित, गोवर्धन लीला, सिद्धान्त पंचाध्यायी, रुक्मिणी मंगल और मंवर गीत ।

रूप मंजरी में दो भाव धाराओं का स्पष्टीकरण हुआ है। एक शृंगारिक और दूसरी आध्यात्मिक । विरह मंजरी में पुष्टि मार्गीय सिद्धान्त के अनुसार विरह के चार प्रकार बतलाये गये हैं प्रत्यक्षा विरह, पलकान्तर, बनान्तर और देशान्तर । प्रत्यक्षा विरह के अन्तर्गत वह विरह आता है जिसमें श्रीकृष्ण की वंशाधिनो होने पर भी प्रेमाधिरस के कारण राधा को विरहानुभूति होती है। श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य से पलकान्तर मात्र का वियोग दूसरे प्रकार का विरह है। श्रीकृष्ण के गोचारण हेतु जाने पर बनान्तर विरह की उत्पत्ति होती है। देशान्तर विरह कृष्ण के दूसरे स्थान को जाने पर उत्पन्न होता है।

‘रसमंजरी’ भानुदत्त की ‘रसमंजरी’ के आधार पर लिखा गया हिन्दी का प्रारम्भिक रीति ग्रंथ है। ‘मान मंजरी’ और अनेकार्थ मंजरी कवि का पांडित्य प्रदर्शन करती है। ‘श्याम सगाई’ २८ पदों की एक लघुकाय रचना है।

‘मंवरगीत’ नन्ददास की सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है। इसका भ्रमरगीत काव्य परम्परा में अपना पृथक् महत्त्व है। गोपी और उद्धव के संवादान्तर्गत तर्क और विर्क की ऐसी योजना अन्यत्र नहीं मिलती । रुक्मिणी मंगल १३३ श्लोक, कुन्दों की एक लघुकाय रचना है। इसमें रुक्मिणी का कृष्ण के प्रति प्रानुराग और प्रणय सम्बन्ध वर्णित है। समस्त ग्रंथ में माधुर्य

पूर्ण शैली का प्रयोग हुआ है।

‘रास पंचाध्यायी’ सौंदर्य बोध की दृष्टि से नन्ददास की सर्वोत्तम कृति है। इसका कथानक तो श्री मद्भागवत से लिया गया है पर विषय प्रतिपादन में कवि ने पूर्ण मौलिकता का परिचय दिया है। कृष्ण इसकी दो भाव धारारें हैं एक शृंगार की और दूसरी प्रेम की। वैसे तो साधारण रूप से यह शृंगार रस का ही ग्रंथ दिखाई देता है। पर उस शृंगारिकता के साथ आध्यात्मिकता का भी सम्बन्ध है। आध्यात्मिक दृष्टि से कृष्ण परब्रह्म और गोपिकार्ये आत्मार्ये हैं जो उसी ब्रह्म का ज्ञाता हैं। रासलीला भी उसी परब्रह्म से विभुक्त आत्मार्यों (गोपियों) का पुनर्मिलन है। सम्पूर्ण कथा का यही आध्यात्मिक पक्ष है।

‘सिद्धान्त पंचाध्यायी’ का कथानक रास पंचाध्यायी के कथानक की ही तरह है। ‘दशम स्कन्ध’ श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के २६ वे अध्याय रास लीला का भावानुवाद है। ‘गोवर्धन लीला’ और ‘सुदामा चरित’ श्रीकृष्ण की लीला सम्बन्धी दो लघु रचनार्य हैं इन दोनों रचनार्यों के नन्ददास कृत होने में कुछ लोगों को सन्देह है पर भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियों से नन्ददास की अन्य कृतियों से इनका साम्य है।

‘नन्ददास’ जी ने उपर्युक्त प्रबन्ध रचनार्यों के अतिरिक्त समय समय पर पद रचना भी की है। उनके पदों की संख्या के विषय में विचार-रेख्य नहीं पर उनके सभी पद वर्णात्मक और नित्योत्सव सम्बन्धी हैं। इस प्रकार यदि उनके पदों का विभाजन पुष्टिमार्गीय सेवा पद्धति के अनुकूल किया जाये तो सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

गोविन्दस्वामी :

वार्ता साहित्य में गोविन्द स्वामी जी के जन्म स्थान का स्पष्ट उल्लेख नहीं और विद्वानों में इस विषय में मत वैभिन्न्य है। श्री कण्ठमणि जी शास्त्री ने उनका जन्म संवत् १५६०, डा० दीन दयालु गुप्त और प्रमुदयाल मीनल ने सं० १५६२ और श्री द्वारिका प्रसाद जी परोस ने सं० १५७३ स्थिर किया है। इस प्रकार उनके जन्म समय के बारे में कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं। फिर भी "सम्प्रदाय कल्पद्रुम" का आश्रय ग्रहण करने पर उनका जन्म काल सं० १५६२ या उससे कुछ पूर्व ही रहा होगा ऐसा विश्वास कर लिया जाता है।

रचनार्थ :

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों के अनुसार गोविन्दानन्दघन, चिन्तागणि, स्कान्द पद, सीताराम, की गीतावली, करुणामय ये ऐसी रचनार्थ उपलब्ध हैं जिनके रचयिता गोविन्ददास या गोविन्द दास या गोविन्द प्रभु नाम के व्यक्ति हैं। परन्तु अनुसन्धान के उपरान्त ये सभी रचनार्थ अष्टहापी गोविन्द स्वामी से मेल नहीं लाती। उनके द्वारा रचित २५२ पद ही बल्लभ सम्प्रदायी कीर्त्तन संग्रहों में उपलब्ध होते हैं।

गोविन्दस्वामी के सम्स्त पदों का विभाजन वर्णोत्सव नित्य कृम और प्रकीर्ण नामक शीर्षकों में किया गया है। वर्णोत्सव के अन्तर्गत जन्माष्टमी से प्रारम्भ होकर श्रवणोत्सव तक के पद हैं। प्रातःकाल से लेकर शयन तक के और रङ्गार के पदों का शीर्षक "नित्यक्रम" है। उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त शेष पद प्रकीर्णान्तर्गत आते हैं। गोविन्द स्वामी के पास विषयक पदों में कवि की अपेक्षा उनका संगीतज्ञ रूप ही अधिक निसरा है।

गोविन्दस्वामी ने अपने आपको कृष्ण के वान्सल्य और संयोग रति तक ही सीमित रखा है। नित्यक्रम के अन्तर्गत इन्हीं भावों से सम्बन्धित पद है। इनके कलेऊ और बाल लीला के प्रसंग वान्सल्य पात्र की दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कलेऊ से सम्बन्धित तीन ही पदों में कवि ने मातृ हृदय की सुन्दर व्यंजना की है। श्रीकृष्ण जी सखाओं की प्रकार पर बिना कलेऊ के ही गोवाराणा हेतु चले जाते हैं। माना यशोदा का शरीर यह सोचकर क्षीण होता है। मातृ हृदय को किन्ती मनोहर अनिव्यक्ति है।

संयोग रति के अन्तर्गत मंगला, शृंगार, राजमोग, भोग सन्ध्या, शयन और मान विषयक पद आते हैं। कुछ पद श्रीकृष्ण के सुरान्त स्वरूप कुछ सण्डिता के वचन और एकाध राधा के मान और चीर हरण से भी सम्बन्धित है।

हीन स्वामी :

सम्प्रदाय कल्पद्रुम के आधार पर इनका सम्प्रदाय प्रवेश सं० १५६२ वि० में हुआ। इसी आधार को ग्रहण करके हीन स्वामी का जन्म संवत् निर्धारित होता है। डा० श्यामसुन्दर दास सम्प्रदाय प्रवेश के समय इनकी आयु २० वर्ष बताकर इनका जन्म संवत् १५७२ निर्धारित करते हैं। डा० दीन दयालु गुप्त सम्प्रदाय प्रवेश के समय इनकी आयु २५ वर्ष निर्धारित करके जन्म संवत् १५६७ उचित मानते हैं। प्रो० कण्ठमणि शास्त्री ने उनका जन्म संवत् १५७२ ही मानते हैं।

१- गोविन्दस्वामी पद सं० २३२

२- हिन्दी साहित्य- डा० श्यामसुन्दर दास पृ० १६४

३- अष्टकाप और वत्सल सम्प्रदाय- डा० दीन दयालु गुप्त पृ० २७

४- अष्टकाप - कण्ठमणि शास्त्री - पृ० १४

कृतियाँ :

वल्गुम सम्प्रदाय के छह छपे कीर्तन संग्रहों में हित स्वामी के ६४ पद प्राप्त होते हैं। स० २०११ में विद्या विभाग कांकिरीली के वष्टहाप स्मारक समिति ने गौ० श्री ब्रजभूषण शर्मा, प्रो० श्री कण्ठमणि शास्त्री और श्री गोकुल शर्मा के सम्पादकत्व में हित स्वामी के प्राप्त २०१ पदों का संग्रह 'हित स्वामी जीवनी तथा पद संग्रह' नाम से प्रकाशित किया। इस संग्रह में हित स्वामी के प्राप्त २०१ पदों को वर्णात्स्व पद संग्रह, लीला पद संग्रह और प्रकीर्ण पद संग्रह नामक तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। वर्णात्स्व पद संग्रह में वर्णात्स्व से सम्बन्धित ६७ पद, लीला पद संग्रह में नित्य कीर्तन सम्बन्धित १०६ पद और प्रकीर्ण में अन्य विषयों से सम्बन्धित २८ पद हैं।

चतुर्भुजदास :

सम्प्रदाय कल्पद्रुम के अनुसार चतुर्भुजदास जी का जन्म स० १५६७ में हुआ था परन्तु प्रमुदयाल मीतल इनका जन्म समय स० १५८७ स्थिर करते हैं। प्रमुदयाल मीतल का ही मत सर्वाधिक माना जाता है और चतुर्भुजदास जी का जन्म स० १५८७ से १५९० के मध्य स्वीकार किया जाता है।

रचनार्य :

'मधु मालती', भक्ति प्रताप, द्वादशश्लोक और 'हित जू को मंगल' ये चार ऐसी रचनार्य हैं जिनका सम्बन्ध हिन्दी साहित्यकार भ्रमवश वष्टहाप के चतुर्भुजदास से बतलाते हैं जबकि 'मधुमालती' के रचयिता राजपूताने के निगम कायस्थ चतुर्भुजदास तथा अन्य तीन रचनाओं के रचयिता हित हरिवंश जी के शिष्य थे। वष्टहाप के चतुर्भुजदास ने केवल पद रचना की है। वल्गुम सम्प्रदायी कीर्तन संग्रह के तीन सङ्घों में इनके पदों की संख्या १३७ है। पर श्री ब्रजभूषण शर्मा, कण्ठमणि शास्त्री और गोकुलनन्द शर्मा के सम्पादकत्व में विद्या विभाग कांकिरीली ने चतुर्भुज दास के लगभग ३६५

पदों का संग्रह प्रकाशित किया है। इनके पद सरस और भक्तिभाव पूर्ण हैं। बाल लीला, वियोग और संयोग शृंगार सम्बन्धी इनके पद अत्यन्त ही सुन्दर और ललित बन पड़े हैं।

चैतन्य सम्प्रदाय के कवि और काव्य :

वष्टक्षाप सम्प्रदाय के कृष्ण भक्त कवि और उनके काव्यों के पश्चात् चैतन्य सम्प्रदाय के प्रमुख भक्त कवियों और उनकी कृतियों पर दृष्टिपात करते हैं। चैतन्य महाप्रभु का समय १६ वीं शती माना जाता है। इन्होंने चाहे स्वयं किसी ग्रंथ विशेष की रचना नहीं की परन्तु इनके कारण कृष्ण भक्ति काव्य में प्रचुर साहित्य का निर्माण हुआ। यह साहित्य कई प्रकार का है। चैतन्य के सहकारी और भक्तों में अनेक भक्तकवि हुए जिनमें नित्यानन्द, अद्वैतप्रभु, हरिदास जी, श्री वास पंडित, नरहरि सरकार, गदाधर पट्ट, स्वरूपदामोदर, राय रामानन्द और लोकनाथ चक्रवर्ती आदि प्रमुख हैं।

चैतन्य की भक्ति पद्धति का प्रेरणाश्रोत भी भागवत पुराण ही रहा है। कृष्ण के साथ राधा की भक्ति पद्धति को भी चैतन्य ने महत्व दिया है। यद्यपि चैतन्य सम्प्रदाय की आधारशिला के निर्माण में रूपानेस्वामी और जीव गोस्वामी का बड़ा हाथ रहा है। परन्तु चैतन्य की स्वयं की वास्था निम्बार्क सम्प्रदाय के द्वैताद्वैतवाद पर अधिक रही थी। चैतन्य सम्प्रदाय के दार्शनिक पदा का यों तो वल्लभ सम्प्रदाय का कोई प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु वल्लभ सम्प्रदाय की माधुर्य भाव की भक्ति में चैतन्य सम्प्रदाय की

कीर्तन पद्धति का अनुकरण किया जाने लगा । रूपगोस्वामी द्वारा रचित उज्ज्वल नीलमणि के आधार पर ही नन्ददास जी ने 'रसमंजरी' की रचना की ।

यों तो चैतन्य सम्प्रदाय में प्रचलित कीर्तन आदि के अतिरिक्त कुछ रचयिताओं ने भी महाप्रभु से सम्बन्धित रचनार्य की परन्तु चैतन्य सम्प्रदाय के अथवा उससे प्रभावित ब्रजभाषा के कुछ ही कवियों की रचनार्य प्रकाश में आई ।

गदाधर भट्ट तथा उनकी कृतियाँ :

ये राधा कृष्ण के अनन्य भक्त थे । भक्त माल में इनका परिचय विस्तार से उपलब्ध है। वहाँ इनके विषय में कहा गया है कि ये अत्यन्त दयालु , सुन्दर गुणों वाले तथा सन्तों को सुख प्रदान करने वाले थे ।

इनके पद अत्यन्त सुन्दर हैं वैसे इनके किसी स्वतन्त्र ग्रंथ का पता नहीं चलता । इनके पदों में अनुराग व भक्ति का सुन्दर विवेचन हुआ है।

प्रियादास जी तथा उनकी रचनार्य :

प्रियादास जी नामादास जी के शिष्य थे । उन्हीं के आदेश पर उन्होंने 'भक्तमाल की टीका' लिखी । माल ही वे चैतन्य सम्प्रदाय में सम्मिलित न हों पर महाप्रभु चैतन्य के प्रति उनकी अनन्य श्रद्धा व भक्ति थी ।

राधावल्लभ सम्प्रदायः कवि और कृतियाँ :

चैतन्य सम्प्रदाय के बाद कृष्ण भक्ति साहित्य में राधावल्लभ सम्प्रदाय और उसके प्रवर्तक का नाम जाता है। हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य की प्रेरणा और प्रोत्साहन प्रदान करने वाले सम्प्रदायों में राधावल्लभ सम्प्रदाय अन्यतम है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हितहरिवंश जी थे ।

गोस्वामी हितहरिवंश :

गोस्वामी जी का जन्म विक्रम सं० १५५६ में वैशाख शुक्ल एकादशी सोमवार को प्रातः सूर्योदय के समय हुआ^१। वाचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा श्री वियोगी हरि जी ने भी उनका जन्म काल संवत् १५५६ ही स्वीकिया है। कुछ विद्वानों ने सं० १५३० भी उनका जन्म सं० ठहराया है :

शुभ पन्द्रह सौ तीस, वैशाखी सुदिग्यास को ।

फूट्टे रसिकन धीस , बाद ग्राम सुहावने ॥ ४

परन्तु वियोगी हरि जी ने इस मत का विरोध करते हुए उनका लीला संवरण सं० १६५० के लगभग स्वीकार किया है।^५

कृतियाँ :

हित हरिवंश जी को रससिद्ध कवि माना जाता है।

१- वाणी श्री मधुरानन्द - पृ० ३

२- हिन्दी साहित्य का इतिहास- रामचन्द्र शुक्ल पृ० १७४

३- ब्रजमाधुरी सार- वियोगीहरि - पृ० ६२-६४

४- श्री हितायन - हितहरिवंश ललित शरण पृ० १७

५- ब्रजमाधुरी सार, वियोगी हरि पृ० ६२-६४

इसीलिए उनकी रचनाओं में दार्शनिकता और सैद्धान्तिकता का सर्वथा अभाव है। इनका सम्प्रदाय साधनपक्षीय भक्ति सम्प्रदाय माना जाता है। साधन पक्ष में भी इसमें केवल माधुर्य भाव के एक विशिष्ट रूप को ही अपनाया गया है। हित हरिवंश जी द्वारा रचित अनेक रचनार्य हैं जिनमें राधा सुधानिधि, हित चौरासी, यमुनाष्टक , स्फुटवाणी आदि प्रमुख हैं।

“ राधासुधानिधि ” २७० श्लोकों का संस्कृत का एक स्तोत्र काव्य है। इसमें राधा की वन्दना, उपासना, सेवा , पूजा, मन्त्र और सामीप्य आदि का वर्णन है। राधा की इस ग्रंथ की इष्ट आराध्या के रूप में वर्णित है।

“ हित चौरासी ” हरिवंश जी के चौरासी पदों का संग्रह है। इनमें रास, वन विहार, स्नान, शृंगार, बसन्त, होली, राधा के रूप वर्णन आदि से सम्बन्धित पद उपलब्ध हैं। राधा वल्लभ सम्प्रदाय का मूल ग्रंथ यही माना जाता है। इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्राचीन प्रति सत्रहवीं शती की प्राप्ति है।

“ हित हरिवंश जी ” की “ स्फुट वाणी ” एक स्वतन्त्र ग्रंथ सा है। स्फुट वाणी में प्रेम की अनन्यता, राधा भक्ति आदि विषयों का प्रत्यक्ष रूप से प्रतिपादन हुआ है।

हरिवंश जी के बाद श्री सेवक जी का राधा वल्लभ सम्प्रदाय में बहुत महत्व है। उन्होंने हरिवंश जी के प्रति साम्प्रदायिक ढंग से भक्ति भावना प्रकट करने के अतिरिक्त राधावल्लभीय इस रीति को स्पष्ट करने का प्रयास किया है सर्व रसिक भक्तों के लक्षणों का भी निरूपण किया है।

श्री सेवक जी के परचात् इस सम्प्रदाय के अनुयायियों में श्री हरिराम व्यास जी का नाम जाता है। उन्होंने राधावल्लभ मत के सिद्धान्तों का विवेचन तो किया ही साथ ही साथ साधारण भक्ति मार्ग के स्वरूप का भी स्पष्टीकरण किया है। श्री व्यास जी ने राधावल्लभीय उपासना के सार निम्न विहार दर्शन को अपने काव्य का भरदण्ड बनाया और इसी निर्कूज लीला का गान करते हुए निम्नविहारी राधा माधव की इषि को निहारने की कामना में लीन रहे। उन्होंने इस विहार सम्बन्धी जो पद लिखे हैं उनसे इसी तथ्य का पता चलता है कि दार्शनिक मतवाद की ओर उनकी कोई रुचि नहीं थी।

श्री चतुर्भुजदास तथा ध्रुवदास जी भी राधावल्लभ सम्प्रदाय के भक्त कवियों में अन्यतम रहे हैं। चतुर्भुजदास जी ने 'द्वादश यश' नामक ग्रंथ का प्रतिपादन किया जिसमें बारह पृष्ठ २ यशों का वर्णन है। इन द्वादश यशों में मूल रूप से भक्ति का ही प्रतिपादन किया गया है। प्रत्येक यश प्रेम लक्षणा भक्ति की पुष्टि में लिखा गया प्रतीत होता है।

ध्रुवदास जी ने व्यालीस ग्रंथों का निर्माण किया। जो कि 'व्यालीस लीला' नाम से व्यवहृत होते हैं। इन ग्रंथों में विविध शास्त्र, स्मृति, पुराण आदि का सार संकलित है। राधावल्लभ सम्प्रदाय में मधुराभक्ति का जो रूप गृहीत हुआ, वही उन्होंने अपने व्यालीस ग्रंथों में अपनाया।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में उपर्युक्त कृष्ण भक्तों के अतिरिक्त श्री नेही नागरीदास, श्रीवृन्दावन दास, श्रीकल्याण गुजारी, रसिक दास आदि ने भी प्रेमा भक्ति का प्रतिपादन करके सम्प्रदाय में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

सही सम्प्रदाय के कवि :

स्वामी हरिदास :

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी थे ।
उन्होंने अन्य महान् कवियों के समान पद रचना की । ये पद उन्होंने कवित्व
प्रदर्शन के लिये नहीं अपितु हृदयोद्गारों के प्रकटीकरण के हेतु लिखे हैं।

जन्मकाल :

महान् रसामृत सिन्धु ग्रंथ के आधार पर उनका जन्म
वृत्तान्त कुछ इस प्रकार बतलाया गया है कि ये सनाढ्य ब्राह्मण थे तथा कोल
के समीप हरिदास पुर के निवासी थे । उनकी जन्मतिथि के विषय में मतभेद
है कोई उनका जन्मकाल भादों सुदी अष्टमी संवत् १४४१ मानते हैं तो कोई
उनका जन्म संवत् १४८५ । परन्तु इतना निश्चित है कि अकबर के बादशाह
होने से पूर्व ही उनकी प्रसिद्धि चारों ओर फैल चुकी थी । इसी प्रकार यह
भी अनुमानाश्रित है कि ये सनाढ्य ब्राह्मण थे क्योंकि उनके मामा विठ्ठल जी
सनाढ्य थे जैसा कि सहचरिण जी ने लिखा है :

“बीठल विपुल सनाढ्य धन धर्म पताका ।

श्री गुरु कुल जनन्य कृष्ण जनु ससि राका ।” १

रचनायें :

विहार विषयक उनकी पदावली कैलमाला नाम से
प्रसिद्ध है।

१- भागवत सम्प्रदाय (प्रथम संस्करण) पृ० ३५१ - बलदेव उपाध्याय

२- ब्रजमाधुरी सार - अष्टम संस्करण पृ० ६२

३-

..

..

विट्ठल विपुल :

ये स्वामी हरिदास जी के मामा और उन्हीं के शिष्य थे । उनके पद बहुत सरस व ललित हैं। नामादास कृत भक्तमाल^१ में उनके विषय में कहा गया है कि ये लीला रसिक और गुरु निष्ठ थे ।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरदास टट्टी सम्प्रदाय के भक्तों की वाणियों की हस्तलिखित प्रति में उनकी वाणियाँ दी हुई हैं। उनके पदों को देखकर उन्हें 'रस का सागर' कहना उचित जान पड़ता है। उनके 'वाणी संग्रह' में कुंज बिहारी और स्वामिनी जी की लीलाओं का सरस वर्णन है। भूला भूलना, मान करना, परस्पर होड़ लगाना, आपस की नोक भोंक का अन्यन्त ही सुन्दर वर्णन उनके पदों में मिलता है।

विहारिनिदास :

इनके जीवन के विषय में कुछ पता नहीं चलता । टट्टी सम्प्रदाय की शिष्य परम्परा में ये विट्ठल विपुल के बाद आते हैं। उनके पद संग्रह की हस्तलिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरदास है जिसमें कुछ पद तो सैद्धान्तिक हैं, कुछ भक्ति भावपूर्ण और कुछ युगल रूप और उनकी क्रीड़ाओं के ललित विवेचन से युक्त ।

नागरीदास :

जीवन सम्बन्धी इनका भी कोई वृत्तान्त उपलब्ध नहीं । इनके कविच और कूडलियाँ छन्दों में कुछ सिद्धान्त विषयक पद हैं और कुछ युगल रूप की लीलाओं से सम्बद्ध । इन्होंने अपने गुरु विहारिनिदास तथा सखी सम्प्रदाय के प्रवर्तक का बार बार स्मरण किया है। मिश्रबन्धु विनोद^१ में उन्हें स्वामी

पीताम्बरदास जी का शिष्य बनाया गया है।

रचनार्थ :

मिश्रबन्धु विनोद^१ के अनुसार इन्होंने पीताम्बरदास जी के पदों की टीका लिखी है वहाँ पर यह भी कहा गया है कि इन्होंने स्वामी हरिदास, बिहारिनिदास, विट्ठल विपुल, तथा स्वयं अपने पदों की भी विस्तृत टीका लिखी।

सरसदास जी :

इनके पद संग्रह की हस्तलिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है, जहाँ से इनके पद प्रारम्भ होते हैं, वहाँ लिखा हुआ है "जय श्री सरसदास जी की बानी लिख्यते", दूसरे बाद परम उज्ज्वल सिंगार के पद लिखकर अब पद दिये गये हैं।

नवलदास जी :

मिश्रबन्धु विनोद^२ में इनका नाम "नवलदास वृन्दावन" बनाया गया है तथा इन्हें नागरीदास जी का शिष्य मानकर, इनकी वाणियों का रचनाकाल सं० १८०० माना गया है^३।

इनके जी पद प्राप्त हैं वे सखी सम्प्रदाय के भक्त कवियों के पदों में ही उपलब्ध हैं। इस संग्रह की भी सुरक्षित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में है।

१- मिश्रबन्धु विनोद पृ० ७८६

२- ,, ७५४

३- ,, ७५४

श्रीकृष्णदास जी :

काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सखी सम्प्रदाय के भक्तों की वाणियों की हस्तलिखित प्रति में श्रीकृष्णदास जी के कुछ पद उपलब्ध हैं। वहाँ पर उन्हें नागरीदास जी का शिष्य कहा गया है। इनके कुछ पद भक्तिभावपूर्ण हैं और कुछ वृन्दावन की सहज शोभा से युक्त ।

नरहरिदास :

एफ० एस० ग्राउस की सखी सम्प्रदाय वाली शिष्य परम्परा की सूची में इनका स्थान नवलदास के बाद है, लेकिन भागवत सम्प्रदाय में इनका क्रम सरसदेव जी के बाद है। भागवत सम्प्रदाय में इनका नाम नरहरि देव दिया हुआ है। इनके कुछ पद सैद्धान्तिक हैं और कुछ भगवान् की रूपराशि से सम्बन्धित ।

उपरोक्त भक्तों के अतिरिक्त रसिकदास जी , किशोरी दास जी, भगवतरसिक तथा सहचरिशरण वादि भी सखी सम्प्रदाय की शिष्य परम्परा में आते हैं। भगवत रसिक जी की पाँच रचनायें बनाई जाती हैं :

- १- अनन्य निश्चयात्मक
- २- नित्य बिहारी युगल ध्यान
- ३- अनन्य रसिकाभरण
- ४- निश्चयात्मक ग्रंथ उत्तरार्ध
- ५- निर्बोध मन रंजन

सहचरिशरण जी की ललित प्रकार और 'सरसमंजसली' दो स्वतन्त्र रचनायें हैं। इसके अतिरिक्त उनकी फुटकल रचनायें भी उपलब्ध हैं।

सम्प्रदायबद्ध कवियों के अतिरिक्त कुछ सम्प्रदाय मुक्त कृष्ण भक्त कवियों ने भी काव्य रचना की जिनमें प्रमुख रूप से रसखान व मीरा का नाम आता है। रसखान के काव्य का रचनाकाल संवत् १६१४ माना जाता है। उनके काव्य में मधुरभाव का उपासना है। उनके द्वारा रचित किसी प्रबन्ध काव्य का पता नहीं चलता केवल दो छोटी छोटी पुस्तकें 'प्रेम वाटिका' और 'सुखान रसखान' उपलब्ध होती हैं परन्तु अब इन्हीं पुस्तकों के आधार पर उन्हें पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त हुई है।

मीरा का जन्म सं० १५५५ के आस पास माना जाता है। उनके समय में बहुत से सम्प्रदाय प्रचलित थे पर उन्होंने किसी सम्प्रदाय विशेष में दीक्षित न होकर स्वतन्त्र रूप से कृष्ण भक्ति सम्बन्धी पदों का गायन किया। निम्न रचनार्थ उनके नाम से प्रसिद्ध बनलाई जाती हैं। नरसी जी का मायरा, गीत गोविन्द की टीका, मीरानी गरबी, मीरा के पद तथा राम गोविन्द आदि। रायबहादुर पं० गौरी शंकर हीराचन्द बोफा ने लिखा है कि "उनका बनझा हुआ मीरा बाई का पलार" नामक राग अब तक प्रचलित है। इस प्रकार मीराबाई की अनेक रचनाओं का पता चलता है पर उनके सभी ग्रंथों का प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ, बहुत सी रचनाओं को तो लिपिबद्ध करने की ही चेष्टा नहीं की गई। हाँ, उनकी रचनाओं के छोटे मोटे संग्रह बाजारू पुस्तकों के रूप में उपलब्ध हैं।

अतः सम्प्रदाय मुक्त कृष्ण भक्त कवि रसखान व मीरा भी कृष्ण भक्त कवियों की श्रेणी में श्रेष्ठ स्थान के अधिकारी हैं।

१- राय बहादुर गौरी शंकर हीराचन्द बोफा- राजपूताने का इतिहास

प्रथम खण्ड पृ० ३१

सप्तम अध्याय

सुफी प्रेम पद्धति और कृष्ण भक्त कवियों की प्रेम पद्धति में

साम्य

सूफी प्रेम पद्धति और कृष्ण भक्त कवियों की प्रेम-पद्धति में साम्य :

सूफियों तथा कृष्ण भक्त कवियों ने प्रेम मार्ग को ही ईश्वर प्राप्ति का साधन बनाया है। यद्यपि ईश्वर सम्बन्धी धारणाओं के अनुसार दोनों के प्रेम के स्वरूप में अन्तर अवश्य जागया है, परंतु मूलतः मार्ग समान होने के कारण दोनों की प्रेम-पद्धति में साम्य भी दृष्टिगत होता है।

लौकिक प्रेम की अलौकिक प्रेम में परिणति :

अज्ञान और अव्यक्त के प्रति जिज्ञासा का भाव जागृत हो सकता है तालसा अथवा प्रेम का नहीं। वाचार्य शुक्ल ने अपनी “काव्य में रहस्याद” नामक पुस्तक में (पृ० ११) इस भावना को व्यक्त किया है। उनकी यह धारणा किसी सीमा तक सही भी है क्योंकि अव्यक्त के प्रति प्रेम हो ही नहीं सकता। अव्यक्त सत्ता के व्यक्त प्रतीकात्मक माध्यम से अमिव्यक्तीकरण द्वारा यह संभव हो सकता है। अव्यक्त सत्ता का अमिव्यक्तीकरण ही लौकिक प्रेम के रूप में परिणत हो जाता है परन्तु यह लौकिक प्रेम व्यक्ति का व्यक्ति के लिए आकर्षण मूलरूपेण उसी व्यापक प्रेम का स्वरूप है। अतः लौकिक प्रेम में आध्यात्मिक सत्व है। ज्ञान के माध्यम से ही अज्ञान की कल्पना सम्भव है। लौकिक प्रेम उपेक्षाणीय नहीं, अपितु लौकिकता, सांसारिकता और मायिकता उपेक्षा के योग्य हैं। इसीलिए सगुण भक्तों ने व्यक्त के प्रेम को ग्रहण किया है जिसमें अव्यक्त का आभास और

अपरिमित विस्तार है। प्रेम के अव्यक्त स्वरूप की अभिव्यक्ति ही अव्यक्त के प्रेम के रूप में हुई। उस अव्यक्त स्वरूप का अभिव्यक्तीकरण मानवीय प्रेम ही पूर्ण विकास पाकर ईश्वरीय प्रेम में परिणत हो जाता है।

सूफियों तथा कृष्ण भक्त कवियों की यही समन्वित धारणा है। 'इश्कमजाजी' ही 'इश्कइकीकी' का प्रथम सोपान है, ऐसा सूफी साधकों का दृढ़ विश्वास है। सूफी साधक प्रेम और रूप का चिर सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। इसीलिए सूफी प्रेम कथाओं में प्रेम का आविर्भाव अधिकशः रूप दर्शन या गुण दर्शन से माना जाता है। यह रूप दर्शन स्वप्न में, चित्र में और कभी कभी साक्षात् मिलन के रूप में भी हुआ है और इसका आधार उन्होंने मानव को माना है। मानव जिसे सूफियों ने प्रेम से पूर्ण माना है, ईश्वर की प्रतिच्छवि है, इस कारण उसमें भी ईश्वर के गुण विद्यमान हैं। प्रतिच्छवि के द्वारा ही उसके मूल को प्राप्त किया जा सकता है। अतः सूफियों ने ईश्वर प्राप्ति के लिए मानव को चुना। परमेश्वर अनन्त सौंदर्य से पूर्ण है और मानव उस सौंदर्य का बिन्दुमात्र है। यही बिन्दु उस ईश्वर के अपरिमित सौंदर्य का परिचायक है। इस परम सत्य का आवरण सूफियों ने अपने काव्य में स्थान स्थान पर किया है। महाकवि जायसी ने अपने पदमावत में पदमावती के अनन्त सौंदर्य का वर्णन किया है।

“ नैन जो देता कवल भा, निरमल नीर सरीर ।

हंसत जो देता हंस भा, ज्योति दहन नग हीर ॥

- जायसी ग्रंथावली- आचार्य शुक्ल -पृ० २५

“ सरवर रूप बिमोहा, हिए हिलोरहिं लेह ।

पाव कुवै महु पावौ, एहिमिसि लहरहिं देह ॥

- जा० ग्रंथावली -अन्वय शुकल- पृ० २४

सूफी संत मकन भी ईश्वरीय सौंदर्य को समस्त सृष्टि में व्याप्त देखते हैं। उस अनन्त सौंदर्य रूप परमेश्वर का सौंदर्य संपूर्ण जगत् में परिव्याप्त है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र सभी उस ज्योतिर्मान की ज्योति से प्रकाशित हैं। यही रूप सर्वत्र, सभी वस्तुओं में विद्यमान है :

“ एही रूप प्राट बहु मेसा, एही रूप जग रैक नरेसा ॥

एही रूप त्रिभुवन पर, कसी महि पाताल क्कास ।

सौई रूप प्राट तहै, मानहीं देखी कहीं हवास ॥

एही रूप प्राट बहु रूपा, एही रूप जेहि माव अनूपा ।

एही रूप सब नैनन्ह ज्योती, एही रूप सब सागर मौती ।

एही रूप सब फूलन्ह बासा, एही रूप रस मँवर बरासा ॥ ” १

प्रेम के स्वरूप के व्यक्तीकरण के हेतु ही सूफियों ने परम सत्ता को कण कण में व्याप्त दिखाया है। जीव जो असीम और न्यूनत्व से युक्त है उस असीम और पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त करना चाहता है जिसका वह बिन्दु-मात्र है।

इस प्रकार सूफियों का प्रेम लौकिक पदा से अलौकिक पदा की ओर अग्रसर होता है। व्यक्ति विशेष के प्रेम में पड़कर ही सूफी

१- मधुमालती - मकन - सं० शिवगोपाल मिश्र- पृ० ३८

परम प्रेम का अनुभव तथा हुस्नपरस्ती में अल्लाह के जमाल का साक्षात्कार करते हैं। इस साक्षात्कार के हेतु वे स्त्री को अपने प्रेम का प्रतीक स्वीकार करते हैं। अरबी जैसे मनीषी का कथन है कि 'अल्लाह कभी अमूर्त रूप में दर्शन नहीं देता, स्त्री रूप में ही उसका साक्षात्कार उच्च है'।^१

सूफी रति को महत्त्व प्रदान करते हैं और हुस्न को रति का आलम्बन मानते हैं। क्योंकि सौंदर्य का साक्षात्कार होने पर हम स्वयं ही उसकी ओर आकर्षित हो जाते हैं और यह आकर्षण अलौकिक होने पर भवसागर से पार करने में सहायक होता है। यही कारण है कि जामी और रूमी जैसे सिद्ध सूफियों ने भी परमात्मा में मन लगाने के लिए किसी सुन्दर वस्तु से प्रेम करने का आग्रह किया है। परन्तु वे उस सुन्दर वस्तु को प्रेम का वाहक समझते हैं, आलम्बन नहीं। सूफी प्रेम गाथाओं में इस प्रकार का प्रेम द्रष्टव्य है। नायक नायिका के सौंदर्य पर मोहित होकर मिलन के लिए विवश हो जाता है और फिर लक्ष्य प्राप्ति के हेतु सर्वस्व त्यागकर कठिन तप, बाधाओं को सहर्ष सहन करने के लिए तत्पर हो जाता है। विघ्न बाधाओं को फेलना हुआ वह अग्रसर होता है और सफलता प्राप्त कर पुनः अनेक अड़चनों को पार कर स्वदेश प्रत्यावर्तन करता है। ऐसी प्रेम गाथाओं के रचयिताओं ने इसी मूल सूत्र के आधार पर सभी रचनाओं का ढाँचा तैयार किया है और उन लौकिक प्रेम गाथाओं के आधार पर अन्त में उसे सफलता ही मिलती है। सूफी प्रेम गाथाओं में भी नायिका की प्राप्ति के हेतु नायक को कम बाधाओं का सामना नहीं करना पड़ता है पर अन्तर्लोकत्वा उसे सफलता की ही उप-

लब्धि होती है। साधक सृष्टि के सौंदर्य को देखकर ही कर्ता के रूप का स्मरण करता है। इस प्रकार पहले वह सृष्टि रूप की ओर वाकर्णित होता है और फिर इसके निर्माता की ओर -

‘ जेहिक नित्र अस जिउ लेनिहारा ।

दुहुँ कस होइहि सिखनह हारा ॥ ’ १

अतः सूफियों के प्रेमारम्भ का मूल कारण रूप सौंदर्य है जो वस्तुतः सुधा के तूर की ओर सँकेत करता है। ईश्वरीय सौंदर्य की अवतारणा अधिकांश सूफियों ने नायिकाओं के माध्यम से की है। यह सौंदर्य ही साधक को साधना की ओर प्रेरित करता है और अन्त में इसी सौंदर्य की साधना उसे परमेश्वर में अवस्थित कर देती है। यही कारण है कि सूफी महाकवि जायसी जाने पदमावती के अन्त में संपूर्ण ग्रंथ को ही एक बृहत् अन्योक्ति मात्र मान लेते हैं। पदमावती और रत्नसेन की कहानी केवल नाम के लिए कहानी है। वास्तव में न कोई पदमावती स्त्री है और न रत्नसेन राजा। सम्पूर्ण कथानक आध्यात्मिक है जिसमें निर्वैद शरीर है, रत्नसेन मन है, सिंहगढ़ हृदय है और पदमावती बुद्धि है :

‘ तन चैत उर मन राजा कोन्हा, हिय सिंहल बुधि पदमिनि चीन्हा ।

गुरु सुवा जेहि पथ दिसावा, विनु गुरु जगत को निरगुन पावा ॥

नागमली यह दुनियाँ धन्धा, बाँचा सोइ न रहि चिह्न बंधा ।

राघवदूत सोइ सेतानू, माया अलादीन सुलतानू ॥ २

१- चित्रावली- उसमान

२- जायसी ग्रंथावली- सं० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- पृ० ३०१

इसके अतिरिक्त कथानक के मध्य में भी अवसर पाने हो जायसो अलौकिक दौत्र की बातें करते हुए प्रतीत होते हैं। सिंहल गद् की अमराई के वर्णन में वे कहते हैं :

“ जेहि पाई यह छाह अनुपा ,
सो नहिं वाइ सई यह धूपा ॥ ” १

सूफियों के समान कुछ वैष्णव भक्त कवि भी अलौकिक प्रेम की प्राप्ति के लिए अलौकिक प्रेम की आवश्यकता स्वीकार करते हैं।

सहजिया सम्प्रदाय वाले वैष्णवों ही धारणा कुछ इसी प्रकार की है। वे अलौकिक प्रेम प्राप्ति के हेतु परकीया भाव मानते हैं। यद्यपि बल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियों ने स्वकीया के आदर्श को स्वीकार किया है परन्तु व्यावहारिक दौत्र में वे भी बंगीय वैष्णव शाखा से प्रभावित जान पड़ते हैं। तभी तो शब्द चन्द्रिका में मुरली के मधुर स्वर के आवाहन पर गीष्पि कार्य समस्त गृह-कार्यों का परित्याग कर कार्य मर्यादा का उल्लंघन करके यमुना पुलिन पर जा पहुँचती हैं। सूर ने प्रस्तुत कृटा का वर्णन अति मनमोहक शब्दों में किया है :

“ जबहिं बन मुरली भवन परी ।
चक्रत मई गीष कन्या सब काम धाम बिसरी ॥
कुल मरजाद वेद की आशा नेकहु नाहिं डरी ॥
जो जेह भाँति चली सो तैसेह, निशि बन, कुँज, सरी ।
सुत पति नेह, भवन, जन रंका, लज्जा नाहिं करी ॥ २

१- जायसी ग्रंथावली- वाचायं रामचन्द्र शुक्ल- पृ० ११
२- भागवत सम्प्रदाय- बलदेव उपाध्याय- पृ० ४८१
३- सूर सागर- बागरी प्रचारिणी सभा, पद सं० १६१८

उक्त गीत में सूर ने कुल मर्यादा , वेद की आज्ञा, सुत- पति-स्नेह , भवन जन शंका आदि के परित्याग का उल्लेख किया है। वह परकीया प्रेम को ही व्यक्त करता है। गोपियों की जो वृत्ति संसार में रमण कर रही थी वह वेणु वादन का स्वर सुनने ही आध्यात्मिकता की ओर ला गई । गोपियों का श्रीकृष्ण के समीप जाना अध्यात्म पदा में जीवात्मा का परमात्मा की ओर उन्मुख होना है। रासलीला लौकिक पदा में भू तो प्रेमी और प्रेमिका का मिलन ही है परन्तु अलौकिक पदा में श्रीकृष्ण परमात्मा हैं और राधा तथा गोपियाँ अनेक जीवात्मा । वृन्दावन सहस्रदल कमल है जहाँ आत्मा और परमात्मा का मिलन होता है। मुरली को भी आध्यात्मिक दोत्र में परब्रह्म का शब्द रूप माना है। रासलीला के सदृश ही माखनचोरी, चोरहरण, और दान लीला को भी भागवत कार ने आध्यात्मिक रूपक प्रदान किया है। अलौकिक पदा में भक्त, जीवात्माओं के समस्त पुण्यों का फल है। भगवान् भक्त के इसी सुकृष्ट पर अनुरक्त हैं। इसी प्रकार चोर हरण लीला, आत्मा का माया के समस्त आवरणों से रहित होकर परमात्मा से मिलन है। इसमें समर्पण की प्रमुखता है, जिसमें अपना कुछ भी नहीं रहना, सर्वस्व प्रभु के अर्पण हो जाता है।

इस प्रकार वैष्णव भक्त कवियों ने भी लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम को व्यक्तना को है। इस प्रेम को निसरा हुआ रूप प्रदान करने के लिए ही सहजिया सम्प्रदाय वालों ने परकीया के भाव को अपने काव्य में स्थान दिया है। महाभारत, विष्णु पुराण एवं हरिवंश पुराण में कृष्ण की स्त्रियों के नाम दिए गए हैं, पर उनमें राधा का नाम उपेक्षित है। तो क्या राधा परकीया हैं ? सूर राधा को परकीया मानने के पदा में नहीं ।

उन्होंने सूरसागर में राधाब और कृष्ण का विवाह बड़ी धूमधाम से कराया है। परन्तु कहीं कहीं वे चैतन्य सम्प्रदाय वालों से भी प्रभावित जान पड़ते हैं। जैसे स्वकीया और परकीया दोनों शब्द लौकिकता के ही सूचक हैं और वैष्णव सम्प्रदायों में अधिकतर स्वकीया और परकीया का आदर्श सम्मिलित है। यहाँ पर राधा-कृष्ण और गोपियों का आधार ग्रहण कर लौकिक प्रेम को जलौकिक रूप में ढालने का प्रयास किया है। परन्तु वैष्णव भक्तों और सूफियों के प्रेम में यहाँ पर कुछ वैषम्य है। सूफियों ने जहाँ जलौकिक प्रेम प्राप्ति के हेतु लौकिक पात्रों को चुना है वहाँ कृष्ण भक्तों ने अपनी पात्रों को जलौकिकता प्रदान की है।

साधन निरपेक्षता :

सूफी तथा कृष्ण भक्त दोनों ही प्रेम के समस्त धार्मिक कर्मकाण्डों को व्यर्थ मानते हैं। सूफी हृदय की शुद्धि या कल्ब के परिमार्जन को महत्वपूर्ण मानते हैं। सारे कर्मकाण्ड, कर्तव्य, भावना या बुद्धि विलास का परित्याग कर वे हृदय में निरन्तर प्रियतम का ही ध्यान किया करते हैं। हृदयस्थित प्रियतम की मूर्ति को वे कण कण में व्याप्त देखते हैं। हृदय और नेत्र का मूर्ति में उन्हें कोई अन्तर नहीं दिसाई देता। यथा -

“जब एक मूर्ति हिये समानी । दूसर कहाँ बिलोके जानी ।

जो मन बीच नैन में सोई । कहाँ लौ भल दूसर कोई ॥ १

मक्का, मदीने जाना, हज करना और नमाज पढ़ना
आदि समस्त कर्मकाण्ड व्यर्थ हैं, यदि हृदय शुद्ध नहीं है। शुद्ध हृदय से अगर

परम सत्ता का ध्यान नहीं किया जाता तो परमेश्वर की अनुकम्पा प्राप्त नहीं हो सकती। केवल कर्मकाण्ड ही में रत रहने वाला व्यक्ति उस तरीकेदार के समान है जो किसी भी मूल्य पर कर्ता को प्राप्त नहीं कर सकता।

“ मबके गर, हज्ज कर जार । कपटी मन फिर संग लाए ।

मबके जार्य मदीनि जार्वे । तरीददर एब का ना पार्वे ॥ १

ज्ञान, ध्यान, जप, तप, नियम और संयम सबका महत्त्व प्रेम के समकक्ष है। संसार में वही व्यक्ति श्रेष्ठ है जो प्रेम का प्रतिपालन करता है :

“ ज्ञान ध्यान मद्धिम सबै, जप, तप, संयम नेम ।

मन सौँ उचम जगत जन, जो प्रतिपारै प्रेम ॥ २

सूफी प्रेम को ही धर्म, कर्म, यहाँ तक कि संसार का आधार मानते हैं। कदाचित् इसी कारण जायसी प्रेम की सर्वव्यापकता के विषय में अपनी धारणा व्यक्त करते हैं :

“ तीन लोक चौदह सँढ, सबै पर मोहि सूफि ।

प्रेम क्वाँड़ि नहिँ लीन कहु, जो देखा मन बूफि ॥

२

२

सच्चे प्रेमी को प्रिय प्राप्ति के मार्ग में न भय रहता है और न लज्जा -

१- शैख रहीम, प्रेम रस

२- उसमान- चित्रावली - पृ० २३६

“ हर लज्जा तहाँ दुवौ गंवानी । देखे किछु न जाग औ पानी ॥ ” १

इस प्रकार सच्चे प्रेम का स्थान सर्वोत्कृष्ट है। उसकी भावना भागीरथी की मूर्ति समस्त पापों का प्रदालन करने वाली है-

“ ऊँचा बैठक प्रेम का जो रहीम सत् होय ।

सो पावै संशय नहीं, जाय पाप सब धौय ॥ ” २

सूफियों के अनुसार हृदय में प्रेम के उत्पन्न हो जाने पर संसार का समस्त ज्ञान तुच्छ हो जाता है। यहाँ तक कि वेद पुराणों का ज्ञान और कर्मकाण्ड सभी कुछ हेय प्रतीत होते हैं। प्रेम के ज्ञान से हृदय में जो प्रकाश होता है उसके सम्मुख जगत् का ज्ञान व्यर्थ है। प्रेम मद मत्त व्यक्ति कभी चेतना को प्राप्त नहीं होता । ज्ञानियों की वहाँ पहुँच नहीं । प्रेम रोग राज रोग सदृश है जो कम होने के स्थान पर निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता रहता है :

“ जेहि के हृदय प्रेम परकासा, का तेहि बुद्धि ज्ञान का आसा ।

प्रेम गुरु का जो भा चेला, वेद पुरान अग्नि लै भेला ।

प्रेम बावला मयी न चंगा, जानिन करे तहाँ मति मंगा ।

जगत ज्ञान तेहि जागे चेरा, प्रेम ज्ञान चित करे उजेरा ।

प्रेम का ज्ञान जगत ते न्यारा, सिखै प्रेम ज्ञान गुन सारा ॥ ३

धूपी साधक, जिह्म, फिह्म, नमाज, समा,
जियारत, हज्ज, जकात, सौम, रोज़ा, अवराढ़, तिलवत आदि साधनों

१- पदमावत- वा० शरण अग्रवाल- पृ० १४४

२- शैख रहीम, - प्रेम रस

३- , , ,

को महत्व तो अवश्य देते हैं परन्तु वहीं तक जहाँ तक ये साधन प्रिय प्राप्ति में बाधक न हों। प्रिय प्राप्ति में बाधक होने पर सूफियों की दृष्टि में इन साधनों का कोई महत्व नहीं रह जाता। सूफी साधकों की प्रवृत्ति तो संघ, समाज आदि सभी संस्थाओं की उपेक्षाकर स्वच्छन्द रूप से प्रियतम की ओर बढ़ना और उसी में एकान्त भाव से रम जाना चाहती है।

सूफियों की भाँति वैष्णव भक्त कवि भी प्रेम में बाह्य विधि-विधानों और कर्म काण्डों को आवश्यक नहीं मानते। उनके निकट प्रेम ही सबसे बड़ा योग और तप है। समस्त चेतना का कृष्ण मय हो जाना ही वहाँ सच्चा ज्ञान है। लोक मर्यादा की दृष्टि से इस प्रकार के प्रेम को निन्दनीय समझा जाता है। परन्तु लगभग सभी वैष्णव भक्त कवियों ने आध्यात्मिक दृष्टि से इस प्रकार के भाव भरित प्रेम को महत्ता प्रदान की है। उन्होंने लोक दृष्टि से देखे गए बच्चे और बुरे दोनों प्रकार के संसार को पीछे छोड़ा है। विधि निषेध के भावों की उपेक्षा कर वे इस पार्थिव संसार से ऊँचे उठ गए हैं। यही कारण है कि परिवार, समाज और शास्त्र के नियम भी यदि प्रेम पथ में बाधक हों तो उनका उल्लंघन भी पाप नहीं बनता।

चैतन्य सम्प्रदाय में रागानुगा भक्ति की मान्यता तथा परकीया भाव की स्वीकृति है। रागानुगा भक्ति रागात्मिका का अनुसरण करती है^१ और रागात्मिका भक्ति वह होती है जो विधि निषेध

१- निज भिमत ब्रजराज नन्दनस्य सेवाप्राप्ति लोभेन यदि तानिर श्रवण, कीर्तनादीनि क्रियन्ते च तद् रागानुगा भक्ति ।

- विश्वनाथ चक्रवर्ती, भक्तिरसामृत सिन्धु

तथा- विराजन्तीम् अभिव्यक्तम् ब्रजवासी जनादिकु ।

रागात्मिकम् अनुसृष्टा या सा रागानुगीक्यते ॥

से परे होती है तथा जिसमें शास्त्र मर्यादा भी नहीं रहती। रागात्मिका साध्य स्वरूपा है और रागानुगा साधन स्वरूपा। रागात्मिका की प्राप्ति हेतु ब्रजवासियों का अनुगमन आवश्यक बतलाया गया है^१। अतः रागात्मिका और रागानुगा में मूलतः कोई भेद नहीं। रागानुगा भक्ति का एक मात्र आधार प्रेम होने के कारण वहाँ शास्त्रों और श्रुतियों के बन्धन स्वीकृत नहीं है। यह प्रेम समन्वित रागानुगा भक्ति लोक और कुल की मर्यादा का उल्लंघन कर तीव्रता के कारण वृद्धि को प्राप्त होती जाती है। कवि कर्ण-
पूर अपने "चैतन्य चन्द्रोदय, नाटक" में इस प्रकार की भक्ति का वर्णन निम्न शब्दों में करते हैं :

“ रागानुगा भक्ति प्रेम का अवलम्ब पाकर प्रवाहित होने वाली वह तीव्र वेगवन्ती धारा है जो किसी प्रकार का बन्धन स्वीकार न करके सामने आने वाली प्रत्येक वस्तु को बहासर ले जाती है। ”

राधावल्लभ सम्प्रदाय में भी प्रेम के समस्त जागतिक विधि विधानों अर्थात् जप, तप, यज्ञादि का कोई महत्त्व नहीं। नैम वहाँ प्रिय प्राप्ति में सहायक ही है बाधक नहीं। श्री हिनहरिवंश जी के सिद्धान्तों के सर्वप्रथम माध्यकार “ श्री सेवक जी ने अपनी “सेवक वाणी” में प्रेम तत्त्व को प्रधान मानकर साधना की दृष्टि से नियम पालन को व्यर्थ ठहराया है :

“ श्री हरिवंश जनिज जहाँ प्रेम, तहाँ कहाँ, ब्रत संयम नेमा। ” २

१- चैतन्य चन्द्रोदय, कवि कर्णपूर, तृतीय अध्याय सं० १६२०

२- सेवक वाणी, श्री हित विलास प्रकरण, हितामृत सिंधु, पृ० ८२

श्री चतुर्भुजदास जी ने अपने द्वादश यज्ञ नामक ग्रंथ में जागतिक विधि-विधानों का स्पष्ट रूप से सफ़्फ़न किया है। समस्त लोक लाज, कुल मर्यादा वादि कर्मकाण्ड का ही एक रूप है। अतः प्रेम पन्थ के पथिक को इन्हें छोड़ना आवश्यक है।

“ मारत हौ कल प्रेमहिं लाजनि ।

करत प्रेम, पै नेम न बिसरत, करत फिरत विधि कूल के काजनि
 पुरन प्रेम गनत गोपिन को सब कृत तजत जगत मई प्राजनि ॥
 तिनकै प्रेम प्यन मोहन भये तजि कै असिल लोक के राजनि ।
 हृदय बसति हरि, नेम गयीं डरि, प्रेम रह्यौ मरि विदित
 विराजनि ॥

इही रिणि सनीकन्त पति ज्यौं सरिता सागर हि समाजनि।
 प्रेम परै निकटे न चत्रभुज मुरलीधर वर करत निवाजनि ॥ ” १

साधना परक प्रेम के विषय में ध्रुवदास जी का कथन है कि जिस शरीर रूपी बन में प्रेम रूपी केहरी गर्जना है वहाँ नेम रूपी मृग, गज, गीदड़, विहग किस प्रकार अपना बसेरा बना सकते हैं। नेम के जाल में उलझे हुए साधक प्रेम मार्ग पर सरफ़ट नहीं दौड़ सकते । इस प्रकार मन से नेम का चक्कर दूर किए बिना प्रेम प्राप्ति संभव नहीं । ” २

हरिदासी सम्प्रदाय में प्रेम के लिए हृदय शुद्धि आवश्यक मानी गई है। परन्तु हृदय शुद्धि के निमित्त यहाँ एकान्त घोर बन में जाकर

१- चतुर्भुजदास - स्फुट पद

२- ध्रुवदास : प्रीति चौवनी लीला, पृ० ५८, ५९

कठोर साधना की आवश्यकता नहीं वरन् साधक गृह में रह कर घर की वस्तुओं से उपराम रखकर हृदय शुद्धि कर सकता है। स्वामी हरिदास जी इस प्रकार का जीवन यापन करते थे :

“ घर ही घर बन मयी कूँज, पुलि बिन रास ।

बिहारिदास हरिदास को जग ते रहे उदास ॥ ” १

वल्लभ सम्प्रदाय में प्रेम के सम्मुख साधन सापेक्षा भक्ति का कोई मूल्य नहीं । इस सम्प्रदाय की मान्यता है कि निर्विशेष सच्चिदानन्द ब्रह्म से प्रेम जितना सीधा स्पर्श करता है उतना साधन सापेक्षा भक्ति और ज्ञान नहीं करते । भक्ति और ज्ञान क्रमशः ईश्वरीन्मुख करते हैं पर प्रेम से तो तत्काल ही चुम्बक के आकर्षण सदृश जीवान्मा परमात्मा की ओर उन्मुख हो जाता है और तब प्रेम और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं रह जाता । जिसने प्रेम को पा लिया उसने प्रियतम को पा लिया । इसी प्रेम के वशीभूत हो गोपियाँ लोक मर्यादा और कुल कानि का उल्लंघन करती हुई दिखाई पड़ती हैं :

“ लोक सकुचि कुल कानि तजी ।

जैसे नदी सिंधु को धावे तैसे स्याम मजी ।

मात पिता बहु त्रास दिसाए नैकु न डरी लजी ॥

हारिमानि बैठे नहिँ लागनि बहु ते बुद्धि सजी ।

मानत नहीं लोक मरजादा हरि के रंग मजी ।

सूर श्याम को मिली जूना हरदी ज्यों रंग लजी ॥ २

१- बिहारिनदेव की वाणी, दोहा २२७

२- सूरसागर, दशम स्कन्ध- वै० प्र० पृ० २५६

“ तब ते और न कछु सुहाय ।

सुन्दर स्याम जबहि ते देखे सरिक दुहावन गाय ।

बावन हुती चली मारग सखी, हों अपने सतमाय ।

मदन गोपाल देखि कै एक टक रही छी मुरफाय ॥

बिसरी लोक लाज यह काजर बन्धु पिता अरु माय ।

दास चतुर्भुज प्रभु गिरिवर घर तन मन लियौ चुराय ॥ ” १

अतः वैष्णव भक्त कवि भी प्रेम के समस्त साधन सापेक्ष भक्ति और ज्ञान को महत्त्व नहीं देते । सूफी और कृष्ण भक्त कवि दोनों के ही अनुसार साधन और कर्मकाण्ड प्रेम प्राप्ति में सहायक होने पर ही मान्य हैं अन्यथा उनका कोई महत्त्व नहीं ।

प्रेम में तीव्रता :

सूफियों और कृष्ण भक्तों दोनों के ही प्रेम में तीव्रता पाई जाती है। प्रेम की तीव्रता को स्थायी रखने के लिए सूफी मिलन से अधिक विरह को महत्त्व प्रदान करते हैं। सच्चा प्रेम एक बार उत्पन्न होकर निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता है। प्रारम्भ में प्रेमानुभूति आनन्दप्रद होती है परन्तु विरह का प्रादुर्भाव होते ही जिन कष्टों की अनुभूति होती है वे प्रेम मार्ग को अत्यन्त दुःख बना देते हैं। प्रेम मार्ग की दुरुहता उसकी गति को रोकक नहीं पाती वरन् उसे तीव्र से तीव्रतर और तीव्रतर से भी तीव्रतम बनाने में सहायक होती है। रत्नसेन पदमावती को प्राप्त करने के

१- चतुर्भुज दास- पद संग्रह सं० प० न० ४०

लिए गृह त्याग कर देती है। मार्ग में अनेक बाधाओं को सामना करना पड़ता है पर वे बाधाएँ उसे उसके गन्तव्य से विचलित नहीं करती अपितु उसके प्रेम और पदमावती को जाने की आकांक्षा को तीव्रतर कर देती हैं। वह तो प्रेम-पयोधि को ऐसा अथाह मानना है कि जिसकी पार और थाह नहीं-

“ प्रेम समुद्र अँस अगगाहा । जहाँ न वार पार नहिं थाहा ॥

जौ वह समुद काह रहिं पौं । ज्यों अगगाह हँस होइ तिरे ॥ ” १

इसी प्रकार मँफन कृत मधुमालती में मधुमालती की प्राप्ति के लिए राजकुमार मनोहर द्वारा कृत प्रयत्न उसकी प्रेम-आकांक्षा की तीव्रता के ही द्योतक हैं। प्रेम मार्ग पर अग्रसर होने पर राज पाट, जीवन, यौवन किसी का भी मोह नहीं रहता -

“ राज पाट जो परिहरी, जिउ जोबन सोइ ।

चढ़ा प्रेम पँथ पेसा वहँ आगे का होइ ॥ ” २

प्रेम की तीव्रता के कारण प्रेमी को प्रिय का वियोग पल पल पर दुःख प्रदान करता है, परन्तु उसकी प्राप्ति के बिना प्रेमी के प्राण प्रयाण नहीं कर जाते कारण उसके प्राण प्रेम के अटूट धागों में उलझे रहते हैं।

“ प्रेम वियोग न सहि सकीं, मरीं ती मरे न जाइ ।

हुइ दूमर मो हों परी, दगधि दिया बुझाइ ॥ ” ३

१- पदमावत- वासुदेव शरण अग्रवाल- १४३, १:२

२- मधुमालती: मँफन

३- .. ५,

वैसी भी विरह के बिना प्रेम का महत्त्व ही नहीं जान होता । प्रेम की परम तीव्रता, गहनता और अपूर्वता का जामास पाने के लिए विरह दुःख सहना भी आवश्यक है। विरह में ही प्रेम की तीव्रता परिलक्षित होती है। भक्तन के अनुसार जिसने संसार में जन्म लेकर विरह का रसास्वादन नहीं किया वह सूने गृह के उस अतिथि के समान है जो बिना किसी वस्तु को प्राप्त किए लौट जाता है :

“ भक्तन जो जग जन्मि के, विरह न कीन्हा चाउ ।
सूने घर का पाहुना ज्यों आवै त्यों जाउ ॥ ” १

कतः सूफी कवियों ने अपने काव्यों में विरह को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया है। विरह को महत्व प्रदान करने का एक अन्य कारण भी था । सूफियों ने लौकिक माध्यम द्वारा परमात्मा के प्रति जीवात्मा के प्रेम की तीव्रता व्यंजित की है। इसको उच्छृष्टता प्रदान करने के हेतु उन्होंने बहुत से प्रतीकों का भी आश्रय ग्रहण किया है जिनमें कमल और सूर्य, चन्द्रमा और चकोर, दीपक और फर्ग, तुम्बक, और लोहा, गुलाब और ब्रमर तथा राग और हिरण मुख्य हैं। इन प्रतीकों द्वारा वस्तुतः कवि साधक और साध्य के मध्य के व्यवधान को संकेतित करता है। सूर्य और कमल में वाकाश का व्यवधान भी उनकी प्रीति में बाधक नहीं होता । शलम यह जानकर भी कि दीपक के सम्पर्क से उसका शरीर भस्म हो जायेगा, प्रेम नहीं छोड़ता । इन रूपकों से प्रेमी का प्रिय को जलाने का मन्तव्य प्राप्त नहीं होता अपितु फर्गों की जलन के द्वारा साधक के प्रेम की तीव्रता ही प्राप्त होती

है। जायसी अपने पद्मावत में इन रूपकों के द्वारा साधक के प्रेम की व्यंजना करने में पूर्ण सफल रहे हैं। उन्होंने स्थान स्थान पर रूपकों का आश्रय ग्रहण किया है। पद्मावती के प्रेम की तीव्रता की व्यंजना चार रूपकों द्वारा दर्शनीय है :

“ मान नाउ सुनि कँवल बिगासा,
फिर के भँवर लीन्ह मधुवासा ॥
सरद चन्द्र मुख जानु उधेली,
सँजन नैन उठै कै केली ॥
विरह न बोल आव मुख नाई,
मरि मरि बोल जीव बरियाई ॥
दवै विरह दारुन हिय काँपा,
खेलि न जाइ बिरह दुख भाँपा ॥
उदधि समुद जस तरंग देखावा,
चखु कोटिन्ह मुख एक न आवा ॥
यह सुठि लहरि लहरि पर घावा ,
भँवर परा जिउ थाह न पावा ॥
सखी जानि बिण देहु नौ मरऊँ,
जिउ नहिँ पेट नाहि डर डरऊँ ॥

खिनहिँ उठै खिन बूढ़े , अस हिय कँवल सकेत ।

हीरा मनिहि बुलावहु, सखी गहन जिउ तैत ॥ १

सूफियों के प्रेम की यह विशेषता है कि वहाँ प्रेमी

और प्रिय दोनों ही एक दूसरे के प्रेम में व्याकुल दिखाई देते हैं। प्रियत्न अवश्य ही प्रेमी की ओर से होता है पर प्रिय का प्रेम भी कम नहीं। "मधु मालती" में जहाँ मनोहर मधुमालती की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है वहाँ मधुमालती भी उसके विरह में व्याकुल है। परन्तु उसकी व्याथा मूक है। वह प्रियत्न की विरह की अग्नि में सुलग २ कर काली होगई है। बारहमासे के माध्यम से कवि ने विरहिणी की वियोगजनित दुःसह दुःख का मार्मिक चित्रण किया है जिससे नायिका के प्रेम की तीव्रता ही योत्ति होती है। फागुन में फलफलु वाली वृष्टाँ को चैत्र में पुनः नवजीवन मिलता है। समझे दुःख के बाद सुख की उपलब्धि होती है। परन्तु विरही का केवल विरह से ही काम है। उसका सुख आह्वन के दिन सदृश घटता है और विरह जनित दुःख यामिनी सदृश बढ़ता है।

“ फागुन हते जो तरु फलफारी ,
ते सब मए चैत हरियारी ॥ ” १

“ सुख दिन भाँति घटत जो जाई,
दुख जो निसि तिलवृद्धिकाई ॥ ” २

कविवर जायसी ने भी इसी प्रकार बारहमासे के माध्यम से नागमाली की विरह वेदना चित्रित की है जो संयोग के दिनों से अधिक उसके प्रेम की तीव्रता को प्रगट करती है :

“ कार्तिक शरद चंद उजियारी,
जग शीतल हों विरह फरारी ॥ ” ३

१-मर्मकनकृत- मधुमालती- सं० शिवगीपाल मिश्र - पृ० १२२

२- ,, ,, ,, १२१

३- उसमान कृत- चित्रावली

कवि उसमान ने भी अपनी 'चित्रावली' में चित्रावली के विरह की व्यापकता का सुजान के प्रति उसके प्रेम की तीव्रता का ही स्पष्टोक्ति किया है। सुजान के चित्र के कारण जो चित्रशाला 'चित्रावली' को प्राणों से भी अधिक प्रिय थी वही उसकी अनुपस्थिति में काली नागिन के सदृश वामासित होती है। पुष्प ऊंगार सदृश प्रतीत होते हैं।

“ चित्रावलि कह जो चित्तसारी,
जानउ मई मुर्वगिनि कारी ।
फूल ऊंगार भर फुलवारी, कह
कहु न सुहाय विरह की मारी ॥ ” १

सूफियों के समान वैष्णव भक्तों में भी प्रेम की तीव्रता पाई जाती है। उन्होंने प्रेम की तीव्रता को स्थायी रखने के लिए ही स्वकीया के साथ परकीया के प्रेम के वादश को भी सम्मिलित किया है। चैतन्य मतानुयायी परकीया प्रेम को ही अपने काव्य में स्थान देने हैं। उनका कथन है कि जो तीव्रता परकीया प्रेम में है वह स्वकीया में संभव नहीं। सूफियों की भाँति चैतन्य मतानुयायी भी प्रेम का सर्वोत्कृष्ट रूप वही स्वीकार करते हैं जहाँ प्रेमी प्रिय के विरह में अत्याधिक विह्वलता का अनुभव करता है। वैसे भी प्रेमानुभूति की अनुर्जकता विविधता और नित्य नवीनता की दृष्टि से परकीया भाव ही अनुकूल पड़ता है। यह परकीया केवल ब्रज की गोप वधुओं में ही संभव है :

“ परकीया भाव अति रसैर उल्लास ।
ब्रज बिना इहार अन्यत्र नाहिँ बास ॥

ब्रजवधू गणैर एइ भाव निरवधि ।

तार मध्ये श्रीराधार भावैर अवधि ॥ १

अतः चैतन्य चरितामृत में परकीया भाव को

‘रसर उल्लास’ कहा गया है। राधावल्लभ सम्प्रदाय के अतिरिक्त वैष्णव भक्ति के लाभग सभी सम्प्रदायों ने विरह को महत्व प्रदान किया है। राधावल्लभ सम्प्रदाय में विरह की मान्यता न होने पर भी प्रेम में तीव्रता की कमी नहीं। वहाँ प्रेमी मिलन में ही विरह की अनुभूति करता है क्योंकि संयोग में ही अधिक सामीप्य की इच्छा से प्रेमी विरह सदृश अदृष्टि का अनुभव करता है। इस प्रकार मिलन में ही जिस प्रेम की तीव्रता की अनुभूति प्रिया और प्रिय-तम करते हैं उसका वर्णन श्री ध्रुवदास जी ने अति सुन्दर शब्दों में किया है :

“ न आदि न अंत विहार को दोउ
लाल प्रिया में मई न चिन्हारी ।
नई नई भाँति नई हवि कान्ति
नई नवला नवनेह विहारी ॥
रहैं मुख चाहि दिर चित आहि,
पर रस प्रीति सुखसहारी ।
रहैं एक पास करें मृदुहास सुनौ
‘ध्रुव प्रेम अकथ्य कथारी ॥’ २

राधावल्लभ सम्प्रदाय के समान निम्बार्क सम्प्रदाय में भी राधाकृष्ण के निन्य विहारी रूप को स्वीकार किया गया है, पर

१- चैतन्य चरितामृत- आदि लीला परि० ४

२- भजन शृंगार सत लीला (ध्रुवदास) व्यासलीला पृ० १०२

वहाँ ७ प्रिया- प्रियतम के समस्त आनन्द भोग सहचरी जन की प्रसन्नता के लिए हैं। लौकिक प्रेम से विदृष्टता हो जाने के डर से यहाँ प्रेम में अलौकिक रूप को स्वीकार किया गया है। अतः श्यामा श्याम का प्रेम यहाँ असंख्य और शनैः शनैः तीव्रता को प्राप्त होने वाला है।

वल्गु सम्प्रदायियों ने प्रेम की तीव्रता को स्थायित्व देने के लिए स्वकीया के साथ साथ परकीया भाव को भी सम्मिलित किया है। उनका कथन है कि परकीया प्रेम में स्वकीया की अपेक्षा अधिक तीव्रता गहनता, और टीस का आनन्द होता है। उदाहरण द्रष्टव्य है :

“ मुरली सुनत मई सब बौरी ,
मनहुँ परी सिर माँझ ठगौरी ।

हुटि सब लाज गई कुल कानि,
सुत पति आस्य यहाँ भुतानी ॥

कोउ जैवत पति ही तन हैरे ,
कोउ दधि में जामन पय फेरे ॥

सूरदास प्रभु कूँज बिहारी ,
शरद रास रस रीति बिचारी ॥ ” १

इस प्रकार सूफी और कृष्ण भक्त दोनों में ही प्रेम की तीव्रता का विकास होता है।

प्रेम में अनन्यता व एकनिष्ठता :

सूफी साधक और कृष्ण भक्त दोनों के ही प्रेम में एकनिष्ठता दृष्टिगत होती है। सूफी साधकों का विश्वास है कि अनन्य और एकनिष्ठ भाव से प्रिय का ध्यान करने पर ही प्रेम में गंभीरता का वागमन संभव है। एकनिष्ठ भाव ग्रहण करने पर ही प्रेमी अपने इष्ट देव के प्रति वाकृष्ट और अन्य वस्तुओं से उदासीन होता है एवं उसका जीवन निवृत्ति मुक्त रूप ग्रहण कर लेता है। फिर उसे किसी प्रकार का सांसारिक प्रलोभन प्रेम मार्ग से विचलित नहीं कर सकता। अनन्यता प्रेम की पराकाष्ठा होती है क्योंकि उस अवस्था में प्रेमी के रोम रोम में प्रेमास्पद का रूप निरन्तर व्याप्त रहता है तथा वह तृप्त रहता है। सूफियों के प्रेम में एकनिष्ठता और अनन्यता के अ पूर्व दर्शन होते हैं। इनके प्रेमास्थानों का मुख्य संदेश ही मानव को एकनिष्ठ और दृढ़ बनाना है। इस एकनिष्ठता और दृढ़ता के प्रदर्शन हेतु सूफी कवियों ने अपने काव्यों में प्रेमियों के प्रेम की कड़ी परीक्षा ली है, यहाँ तक कि उनके प्राणों तक को कभी कभी प्राणान्तक विभीषिकाओं में डाल दिया है। परन्तु इन प्रेमियों को अपने निश्चय की सिद्धि में दृढ़ विश्वास है। बड़ी से बड़ी शक्ति भी उन्हें उनके अडिग ध्व निश्चय से न डिगा सकी। पद्मावत में तोते के द्वारा प्रेम की कठिनाइयों का वर्णन करने पर भी रत्नसेन अपने निश्चय से नहीं डिगता। उसकी दृष्टि में भले ही प्रेम का खेल दुस्तर हो पर जो प्रेम का खेल खेल लेता है वह दोनों लोकों में तर जाता है।

“ भलेहि प्रेम है कठिन दुहेला,

दुइ जग तरा प्रेम जेह सेला ॥

“ दुख भीतर जो पेम मधु राखा ,
गंजन मरन सहै सो चाखा ।
जेह नहिं शीश पेम पंथ लावा,
सो प्रियमी में काहे को वावा ॥ ” १

पदमावली की प्राप्ति में उसे अनेकों कष्टों का सामना करना पड़ता है, सिंहल द्वीप तक पहुँचने में उसे सात भयावह समुद्र पार करने हैं। सिंहल द्वीप पहुँचने पर पार्वती अप्सरा का रूप धारण कर उसके प्रेम की एक निष्ठता की परीक्षा लेना चाहती हैं परन्तु रत्नसेन उसकी ओर से उपेक्षा-भाव धारण कर लेता है। कारण, प्रेमी का तो अपने प्रिय के अतिरिक्त कहीं ध्यान नहीं जाता। वह तो निशिदिन प्रिय प्रेम मद में डूब, उन्मत्त एवं आनन्द विभोर रहता है। प्रिय के समक्ष उसे नगाधिराज कैलाश की भी चाह नहीं। उसके लिए प्रिय ही कैलाश है :

“मलहि रंग अकरी तोर राता, मोहि दूसर सो भाव न बाता ।
हौं कविलास काह लै करऊँ , सोइ कविलास लागि जेहि मारऊँ ॥”

प्रेमी की एक निष्ठता का प्रभाव प्रिय पर भी पड़ता है, वह भी प्रेमी के वियोग में तड़पने लगता है। पद्मावत में पद्मावती भी रत्नसेन के योग से प्रभावित हो वियोगाग्नि में जलने लगती है। रात्रि में उसे निद्रा नहीं आती, शैया पर वह लेट नहीं सकती मानों किसी ने उस पर कपि कच्छू बिछा दिए हों। चन्द्र, चन्दन और चीर उसे दाहक प्रतीत होते हैं।

१- वायसी ग्रंथावली- सं० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ० ४०

2-

22

22

पृ० ६१

विरहाग्नि समस्त शरीर को भस्मीभूत कर रही है। निशा उसके लिए कल्पवृक्ष होगई है और उसका एक एक क्षण युग युग सदृश :

“ फदमावति तोहि जोग सजोबा,
 परी प्रेम बस गहे बिलोका ।
 नौद न परै रैन जो आवा,
 सेज केवाच जानु कोई लावा ।
 दहै चन्द औ चन्दन, चीरु,
 दगध करे तन विरह गभीरु ।
 कल्प समान रैन तेहि बाढ़ी,
 तिल २ भर जुग २ जिमि गाढ़ी ॥ ” १

आगे तो यह व्याख्या और भी अधिक अभिव्यक्त होती है। जब वह कहती है कि न जाने कौन सी मोहिनी के वशीभूत हो तेरी व्याख्या मेरे मन में भी उत्पन्न होगई है। उस व्याख्या के वश मैं हो मैं जल बिनु मीन, की भाँति तड़पती हूँ और फिड़- फिड़ रहते २ पपीही होगई हूँ ।

“ कौन मोहिनी दुहुँ हुत तोही,
 जो तोहि विथा सो अपनी मोही ।
 बिनु जल मीन तलफा जस जीऊ ,
 चातकि मझुँ कहत फिड़ पीऊ ॥ ” २

प्रेम की अनन्यता को प्रदर्शित करने के लिए ही

१- जायसी ग्रंथावली- फदमावत- पृ० ७३

२- “ “ “ १३८

सूफियों जल और मीन, स्वाति नदात्र की बूंद और चान्क कमल एवं भ्रमर दीप और शलभ को उपमानों के रूप में ग्रहण किया है। उपर्युक्त उपमान प्रेम के वादश रूप हैं। मीन अपने प्रिय जन के अभाव में प्राणों का त्याग कर देती है, चान्क स्वाति नदात्र की बूंद की आशा में रट लगाए रहता है अन्य जल को ग्रहण नहीं करता, भ्रमर कमल कोष्ठ में बन्द होकर अपने प्राणों की बलि दे देता है, शलभ अपने प्रियतम दीपक पर अपने शरीर की आहुति देता है। पदमावती विरह के कारण शलभ सदृश प्रियतम दीप पर जलना चाहती है।

‘सो धनि विरह पतंग होइ जेरा चाह तेहि दीप ।

कंत न आवहु मृग होइ, को चंदन तन लीप ॥ ‘ १

मैफन कृत मधुमालती में भी प्रेम की एकनिष्ठता

द्रष्टव्य है। कुंवर मनोहर और मधुमालती का मिलन के बाद बिछोह होता है। मधुमालती की प्राप्ति हेतु वह गृह-त्याग कर देता है। मार्ग की अनेकानेक दुस्तर कठिनाइयों को सहकर अग्रसर होता ही जाता है जाने अभीप्सित लक्ष्य की ओर। उसके प्रेम की दृढ़ता में कहीं लेश मात्र शिथिलता भी नहीं आती। नायक के प्रेम की एकनिष्ठता को उत्कृष्टता प्रदान करने के लिए मैफन मार्ग में उसका परिचय प्रेमा से करा देते हैं। प्रेमा को बाहिन कहकर सम्बोधित करने हुए इस परम उत्कृष्ट परन्तु दुस्तर नाते को अत्यन्त संयम के साथ निभाता है। इसी प्रकार ताराचन्द्र और मधु मालती का सम्बन्ध भी उनकी चारित्रिक दृढ़ता का ही सूचक है। इस प्रकार मैफन ने ‘मधुमालती’ में प्रेम की एक-निष्ठता, अनन्यता और दृढ़ता के विशद चित्र प्रस्तुत किए हैं। प्रेम की प्रखरता

के समझा प्रेमी अपने शिरच्छेद तक को महत्व नहीं देता, वह तो -

“ प्रथमह सीस हाथ के लेई , पाछे वहि मारग फु देई । ”

प्रेमी अपने प्रेम को इसी एक जन्म का नहीं अपितु जन्म जन्मान्तर का मानता है तभी तो मधुमालती से प्रथम मेट में ही मनोहर कह उठता है :

“ कहै कृंवर सुन पेस पियारी ,
मोहि तोहि पूर्व प्रीति विधि सारी ।
मैं तोहि जागु न तोहि दुसारी ,
तोहरे दुख मोहि आदि चिन्हारी ।
यह जगजीवन मोहि तुह लाहा,
मैं जिव दै तोर दुख बेसाहा ।
जा दिन सिराबास विधि मोरा,
तिहि दिन मोहि दरसा दुख तोरा ।
बर कामिनि जो प्रीति नहीरु,
मोहि माटी तो सानु सरीरु ।

“ पूर्व दिन ~~विधि~~ ^{विधि} नहिं सो जानौ तोहरी प्रीति कनीरु ।
मोहि माटी विधि सानि कै तो रहि सरा सरीरु ॥ ” १

और उसी जन्म जन्मान्तर के प्रियतम से विस्मोह होने पर प्रेमी का विरहाग्नि में दग्ध होना स्वाभाविक है। निशि-दिन, जागृत

एवं सुखावस्था में प्रिय की ही रट रहती है। वह उसके हाथों बिक सा जाता है। अपने सभी कार्य, श्वास-प्रश्वास एवं जीवन मरण सभी कुछ प्रिय के हेतु ही प्रतीत होने लगते हैं। प्रियतम के बिना अपना जीवन व्यर्थ प्रतीत होता है :

“ जो लगि ना जहु मिलै मुरारी, तौ लगि मरन होइ देवहारी।
 ह्वंहा माता-पिता घर राजा, वोहि बिन जीवन कौनै काजा।।

“जीउ गौ जम सँचरा तन जरि मयौ बिभूति ।
पेमा चित न ऊचटै, मधु मालति करतूति ॥” १

मनोहर ही नहीं मधुमालती भी अपने प्रेम में एक निष्ठ है। पहले तो वह प्रेमा के बार बार पूछने पर कुल और प्रेम दोनों की मर्यादा का वर्णन करती है :

“ एक दिस पीरम कै वान, एक दिसि कुल कै हानि ।
मोहि दुजौ दिसि दो मर मई, हत कुल उत जी हानि ॥ ” २

परन्तु अब उसे ज्ञात होता है कि मनोहर उसके प्रेम में राजपाट, घरबार, लोक लज्जा, कर्तव्य और मर्यादाओं को तिलांजलि दे बैठक रहा है तो वह लज्जा और मर्यादा का उल्लंघन कर अपनी व्यथा प्रदर्शित करती है। इसके बदले में उसे अपनी जननी का शाप सहन करना पड़ता है। वह मधु मालती को पक्षी बनाकर उड़ा देती है। फिर भी वह अपने प्रेम में दृढ़ है और बन बन घूमती है। अन्ततोगत्वा उनके प्रेम की एकनिष्ठता एवं अनन्यता के प्रसाद रूप में दोनों का सुख मिलन होता है।

इसी प्रकार उसमान कृत 'चित्रावली' में भी प्रेम की एक निष्ठता दृष्टिगत होती है। नायक सुजान के हृदय में चित्रावली के चित्र दर्शन के बाद प्रेमान्ध्र हो जाता है और वन्य सूफी प्रेम कथाओं की भाँति वह नायिका की प्राप्ति के लिए गृह-त्याग कर मार्ग का भिक्षु हो जाता है। मार्ग में उसका परिचय कंवलावती से होता है पर चित्रावली के दर्शन के बाद सुजान के हृदय देश में किसी वन्य के लिए स्थान ही नहीं रह जाता। वह कंवलावती के अनेक प्रयासों के फलस्वरूप भी उसकी ओर से उदासीन रहता है। नायक के प्रेम को और अधिक एक निष्ठता प्रदान करने के लिए कवि कंवलावती से उसका विवाह कराकर भी चित्रावली की प्राप्ति तक नायक को कंवलावती से नहीं मिलाता। उसमान ने प्रेम की सफलता के हेतु दृढ़ता और एक निष्ठता का होना परमावश्यक माना है। इन गुणों से पूर्ण होने पर व्यक्ति सुमेरु पर्वत की चोटी पर भी चढ़ने की क्षमता रखता है :

“धीरज धरि जो लेइ पय हरी, चढ़ै जाइ जेहि शृंग सुमेरी ।

लक्ष्य प्राप्ति का दृढ़ निश्चय उसे समीप ला देता है :

“जेहि काहू सोजे कोऊ, एक मन एक चित लाई ।

होइ दूर जो वनि तऊ, नियरहि मिले सो बाई ॥”

शेख रहीम ने भी अपने 'प्रेम रस' में प्रेम की एक निष्ठता को आवश्यक माना है :

“मन की दुविधा धारि कै जो धावै धरि मेस ।

निरमल अमर सवारि के, दरस बारसी देस ॥”

सूफियों के समान वैष्णव भक्त भी प्रेम में एकनिष्ठता और अनन्यता के पक्षपाती हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय के उपास्य राधाकृष्ण सदैव एक दूसरे के प्रेम में उन्मत्त रहते हैं। उनका यह प्रेम एक रस और अनन्य है। राधा कृष्ण का परस्पर प्रेम इस सम्प्रदाय में स्वकीया भाव का है और यह स्वकीया भाव का प्रेम अद्भुत है। कृष्ण स्वयं ही राधा के प्रेम में वशीभूत हो राधा राधा रटते रहते हैं :

“ प्रीति रीति रस बस मर जदपि मनोहर नैन ।
तदपि रहै निज मुख सदा श्री राधे २ बैन ॥ ” १

चैतन्य सम्प्रदाय में भी प्रेम की अनन्यता द्रष्टव्य है। एकनिष्ठ और अनन्य भाव से प्रिय का ध्यान करना और एकाग्रचित्त होकर ध्यान करते करते उसी में लीन हो जाना ४ इस सम्प्रदाय की विशेषता है। यहाँ प्रेम की दृढ़ता के वाधारे उसे क्रमशः स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव नाम प्रदान किए गए हैं :

“ साधन भक्ति है ले, हय रतिर उदय ।
रति गाढ़ है ले तार प्रेम नाम कय ॥
प्रेम वृद्धि क्रमे नाम, स्नेह, मान, प्रणय ।
राग, अनुराग, भाव, महाभाव हय ॥ २

राधावल्लभ सम्प्रदाय में अनन्यता को प्रेमी का जीवन ही स्वीकार किया गया है। श्री ध्रुवदास जी का कथन है कि प्रेम

१- युगल शतक, सहज सुख- पृ० २८

२- चैतन्य चरितामृत , मध्यलीला- परि० १६

बीज के मन में उत्पन्न होते ही समस्त विषय-वासनायें समाप्त हो जाती हैं। जिसका मन वृन्दावन रस में अनन्य भाव से अनुरक्त होगया वह विरक्त होकर घूमता है। प्रेम स्त्री आसब के रसास्वादन करने ही और ही रंग चढ़ जाता है। इस प्रेम रस में जिसका मन पड़ जाता है उसकी गति मीन और नीर सदृश हो जाती है। उसको रात दिन कुछ और अच्छा ही नहीं लगता। वह सदैव अपने प्रियतम के रस में विभोर रहता है :

“ प्रेम बीज उफ़ै मन माहीं ,
तब सब विषै वासना जाहीं ॥
जगत ते मयीं फिरै बैरागी ,
वृन्दावन रस में कुरागी ॥ ” १

प्रेम रसा सब चाख्यो जबही,
 वीरे रंग चढ़े ध्रुव तब ही ।
 या रस प्रेम पर मन बाँधे,
 मीन नीर की गति हूँ जाई ।
 निसि दिन ताहि न कछु सुहाई,
 प्रीतिम के रस रहै समाई ॥ २ ॥

परन्तु ऐसी अवस्था प्रेम में दृढ़ता और एक निष्ठता
जाने पर ही सम्भव है। इसलिए श्री व्यास जी ने अनन्यता को प्रेम मार्ग
के लिए अत्यावश्यक ठहराया है। उनका कथन है कि “यद्यपि अनन्य व्रत

का पालन तलवार की धार पर चलने के समान कठिन है, फिर भी इसके बिना प्रेमी भक्त बनने का अधिकार ही प्राप्त नहीं होता ।^१”

इस सम्प्रदाय के वाराध्य राधा और कृष्ण स्वयं भी अनन्य प्रेम में निमग्न रहते हैं। कृष्ण राधा रूपी कमनीय, अद्भुत पुष्प के लिए प्रमर बन गए हैं और राधा को रस समुद्र मानकर श्याम सुन्दर उस रस-पयोधि के मीन हैं। प्रेम की सहज रीति में श्रीकृष्ण निपुण हैं तभी तो अपने कंग २ हारकर दीनता का अभिनय करते हैं। महाप्रेम के रंग में ओत प्रोत हो उन्होंने एक रस दीनता का आश्रय ग्रहण किया है। अपने ऐसे प्रिय-तम का अवलोकन कर राधा कभी तृप्त नहीं होती -

“ प्रेम फूल प्यारी प्रिया सुरंग सरूप सुवास ।
 एक जीवन , वासवत, पुनि मधुप लाल रहें पास ॥
 प्रेम रीति निज वाहि जो ता में लाल प्रवीन ।
 कंग कंग सब हारि कै, रहे वाप हूँ दीन ॥
 लिर दीनता एक रस महा प्रेम रंग रात ।
 प्यारी ऐसे पीय कौं देखत हूँ न अघात ॥ ” २

प्रेम के इसी स्वभाव के कारण इस सम्प्रदाय में अनन्यता के सिद्धान्तों की सर्वोपरि मान्यता है। जैसे कृष्ण ही नहीं बल्कि राधा, सहचरीगण और वृन्दावन सम्पूर्ण रूप से एक दूसरे के आधीन और अनन्य प्रेम में लीन है।

१- व्यासवाणी - पृ० पद सं० १०५

२- श्री ध्रुवदास , प्रभावती

प्रेम के इसी स्वभाव के कारण इस सम्प्रदाय में अनन्यता के सिद्धान्तों की सर्वोपरि मान्यता है। ऊँले कृष्ण ही नहीं वपितु राधा, सहचरीगण और वृन्दावन सम्पूर्ण रूप से एक दूसरे के आधीन और अनन्य प्रेम में लीन हैं।

हरिदासी सम्प्रदाय के अनुयायी भगवत् रसिक जी भी एक निष्ठता और अनन्यता को प्रेम के लिए वति आवश्यक ठहराते हैं। उनके अनुसार राधा और कृष्ण सदा सहज भाव से पारस्परिक प्रेम में अनुरक्त रहते हैं। इसी प्रकार वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी भी श्री कृष्ण के अनन्य प्रेम को महत्व देते हैं। जो मन श्रीकृष्ण में अनुरक्त हो गया वह किसी अन्य का नहीं रहा। गोपियों के मन में भी किसी अन्य के लिए स्थान नहीं है क्योंकि उनका एक मन ही तो था वह भी उनके यशोदा दुलारि ब्रजराज के साथ चला गया। योग की साधना किस मन से की जाय :

“ ऊँधी मन नाहीं दस बीस ।

एक हुनौ सो गयी स्याम संग को आराधे ईस ॥ ” १

गोपियों के हृदय में कृष्ण का अनुराग जिस दृढ़ता के साथ प्रस्फुटित हुआ है वह उनके प्रेम की अनन्यता का द्योतक है। उनके कृष्ण तो हारिल पदारी की लकड़ी के सदृश हैं। जिस प्रकार हारिल पदारी अपने फँजों में तिनका दबाए हुए रहता है उसी प्रकार उन्होंने मन, क्रम, वचन से श्रीकृष्ण का आश्रय लिया है। जिस वस्तु में मन रमा है उसके वतिरिक्त कोई अगर अन्य वस्तु की चर्चा करता है तो बुरा लगना स्वाभाविक है।

गोपियों का मन भी केन्द्रस्थ है, श्रीकृष्ण में स्थिर है। अतः अन्य साधन उन्हें कड़वी लकड़ी के समान जान पड़ते हैं :

“ हमारे हरि हारित की लकरी ।
मन, क्रम, बचन, नंद नंदन उर यह दृढ़ करि फरि ॥
जागत , सोवत, स्वप्न दिवस निसि, कान्ह कान्ह जकरी ।
सुनत जोग लागत है ऐसी ज्यों करुईं ककरी ॥
सुती व्याधि हमकीं लै जाए, देखि सुनी न करी ।
यह तीं सूर लिन्हहिं लै सौंपी जिनके मन चकरी ॥ ” १

यही प्रेम की अनन्यता है जो सूर की गोपियों में द्रष्टव्य है। तभी तो वे उद्धव से कह उठती हैं :

“ ऊधौ मनमाने की बात ।
दास, कुहारा हाँड़ि अप्रतफल, विणकीरा विण सात ॥ ” २

परमानन्द जी द्वारा लिखित पदों में भी प्रेम की अनन्यता परिलक्षित होती है :

“ प्रीति तीं एकहि ठौर भली ।
इहब कहा मति चरन कमल तजि फिरै जु चली चली ।
ते जानै जे सब विधि नागर सार सार गहि लोग ।
पायो स्वाद मधुर एस लोमी स्याम धाम संयोग । ।
परमानंद दास गुन सुन्दर नारदादि मुनि जानी ।
सदा बिचार विणय एस त्यागी जस गावत मधु बानी ॥ ३

१- संप्रदाप्त सूरसागर- प्रेम नारायण टण्डन- पद० १६६५

२- सूरसागर- ४६, ३६

३- परमानंददास पद संग्रह- संग्रहकर्ता- डा० दीनदयालु गुप्त पद सं० २६

मीरा और रसखान का काव्य भी प्रेम की एक निष्ठता को सिद्ध करता है। मीरा और रसखान दोनों ने ही किसी प्रबन्ध काव्य की रचना नहीं की परन्तु जो कुछ भी उन्होंने कहा प्रिय के प्रति अनन्य प्रेम में मग्न होकर ही। प्रेम की तन्मयावस्था वह है जबकि प्रेमी एक क्षण मूर्क, जड़वत् और निश्चल तक हो जाता है। लाल प्रयत्नों के फलस्वरूप भी उसकी निष्क्रियता का निराकरण नहीं होता। प्रेम की तन्मयावस्था के वर्णन में मीरा ने एक ग्वालिन की अवस्था वर्णित की है :

“ कोई स्याम मनोहर ल्योरी ,

सिर धरै मट किया डोलै ।

दधि को नाव बिसरि गई ग्वालिन,

हरि ल्यो हरि ल्यो बोलै ॥ १ ॥

मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, चेली मई बिन मोलै ।

कृष्ण रूप ककी है ग्वालिन औरहि और बोलै ॥ ” १

रसखान की ५२ दोहों की एक प्रेमवाटिका है। उपलब्ध है पर इसका एक दोहा प्रेम की एक निष्ठता में अपना महत्त्व रखता है। कृष्ण के मनोहर तावण्य का आस्वादन कर गोपियों की विचित्र दशा हो जाती है। प्रियतम कृष्ण के प्रति उनका प्रेम एक निष्ठ है। निमेष मात्र के लिए ही देखकर वे अपनी तन्मय हो जाती हैं कि उनके नेत्र तक इस अनिवर्तनीय, पराकाष्ठा से परे तन्मयता के धौत्क हो जाते हैं :

“ उन्हीं के सनेहन सानी रहैं उन्हीं के जु नेह दिवानी रहैं ।

उनहीं की सुनै न औ बैन त्यों सैन सौं बैन अनेकन ठानी रहै ॥

उनहीं संग गेलनि मैं रसखानि सैन सुख सिंधु ज्वानी रहैं ।

उनहीं बिनु ज्यों जलदीन हूँ मीन सी जालि मेरी अंसुवा-दीरहैं^१ ।

इस प्रकार सूफी और कृष्ण भक्त दोनों ही प्रेम की दृढ़ता, अनन्यता और एकनिष्ठता में विश्वास करते हैं।

प्रेम में विरह का प्राधान्य :

सूफी कवियों और कृष्ण भक्त दोनों ने प्रेम में विरह को आवश्यक माना है। विरह के बिना प्रेम का मूल्यांकन ही नहीं है। संयोगावस्था में प्रिय समीप रहता है अतः प्रेम के बाधक्य का पता नहीं चलता पर वियोग में प्रिय के दूरस्थ होने के कारण प्रेम को तीव्रता, गति और कामला मिलती है।

मिलन में वियोग का मय रहता है और विरह में मिलन का उल्लास । अतः संयोग से वियोग उत्पन्न है जिसमें प्रिय से मिलने की उत्कंठा निरन्तर बनी रहती है। यही कारण है कि सूफी और कृष्ण भक्त दोनों ही ने प्रेम को स्थायी बनाने के लिए विरह को आवश्यक माना है।

सूफियोंने प्रेम की पीर को जाग्रत रखने के लिए प्रिय के वियोग में जलना, कलफना, बिसूरना, जपना और निराश होना आवश्यक माना है। सूफी महाकवि जायसी ने तो पदमावन में विरह के

अत्यन्त मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए हैं। उनकी विरह भावना एक जोर तो भारतीय मार्मिक मार्ग की विरह शक्ति से युक्त है दूसरी ओर सूफियों के विरह तत्त्व भी उसमें विद्यमान हैं। नायक पदा में रत्नसिन का विरह है, जो पद्मावती के विरह में योगी बन जाना है। हाथ में किंगरी, सिर पर जटार्य गहे में रुद्राक्ष और शरीर पर कथरी धारण कर लेता है :

“ त्जा राज राजा मा जोगी ।
 जौ किंगरी कर गहै वियोगी ॥
 तन बिस मर मन बाउर रटा ।
 अरुफा पेम परी सिर जटा ॥
 चंद बदन जौ चंदन देहा ।
 भसम चढ़ाइ कीन्ह तन देहा ॥
 भसल सिंही चक्र धंधारी ।
 जौ गौटा रुद्राक्ष अधारी ॥
 कंधा पट्टिरि दंड कर गहा ।
 सिद्धि होइ कहै गौरस कहा ॥
 मुद्रा मदन कंठ जथमाला ।
 कर उदममन कांधि बधकाला ॥
 पाविरि पावि लीन्ह सिर झाला ।
 सप्पर लीन्ह मेस कै राला ॥

चला भगति मणि कहै साजि कण तप योग ।

सिद्ध होइ पद्मावति पाए हिरदै जेहि क वियोग ॥ ” १

रत्नसिन की योगी की वेशभूषण नाथ पंथी योगियों से बहुत कुछ साम्य रखती है।

उधर पदमावती भी उसके विरह में व्याकुल होती है, उसे न रात्रि में निद्रा आती है न दिन में चैन मिलता है। रत्नसेन के योग का प्रभाव पदमावती पर पड़ता है इसी से उसकी यह दशा होती है। वह उसी प्रकार कृशकाय, जबर्दस्त शारीरिक रूप से व्यन्त क्षीण हो रही है मानो कोई कीड़ा उसके हृदय को काट रहा है। शरीर के रोम २ में जैसे चीटि लग गए हों तथा प्रत्येक रोम में विष के काँटे बिँध गए हों । “ हे प्रियतम ! यदि तুম मलयगिरि चन्दन बनकर शीघ्र नहीं आते हो इस तरह गर्म कड़ाह में मेरा समस्त प्राण वस्तीभूत हो जायगा । किस देवता के समीप जाकर क्वना करूँ जिससे उस प्रियतम का आर्त्तिमान प्राप्त हो :

“ जब लगि अवधि चाह सौ जाई ।
 दिन जुग वर विरहिनि कह जाई ॥
 नींद भूस कह निसि गै दोऊ ।
 हिर माँझ जस कलपे कोऊ ।
 रोवहिँ रोव लागे जनु चटि ।
 सोतहिँ सोत बेध बिस कोटि ।
 दग्ध कराह जरे सब जीऊ ।
 वेगि न जात मलै गिरि पीऊ ॥ “ १

पदमावती की विरह भावना प्रधान है और भावना भी बहुत कुछ कल्पमाजनि है। कारण कि उसने रत्नसेन से साक्षात् नहीं किया, वह कल्पना में उसके दर्शन कर दिखानुभव करती है। पदमावती की

विरह व्यंजना मार्मिक और चमत्कारपूर्ण है। उसमें एक काम विह्वला राज-कुमारी के हृदय की आन्तरिक व्याथा मुखरित हुई है। परन्तु नागमनी का विरह वर्णन हृदय को अधिक लभिभूत करना है। कारण, उसमें कवि भूल गया है कि वह एक रानी है। चित्रण में वह केवल एक स्त्री है और वह भी साधारण स्त्री जिसे पुष्प नष्टात्र का जाने पर अपने घर पर छप्पर खाने की चिन्ता है कि बिना प्रियतम इस कार्य को कौन करेगा :

“पुष्प नखत सिर ऊपर आवा । हौं विनु नाह मंदिर को छावा ?
ज्वा लाग, लागि मुई लेई । मोहिं विनु पिउ को आदर देई ॥” १

नागमनी के विरह वर्णन के लिए कवि ने बारहमासे का आश्रय ग्रहण किया है। प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण भी कवि ने बड़े ढंग से किया है। बारहमासे के माध्यम से अनेक स्थानों पर जायसी ने विरह कातरता का इतना अधिक मर्मस्पर्शी वर्णन किया है कि वह स्वतः ही मन को द्रवीभूत कर देता है। विरहिणी की विवशता का एक हृदयग्राही उदाहरण द्रष्टव्य है :

“परबत समुद्र काम बिच, बीहड़ घन बनढांस ।
किमि कै मँटी कंत तुम्ह ? ना मोहि पाव न पांस ॥” २

अपनी दयनीय दशा को प्रियतम तक पहुँचाने के लिए नागमनी पशु पक्षियों तक की सहायुक्ति अर्जित करना चाहती है। किन्तु

१- जायसी ग्रंथावली- सं० रामचन्द्र शुक्ल- पृ० १५२

२-

,,

,,

१५३

वास्तविकता है प्रस्तुत पंक्तियों में :

“ पिउ सौं कहेहु सदैसड़ा, हे मौंरा । हे काग ।
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहि क धुर्वा हम्ह लाग ॥ ” १

नागमती की विरह वेदना का प्रभाव वाह्य प्रकृति पर भी पड़ता है तभी तो वह जिस पक्षी के पास जाकर अपना दुःख व्यक्त करती है वही पक्षी उसके विरह ताप के कारण दग्ध हो जाता है और वृद्धा पत्र रहित हो जाता है :

“ जेहि पंसीके निवर होइ कहै बिरह के बात ।
सोई पंसी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात ॥ ” २

विरह की जितनी अन्तर्दशायें मानी गई हैं वे सभी नागमती विरह में लक्षित होती हैं। पृष्क् पृष्क् अवस्थाओं के स्वतन्त्र चित्र यहाँ उपलब्ध होते हैं। विरह की प्रथम दशा वमिलाणा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

“ रातिहुँ दिवस उहै मन मोरै ।
लागौं कंत धार जिउ तोरै ॥
यह तन जारौं छार के कहौं कि पवन उड़ाव ”
मुहुतेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहँ पावि ॥ ” ३

इसी प्रकार चिन्ता, स्मरण, गुण कथन, उद्देग,

१- जायसी ग्रंथावली- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- पृ० १५४

२- “ ” ” ” १५८

३- “ ” ” ” १५५

प्रलाप, उन्माद, जड़ता, व्याधि और मरण के बड़े ही स्वाभाविक चित्र जायसी ने प्रस्तुत किए हैं।

मीरान ने भी अपनी मधुमालती में विरह के बहुत ही मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी चित्र उपस्थित किए हैं। उन्होंने विरहजन्य रुदन और झुकता का वर्णन पर्याप्त किया है। कहीं भी शास्त्रीय ढंग से केवल विप्रलम्भ शृंगार के ऋण उपांगों का वर्णन उन्होंने नहीं किया, फिर भी बारहमास की पद्धति का अनुसरण करना वे न भूल सके। संयोग की वार्तन-दायक वस्तुएँ वियोग में दाहक हो जाती हैं। कार्तिक मास में स्वच्छ शरत्चंद्रिका वारि और शीतलता विरहिणी को दुःखप्रद होगई हैं। जिन प्राकृतिक व्यापारों और सुविधाओं को प्राप्तकर संयोगी सुखी होते हैं उन्हीं की उपलब्धि होने पर विरही का दुःख और बढ़ जाता है :

“ कार्तिक शरद सताई वारा,
 वमी बुंद वरसै बिस धारा ।
 विगसहि कौल मानि ते बारा,
 जनि कुमुदनी ससी उजियारा ।
 सरद रैन तेहि सीतल भावै,
 जेहि प्रीतम कंठ लागि बिहावै ।
 मोहि तन वागि बिरह पर जारा,
 सरद चाँद मोहि सैज वंगारा ॥
 ते बिलसहिं येहि दिवस वमोले,
 जेहि सुख सैज रौन मीठ बोले ॥

“ सरद रैन तेहि सीतल, जेहि फिउ कंठ निवास ।
 सबके परब देवारी, मोहि ससी बनवास ॥ ” १

परन्तु बारहमास के वर्णन में मीकन का मन उतना नहीं रम पाया है जितना जायसी का । जायसी के बारहमास के वर्णन में जहाँ स्वाभाविकता है, मीकन ने परंपरा अनुसरण करने के लिए उसे अपनाया है।

कुतुबन ने भी 'मृगावती' में वियोगजनित दुःख को वन्यन्त प्रसर माना है। वन्य प्रकार की अग्नि जल से शान्त की जा सकती है, पर विरहाग्नि का प्रशमन तो समस्त समुद्र के जल से भी नहीं किया जा सकता । विरह की अग्नि से समुद्र, गगन, वसुधा और शेषनाग वादि सभी प्रवृत्ति हो उठे :

“ वागि के आँखें सब कोई जाना,
यह न कोरे आँखें के माना ।
और वागि जल सींचि बुझाई,
यह न बुझाई समुद्र लै जाई ।
समुद्री जरा, गगन सब जरा,
और बासुकी जर नाऊँ बरा ॥

“ भावता नहीं भटिय उठी जो नल शिख वागि ।
“हु वसुधा जरे न ऊबरे वागि विरह की लागि ॥” १

उसमान ने अपनी चित्रावली में, संयोग के साथ वियोग को भी अवश्यम्भावी माना है और यह स्वीकार किया है कि प्रेम के आधिपत्य के प्रदर्शन हेतु विरह का होना आवश्यक है क्योंकि जितना अधिक

प्रेम होता है विरह में दुःखानुभूति उतनी ही अधिक होती है। जहाँ प्रेम है वहाँ विरह भी अवश्य है और विरह है तो तड़पन, तपन और व्याकुलता निश्चित है। परन्तु इस विकलता में भी एक माधुर्य है और यही माधुर्य विरह को मूल्यवान् बना देता है :

“ रूप प्रेम मिलि जो सुख पावा,
 डूनहुँ मिलि बिरहा उपजावा ।
 जहाँ प्रेम तहाँ विरहा जानहु, बिरह
 विरह बात जनि लघु करि मानहु ॥ १ ”

उसमान ने सौंदर्य, प्रेम और विरह को समस्त सृष्टि के आधार माने हैं :

“ रूप, प्रेम विरहाजगत, मूल सृष्टि के धम्म । ” २

विरहाग्नि के हृदय में प्रज्वलित होने पर शरीर दग्ध होने लगता है। बलूत वृद्धा के काष्ठवत् यह अग्नि शरीर में धीरे धीरे सुलगती है पर धुआँ न देती :

“ विरह अग्नि उर मँह बरे, एहि तन जानै सोइ ।
 सुलगै काठ बलूत ज्यों, धुआँ न परगट होइ ॥ ” ३

इस विरह में उन्माद के कारण कभी रोना आता है तो कभी हँसी आती है और कभी स्वतः ही अश्रुपात होने लगता है। उसमान ने तो चित्रदर्शन से ही प्रेम उत्पन्न हो जाने पर चित्रावली की उन्मादावस्था

१- चित्रावली पृ० १३

२- ,, १४

३- ,, १६३

का वर्णन किया है :

“ चित्र प्रेम चित्रावली हीरे , माली रहे प्रेम मद पीरे ॥ ” १

चित्रावली की ही नहीं अपितु कुँवर सुजान की भी विरह के कारण कुछ ऐसी ही अवस्था हो जाती है :

“ कल न परे फल अति विकरारा, हाथ पाँव सिर दै दे मारा ॥ ” २

प्रिय की उपस्थिति में जो वस्तु सुख होती है, अनुपस्थिति में वह दुःखदायक हो जाती है। सुजान का चित्र चित्रित रहने पर जो चित्रशाला चित्रावली को प्राण सम प्रिय थी वही उसके अभाव में काली नागिन के समान तथा पुष्प वाटिका के पुष्प जंगार बन गए :

“ चित्रावलि कह सो चित सारी, जानऊँ मईँ मुर्खै गिनि कारी ।
फूल जंगार भर फुलवारी, कछु न सुहाय विरह की मारी ॥ ” ३

कवि ने षट् कृत और बारह मासे के वर्णन में जहाँ एक ओर कवि परंपरा का निर्वाह किया है वहाँ दूसरी ओर विरह की व्यापकता को भी दर्शाया है। वसन्त कृत का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

“ कृत बसंत नूनन बन फूला ।
जहँ तहँ मोरे कुसुम रंग भूला ॥
जाहि कहाँ सो मेरि हमारा ।
जोईँ बिनु बसन बसन्त उजारा ॥ ”

१- उसमान- चित्रावली- पृ० ५१

२- ,, ,, ३८

३- ,, ,, ५४

अपनी कृशता की समता वह पतझड़ में गिरे हुए
पत्तों से करते हैं :

“ फागुन विरह अधिक अधिकाना,
हम तनु जस तरु पात पुराना ॥ ” १

नूर मुहम्मद कृत इन्द्रावली में भी विरह की ऐसी
ही अवस्था द्रष्टव्य है। प्रिय के दर्शन के लिए प्रेमी का मन विकल रहता है।
शरीर का प्रत्येक रोम प्रियतम के दर्शनार्थ मानों नेत्र बना हुआ है। यही कारण
है कि प्रेमी को न रात्रि में नींद आती है न दिन में चैन ही मिलता है :

“ दरसन देखै कारनहिं, रोम रोम मए नैन ।
नींद न आवत निसि कई वासर परत न चैन ॥ ” २

विरह में उन्माद वश कभी उसे रोना आता है और
कभी हँसी। प्रियतम के ध्यान के कारण ही वह अभी जीवित है वरना फल
मर में ही उसकी मृत्यु निश्चित थी। यथा-

“ उन्माद सों रोवइ हँसई । बाँसू धरती मोती खसई ।
जीयत रहइ ध्यान के बाहरा । ना तो होत मरन फल माँहरा ॥ ” ३

सूफियों के समान कृष्ण भक्त कवियों ने भी प्रेम में
विरह को आवश्यक माना है। प्रेम की सफलता का माप दण्ड विरह ही है।
यदि प्रिय से वियोग होने पर भी प्रेम स्थायी रहे, यही नहीं अपितु उसमें

१- चित्रावली - पृ० १७३

२- नूर मुहम्मद- इन्द्रावली - पृ० ४४

३- ,, ,, पृ० १४६

सूक्तियों के समान कृष्ण मन्त्र कवियों ने भी प्रेम में विरह को आवश्यक माना है। प्रेम की सफलता का माप दण्ड विरह ही है। यदि प्रिय से वियोग होने पर भी प्रेम स्थायी रहे, यही नहीं अपितु उसमें वृद्धि होती रहे तभी प्रेमी का प्रेम वास्तविक सम्पन्न जायगा। प्रिय से वियुक्त होने पर प्रेमी के पास संयोग की मधुर स्मृतियाँ शेष रह जाती हैं, उन्हीं संयोग की मधुर स्मृतियों के आधार पर वह वियोग की कटुता में माधुर्य भरने का प्रयास करता है। सूर की गोपियाँ भी विरह के दिनों में संयोग के क्षणों का स्मरण करती हैं। वे कभी कृष्ण का वियोग होने पर स्वयं को अपराधी मान बैठती हैं और कभी अपनी असमर्थता पर दृष्टिपात करती हैं। कृष्ण के बिना उन्हें रात्रि कल्प के समान लगती है। ब्रज में सब कुछ पहले जैसा है पर ब्रजपति के अभाव में ब्रज बालाओं का ब्रज सूना है। इस सूनेपन में माधव के बिना उनके प्राणों को धैर्य नहीं मिलता।

“ बिचारत ही लागे दिन जान ।

तुम बिन नंद सुवन इहि गोकुल निसि भई कल्प समान ।

मुरलि शब्द कल धुनि को गुंजनि सुनियत नाही कान ।

चलत न रथ गहि रही स्याम, कौ जब लागी पख्तान ।

है कोउ जाय कहै माधी सौं धीरज धरहि न प्रान ।

सूरदास प्रभु तुम्हरे दास बिनु फुरत नाहि औसान ॥ “ १

मानव हृदय के भावों का प्रकृति के साथ प्रायः सभी भारतीय कवियों ने साम्य स्थापित किया है। सूर भी इस दौत्र में पीछे नहीं

रहे । उनकी गोपियों को पशु, पक्षी, लता, गुल्म सरिता आदि भी कृष्ण के वियोग में व्यथित जान पड़ते हैं। मानवीय कार्यों का प्रभाव अचेतन प्रकृति पर पड़ता है। और प्राकृतिक परिस्थितियों का प्रभाव चेतन संसार पर । दोनों में एक दूसरे का प्रतिबिम्ब फलकने लगता है। दुःखी व्यक्ति अपने चारों ओर दुःख और उदासीनता का ही साम्राज्य पाता है। सुखकारी वस्तुएँ भी उसे दुःखदायिनी प्रतीत होती हैं। सूर की गोपियों को वे लतारें भस्कर ज्वाल-फुलों के सदृश प्रतीत होती हैं जो उनके तमिन्न प्रियतम माधव के रहने पर शीत-लताप्रदायक एवं मनोमुग्धकारी लगती थीं :

“ बिनु गोपाल बैरिन मई कूँ ।

तब ये लता लगति अति शीतल, अब मई विषम ज्वाल की
फुँ । ”

विरहावस्था में विष स्थिर नहीं रहता । एक ही वस्तु कभी अनुकूल प्रतीत होती है तो कभी प्रतिकूल । प्रियतम में अनन्य भाव रखने के कारण गोपियों को चात्क मला लाता है तो वे उसके प्रति स्नेह भाव से कहती हैं :

“ बहुत दिन जीवी पपिहा प्यारी ।

बासर रैन नाम ले बोलत भयी बिह जुर कारी ॥

आपु दुखित पर दुखित जानि जिय चात्क नाम तुम्हारी ।

सूरदास प्रभु स्वाति बूँद लगि तज्यो सिंधु करि सारी । ” १

कभी कभी उसकी 'पी, पी' की वाणी उन्हें उद्दीप्त

करती है तो वे उसके प्रति क्रोधित हो उठती हैं और उसकी बदूरदर्शिता पर उसे भला बुरा कहती हैं :

“ हौं तो मोहन के विरह जरी, रे नू कत जारत ।

रे पापी तू पैसि पपीहा, पिय पिय करि अधरानि फुहारत ।

करी न कहू करतूनि सुमट की मूठि मृत्क अबलनि सर मारत ॥

रे सठ तू सु सतावत औरनि जानत नहिं अपने जिय बारत ।

सब जग सुखी, दुखी तू जल बिनु तऊ न उर की व्यथा विचारत ।

सूर स्याम बिनु ब्रज पर बोलत , काहे अगिलौ जनम बिगारत ॥१

श्याम वर्ण होने का कारण गोपियाँ उसका कृष्ण वियोग ज्वर से पीड़ित होना मानती हैं। वही भाव प्रदर्शन गोपियों द्वारा रविर्नदिनी पर है :

“ देखियत कालिंदी अति कारी ।

अहौ पथिक कहियो उन हरि सौं मई विरह जूर जारी ॥ ” २

प्रिय कृष्ण के वियोग में भी मधुवन का हरा मरा रहना वे विदग्धहृदया, अपने प्यारे मोहन की विरह ज्वाला में संतप्त गोप-बालारं भला कैसे देख सकती हैं। जिस मधुवन में कृष्ण ने अनेक क्रीड़ाओं का साक्षात् किया था, जिसके निकुंजों में उस वैष्णवादी की वैष्णु अपने त्रिभुवन मोहन एवं आकर्षक स्वर लहरियों में गुंजायमान हुई थी , जिसके वनस्थल पर रासलीला

१- सूरसागर- का० ना० प्र० समा- पद सं० ३६५६

२- , , , , ३८०६

मैं रत उस परम रास बिहारी नटवर नंद किशोर के चरण आज भी वंकिन हैं वही मधुवन माधव के वियोग में दुःखित नहीं । उसकी इस निर्ममता पर, पाशाण हृदय पर यदि ये निरीह ब्रजांगनार्य कृपित होकर वियोगजनित अग्नि से भस्मीभूत आत्माओं से कटु विनाशक भावना बाण छोड़ें तो अनुचित नहीं :

“ मधुवन तुम कत रहत हरे ।

विरह वियोग स्याम सुन्दर के ठाढ़े बर्यो न जरे ॥

मोहन वैनु बजावल तरुतर सासा टेकि सरे ।

मोहे थावर, तरु जड़ जंगम, मुनि जल ध्यान हरे ॥

वह चित्त्वनि तू मन न धरत हैं, फिर २ पुहुप धरे ।

सूरदास प्रभु विरह दवानल, नह-सिस लीं न जरे ॥ ” १

विरहाग्नि से प्रदीप्त गोपियों को उद्वेग का आना अच्छा लगता है क्योंकि वे कृष्ण का संदेश लाते हैं और साथ ही श्यामवर्ण ही नहीं, अपितु माधव के परम सखा भी हैं। पर जब वे जब योग का उपदेश देते हैं तो वे तिलमिला उठती हैं। योग का उपदेश गोपियों के दग्ध हृदय पर घृत का कार्य करता है। वे उद्वेग को भला बुरा कहती हैं :

“ मधुकर, यह सुख तुमहीं दूरि ।

देख्यो, सुन्यो न परस्यो रैक, उड़िहु न लागी धूरि ।

जब तौ जोग सिखावन आर, तजि हरि जोवन मूरि ।

चित्त्वनि, मंद हंसनि, गति-परसनि, हृदय रही मरिपूरि ।

मो मन जो घट होत निहारि, मुक्ति चलै फा बूरि ।

मथुरा जाइ सूर-प्रभु पूछहि, मरिही नबहि बिसूरि ॥ ” २

सर्व तथ्यपूर्ण उक्तियों से उद्धव को परास्त करने हैं। उद्धव के यह कहने पर कि कृष्ण को हृदय से निकाल कर योग व्रत धारण करो, वे कहती हैं :

“ इहि उर मासन चौर गदे ।

अब कैसे निकसत सुनि ऊधौ निरखे द्वै सु ऊड़े ॥ ” १

सोधी वस्तु को निकालना सरल है परन्तु जो वस्तु निरखी हीकर ऊढ़ जाय उसे बाहर निकालना सरल नहीं। गोपियों के व्यंग्य वाणियों से विद्व होकर सर्व निरुचर कर देने वाली कटु उक्तियों से परास्त उद्धव योग का चोला उतार प्रेम की ऊंगरसी पहिन मुकुन्द के पास जाते हैं।

सूर ने गोपियों के इस विरह वर्णन में विरह की सभी अवस्थायें वर्णित की हैं। “ मरण ” का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

“ अति मलीन वृषभानु हलारी ।

हरिश्चम अल भीज्यौ उर ऊंचल निहि लालचन धुवावति सारी ।

अधमुख रहति अनत नहिं चितवति ज्यौं गंध हौरे थकित सु वारी ॥

छूटे चिकुर बदन कुम्हिलाने, ज्यौं नलिनी हिम्कर की मारी ।

हरि सदैस सुनि सहज मृत्क मई ऊक विरहिनि दूजे अलि जारी ॥ ” २

सूरदास के भ्रमरगीत से प्रभावित हो नंददास ने भी

“ भ्रमरगीत ” की रचना की है पर सूर के भ्रमर गीत में हृदय पदा का प्राधान्य है जबकि नंददास ने बुद्धि पदा को प्रधानता प्रदान की है। सूर की गोपियाँ उद्धव

१- संक्षिप्त सूरसागर- सं० डा० प्रेमनारायण टंडन- पृ० १६०३

२-सूर सागर, का० ना० प्र० समा, पद सं० ४६६१

के ज्ञान और योग के उपदेशों का सण्डन करने चरम प्रेम से करती हैं जबकि नन्ददास की गोपियाँ तर्कपूर्ण वाद-विवाद द्वारा । गोपियों की विरह दशा का वर्णन नन्ददास ने किया अवश्य है पर बड़े-बड़े अल्पसंख्यक कवियों में ही । उद्धव के ब्रज वागमन पर और यह विदित होने पर कि ये श्याम का संदेश लाये हैं, गोपियों के हृदय सात्विक अनुभावों से पूरित हो जाते हैं, उनका हृदय आनन्द रस से सराबोर हो जाता है, प्रेमाश्रु आ जाते हैं, कंठ भावना के प्रभाव से अवरुद्ध हो जाता है, गिरा गद्गद् हो जाती है। मुख से एक भी शब्द का उच्चारण नहीं होता । इस प्रकार कृष्ण प्रेम में उनकी विचित्र दशा हो जाती है :

‘ सुनत स्याम की नाम वाम- गृह की सुधि मूलों ।

भरि वार्नद रस हृदय, प्रेम बेली ह्रम फूली ॥

पुलकि रोम सब की भए भरि वाए जल नैन ।

कंठ घुटे गद्गद् गिरा बोल्यो जात न बैन ॥

विवस्था प्रेम की ॥ “ १

और उद्धव के कहने पर कि :

“ कहि सँदिस नंदलाल कौ, बहुरि मधुपुरी जाऊँ ।

सुनौ ब्रज नागरी ॥ “

‘ कृष्ण संदेश, नाम से ही वे भाव विभोर हो जाती हैं। मनमोहन कृष्ण के रूप की स्मृति सजग हो उठती है। मुख प्रसन्न

हो जाता है पर प्रेमावेग के आधिक्य के कारण वे मूर्छित हो जाती हैं।
 यहाँ स्मृति जसूया आदि संचारी भावों की वृत्ति सुन्दर व्यंजना हुई है।
 परन्तु कृष्ण के मधुर सदेश की अभिलाषिणी गोपियाँ उद्वेग से जब ब्रह्म
 चर्चा सुनती हैं तो वे कृष्ण के प्रति तीव्र उपालम्भों और व्यंग्यों की वर्णा
 करती हैं। पर इससे उनके ममांहत वियोगी हृदय को शान्ति नहीं मिलती,
 अतः दीन वाणी में वे कृष्ण से कातर स्वर में प्रार्थना करती हैं :

“ हमको पिय तुम एक ही तुमको हम सी कोरि ।

बहुताश्त के रावरे प्रीति न डारो तोरि ॥

एक ही बार यौ ॥ ” १

“ भवरागीत ” के अतिरिक्त नन्ददास जी के विरह
 मंजरी में बारहमासे के माध्यम से उन्होंने विरहिणी की मार्मिक दशा की
 व्यंजना की है और रूप मंजरी में षट् कृतुओं के द्वारा रूप मंजरी का विरह
 वर्णित किया है। बारहमासे और षट् कृतुओं के द्वारा विरह वर्णन सूफियों
 के विरह वर्णन से साम्य रखता है। सूफियों ने अपने ब्रह्मभग सभी प्रेम काव्यों
 में बारहमासे और षट् कृतुओं के द्वारा विरह वर्णन किया है।

परमानन्ददास जी ने और कुंभनदास जी ने अपने पदों
 में विरह के अतीव मार्मिक चित्रण किए हैं। पूर्व राग अवस्था की भी वियोग
 वेदना परमानन्द जी के पदों में द्रष्टव्य है। प्रेम पीर से पीड़ित एक गोपी कहती
 है :

“ जब ते प्रीति स्याम सों कीनी ।

ता दिन ते भरे इन नैननि नैकहु नौद न लीनी ॥

सदा रहत चित चाक चढ़्यौ सी औरे कहु न सुहाय ।
 मन में रहे उपाय मिलन को इहै विचारत जाय ।
 परमानन्द पीर प्रेम की काहु सौं न कहिए ।
 जैसे बिथा भूक बालक की अपने तन मन सहिए ॥ १

पूर्व राग अवस्था की इस विरह वेदना में प्रेम का पुलकित रूप उपलब्ध है परन्तु संयोग के बाद प्रिय के प्रवास गमन पर जो विरह वेदना होती है उसमें प्रलाप, उद्देग, जड़ता आदि भावों का समन्वय होता है। इस प्रकार के विरह का भी परमानन्द दास जी ने अति सुन्दर वर्णन किया है। संयोगमें जो वस्तुयें भली प्रतीत होती थीं वे विरह वेदना की उद्दीप्त बन रही हैं। निशिदिन कहीं कूतुर, मोर, कोकिल, पपीहा, वृन्दाविष्णि की कूँज और चाँदनी सभी कृष्ण वियोग में दुसदाई हैं :

“ माई री चंद लग्यौ दुःख दिन ।
 कहाँ वे देस, कहाँ वे मोहन, कहाँ वे सुख की रैन ।
 तारे गिनत गई री सबै निसि नैकु न लागे नैन ।
 परमानन्द प्रभु पिया बिहुरे ते पल न परत चित चैन ॥ २

काव्य शास्त्र में वर्णित विरह की सभी अवस्थाओं को परमानन्द दास जी ने अपनाया है : अमिताभा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

“ जो पे कोउ माघी सौं कहे ।
 तो कत कमल नैन मथुरा में एकौ घरी रहे ॥

प्रथम हमारी दसा सुनावै गोपी विरह दहै ।
 हा ब्रजनाथ रत्न विरहातुर नैनन नीर बहै ।
 बिननी करि बलवीर धीर सौं चरन सरोज गहै ।
 परमानंद प्रभु इत सिधार वो ग्वालिनि दास लहै ॥ १

कृष्ण भक्ति के चैतन्य सम्प्रदाय में भी संयोग की अपेक्षा विरह को उच्च माना गया है। छण्डीस्वामी जी ने अपने "उज्ज्वल नीलमणि" ग्रंथ में कहा है : "स विपुलम्भो विज्ञेयः सम्भोन्नतिकारकः" अर्थात् विप्रलम्भ संयोग की उत्पत्ति करता है। अतः विप्रलम्भ का स्थान संयोग की अपेक्षा उच्चतर है। इसी कारण चैतन्य महाप्रभु और उनके अनुयायियों में श्रीकृष्ण विरह की विह्वलता विशेष रूप से दृष्टिगत है।

इस प्रकार अधिकांश सूफी कवियों और कृष्ण भक्तों ने अपने काव्यों में संयोग की अपेक्षा विरह को प्रधानता दी है। विरह को प्रधानता देने के कारण ही उनके प्रेम में तीव्रता परिलक्षित है।

प्रेम में रहस्यात्मकता :

रहस्यवाद हृदय की वह दिव्य अनुभूति है जिसके भावावेश में प्राणी ससीम और पार्थिव अस्तित्व से उस असीम और अपार्थिव महाअस्तित्व के साथ एकात्मा का अनुभव करने लगता है। अनेकों विद्वानों ने रहस्यवाद की परिभाषाओं की सीमा में बाँधने का प्रयास किया है। वाक्स-

फोर्ड डिक्शनरी में रहस्यवादी की संज्ञा उसे दी गई है जो ज्ञानातीत सत्ता की आध्यात्मिक अनुभूति को महत्व प्रदान करता है। डा० ई० कैथर्ड ने रहस्यवाद की परिभाषा इस प्रकार दी है, " रहस्यवाद वस्तुतः वह धार्मिक अनुभव है जिसमें ईश्वरानुभूति अपनी चरम सीमा पर पाई जाती है। डा० राधा-कृष्णन ने आध्यात्मिकता को धर्म का सार कहा है और रहस्यवाद का सम्बन्ध धर्म के सार अर्थात् आध्यात्मिकता से स्थापित किया है। प्रीफिस ने अपनी पुस्तक " हिस्ट्री ऑफ इंडियन फिलॉसफी " में रहस्यवाद को धर्म का क्रियात्मक रूप स्वीकार किया है।

रहस्यवाद की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि सूफियों का रहस्यवाद भारतीय अद्वैतवाद से साम्य रखता है अद्वैतवाद ही जब चिन्तन के दौत्र का परित्याग कर काव्य दौत्र में अन्तर्हित होता है तो रहस्यवाद का रूप धारण कर लेता है। रहस्यवाद मुख्य रूप से साधनात्मक और भावात्मक दो प्रकार का होता है। भावात्मक रहस्यवाद के विषय में शुक्ल जी अपनी जायसी ग्रंथावली की भूमिका में लिखते हैं, जब अद्वैतवाद का आधार लेकर भावना या कल्पना उठ खड़ी होती है अर्थात् जब उसका संचार भाव दौत्र में होता है तो उच्च कोटि के भावात्मक रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है।

साधनात्मक रहस्यवाद के अन्तर्गत, हठयोग, तंत्र, रसायन आदि की प्रक्रिया आती है और भावात्मक रहस्यवाद का मूल भाव

१- Spiritual Philosophy in life- pp ६

२- History of Indian Philosophy- Preface

३- जायसी ग्रंथावली- रामचन्द्र शुक्ल भूमिका- पृ० १५३

प्रेम है। इस कारण सूफियों ने भावात्मक रहस्यवाद को अपने काव्य में स्थान दिया है। उनके काव्यों में यूनानी सामान्य प्रेम ही गृहीत होता है पर उसका संकेत परम प्रियतम होता है। बीच बीच में जाने वाले रहस्यात्मक स्थल समस्त विश्व में उसी की स्थिति सूचित करते हैं। इस प्रकार उनके प्रेम का आलम्बन वह सौंदर्यशाली परम सत्ता है और आश्रय जीवात्मा जो ईश्वर से वियुक्त होकर सदैव दुःखी रहा करती है। जगत् में जन्म लेकर ही जीवात्मा परमात्मा से वियुक्त हो गई उससे पहले दोनों में कोई भेद न था। उस परम सत्ता का सौंदर्य समस्त जगत् की सुन्दर वस्तुओं में आभासित होता है। जायसी ने इस सौंदर्य की बढ़ी ही भावपूर्ण भाँकी संजोई है, उसके चरणों का स्पर्श कर मानसरोवर निर्मल होगया, उसके रूप दर्शन से सरोवर ने वही रूप प्राप्त कर लिया, उसके शरीर से जाती हुई मलय पर्वत की सुगन्ध को प्राप्त कर मानस की जलन शान्त हुई एवं उसने अपने समस्त पापों का प्रक्षालन कर पुण्यावस्था प्राप्त की :

“ कहा मानसर चाह सो पाई , पारस रूप इही लगि आई ।
 भा निरमर तेन्ह पायन परसि, पावा रूप रूप के दरसि ॥
 मलै समीर वास तन जाई, भा शीतल गै तपनि बुझाई ।
 न जनों कौन पौन ले जावा, पुनि दसा मै माप गवावा ॥”

उसी परम सौंदर्य मय परमात्मा से प्रेम करने के लिये सूफी लालायित रहते हैं जिसकी ज्योति से संसार में दृष्टिगोचर होने वाली ज्योनियाँ निर्मित हुई तथा सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, रत्न, हीरे

माणिक्य तथा मोती आदि जिसके दाँतों की ज्योति से ज्योतिवान् है :

“ जेहि दिन दसन ज्योति निर्मई, बहुतन्ह ज्योतिर हीई मई ।

रवि, ससि, नखत, दीन्हि ओहि जोति, रत्न पदारथ मानिक
मोती ॥

जई जई विहंसि सुमावहि हँसी, तई तई छिटकि ज्योति

परगसी ॥ “ १

उस सौंदर्य की विभूति का ज्ञान जब मानव को हो जाता है तो वह उस विभूति से प्रेम किये बिना नहीं रहता । कारण सौंदर्य के प्रति मानव का सहज आकर्षण होता है और उसके प्रति आकर्षण हो जाने पर वह उसी के लिये मरने की कामना करता है और उसी के लिये जीवित रहने की । गजपति जब रत्नसेन से सिंहलद्वीप के मार्ग की कठिनाइयों का वर्णन करता है तो रत्नसेन कहता है कि हे गजपति यह मन शक्ति की सीमा है पर जिसके हृदय में प्रेम समुद्र हिलोरे ले रहा है उसे जीवन की भी क्या चिन्ता ? जो पहले ही सिर देकर इस मार्ग की ओर अग्रसर होता है, भला मृत्यु ही उसका क्या बिगाड़ सकती है ? मैंने सुखों का परित्याग का और दुःखों का आश्रय लेकर सिंहल की ओर प्रस्थान किया है जिसने प्रेम समुद्र के दर्शन कर लिए हैं उसके लिये ४ सिंहल के मार्ग में पड़ने वाले सारे समुद्र बूंद सम हैं :

“ गजपति यह मन सकती सीऊ, पे जेहि प्रेम कहाँ तेहि जीऊ ।

जो पहले सिर दे फु धरई, मुर केर मीहुहि का करई ॥

सुख संकलपि दुख साविर लीन्हैउं, नौ पयान सिंहल कहँ कीन्हैऊ ।

२
औ जेइ समुंद पेम कर देखा, तेइ यह समुंद बूंद बरु लेखा ॥ १

जिस सौंदर्य के हेतु प्रेमी प्राण न्याँझावर करने के लिए तत्पर रहता है। उसका सौंदर्य पृथ्वी के कण कण को सिद्ध किये हैं। समस्त जगत् आकाश के नक्षत्र वृक्षों की शाखायें सभी इसी बात की साक्षी देती है :

गगन नखत जस जाहि नगने, हैं सब बान ओहि के हने
घरती बान बैधि सब राखी, साखा ठाढ़ि देहि सब साखी ॥ २

उस मनुष्य का पृथ्वी पर जन्म लेना ही जायसी व्यर्थ मानते हैं जिसने प्रेम पथ पर शीश नहीं नवाया :

जेइ नहिं सीस प्रेम पथ लखा, सो पृथिवी मई काहे को आवा ॥

पृथ्वी पर जन्म लेने की सार्थकता को सिद्ध करने के लिये ही जायसी ने प्रेम की उस उच्चावस्था का वर्णन किया है, जिसको रत्नसिन हीरामन के मुँह से पद्मावती का रूप वर्णन सुन, प्राप्त कर लेता है :

सुनतहि राजा गा मुरझाई, जानहुँ लहरि सुरुज के जाई ।
परा सो प्रेम समुंद अपारा , लहरहिं लहर होई बिसभारा ।
विरह भँवर होई भाँवरि देई, सिन २ जीव हिलोरहिं लेई ॥
सिनहिं निसास बूढ़ि जिउ जाई, सिनहिं उठै निसीस बौराई ॥
सिनहिं पीत सिन होई मुस सेता, सिनहिं चेत सिन होई अचेता ॥ ३

१- पद्मावत- वासुदेवशरण अग्रवाल- पृ० १४२

२- जायसी ग्रंथावली- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- पृ० ४३

यह प्रेम की भावाविष्ठावस्था है जिसे प्राप्त कर साधक साधना मार्ग की ओर अग्रसर होता है।

जायसी के समान मीरान भी उस असीम सौंदर्य का समस्त सृष्टि में व्याप्त मानते हैं। इस समस्त जगत् में उसी एक परमसत्ता की ज्योति छिपी है। कवि मीरान ने ब्रह्म का रूप ही जड़ और संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त दिखाकर जगत् और ब्रह्म की एकता का परिचय दिया है :

“ अबही बिनु जीव जीवन सारेऊँ, जाजु न देखि तोहि जीवन हारेउ ।
देखत ही पहिचाना तो ही, रही रूप जिन कुन्दरयो मोहि ।
इहै रूप तो सहै छिपाना, इहै रूप सब सिस्टि समाना ॥

इहै रूप जल थल और महिबर, भाउ अनैग देसाउ ।
बापु अपान जो देखै, सो कहू देखै पाउ ॥ ” १

उसमान की चित्रावली और नूर मुहम्मद की इन्द्रावली में भी रहस्यात्मकता का अभाव नहीं। सृष्टि के सौंदर्य को देखकर साधक आकृष्ट होता है और उसके कर्ता के रूप का स्मरण करता है :

“ जे दिक् चित्र असजिउ लेनिहारा, दहू कस हीइहि सिरजन हारा ॥ ” २

“ नूर मुहम्मद ” की “ इन्द्रावली ” का सौंदर्य भी उन्ना प्रभावशाली है कि वह जिस ओर दृष्टि डालती है वही संसार से विमुख

हो जाता है। वह इन्हीं सौंदर्यवाली है कि उसकी सब बिना देखे ही सराहना करे हैं।

“ जो काहुज पर डोरि डीठी, सोजन देख जगत् दिसि पीठी ।
जस रूपवन्ती सुन्दर बाहै , बिनु देखे सब नाहि सराहै ॥ ” १

उसी की ज्योति से सूर्य, चन्द्र एवं नक्षत्र प्रकाशित हैं। रात्रि अपने सहस्रों नेत्र रूपी तारों से उसी का सौंदर्य निरखती हैं :

“ है तेहि चंद्र बदन लसि, जगत नयन उजियार ।
गगन सहस्र लोचन सौं निरखै तेहिक शृंगार ॥ ”

सूफियों के समान कृष्ण भक्ति शास्त्र के कवियों ने भी रहस्यवादी प्रणय मूलक भक्ति को अपने काव्य में स्थान दिया है। शब्द की जिस व्यंजना शक्ति से सूफी काम लेते हैं, वही शक्ति कृष्ण भक्त कवियों में भी दिखाई देती है। कृष्ण भक्तों ने कृष्ण तथा गोपियों के रूप में ब्रह्म और जीवात्मा की व्यंजना की है। एक पद में सूरदास जी कहते हैं :

“ ब्रजहु बसे जापहुं विसरायौ ।
प्रकृति पुरुष एक करि जानौ वातमि भेद करायौ ।
जल थल जहाँ रहौ तुम बिनु नहिं भेद उपनिषद गायौ ।
हैं तनु जीव एक हम तुम दोउ सुख कारन उपजायौ ॥
ब्रह्म रूप द्वितीया नहीं कोउ तब मन त्रिया जनायौ ॥
सूर स्याम मुख देखि अलप हँसि आनंद पुंज बढ़ायौ ॥ ” २

यद्यपि यह रहस्यात्मकता भागवतादि ग्रंथों में द्रष्टव्य है पर जन समुदाय में यह भावना लुप्त प्रायः ही रही थी। इस कारण यह कहना अनुचित न होगा कि सूफियों व वैष्णव भक्तों की रहस्यात्मकता का आधार भागवत वहीं वरन् उनकी पृथक् पृथक् भावनार्य थी जो समय पाकर प्रकाश में आईं।

निष्कर्ष :

अतः सूफी कवियों और कृष्ण भक्तों की प्रेम-पद्धति में पर्याप्त साम्य है और इसका कारण है उनके लक्ष्य की एकता भले ही उसकी प्राप्ति के साधन पृथक् २ हों। तभी तो दोनों की प्रेम पद्धति में भावात्मक स्वरूपणा दृष्टिगत होती है। लौकिक प्रेम की अलौकिक प्रेम में परिणति पर दोनों सम्प्रदयों में बल दिया है। प्रेम के समस्त वाह्य विधि विधानों का जो निरस्करण सूफी प्रेम काव्यों में उपलब्ध है वहीं कृष्ण भक्ति काव्यों में भी। इसी प्रकार दोनों ने प्रेम में तीव्रता, अनन्यता, एकनिष्ठता एवं संयोग से अधिक वियोग को प्रधानता दी है। कृष्ण भक्त कवि रहस्यवादी नहीं कहे जा सकते किन्तु फिर भी प्रेम की रहस्यात्मकता के विवेचन में वे सूफी कवियों के साथ स्वर मिला देते हैं। वस्तुतः सूफी कवियों और कृष्ण भक्त कवियों की प्रेम-पद्धति के श्रोत पृथक् पृथक् होने पर भी दोनों में भावनात्मक साम्य है जो दोनों को एक दूसरे के निकट लाने में योग देता है।

अष्टम अध्याय

सूफ़ी कवियों एवं कृष्ण भक्त कवियों की प्रेम पद्धति में

वैगम्य

सूफी कवियों और कृष्ण भक्त कवियों की प्रेम-पद्धति में साम्य के साथ साथ वैषम्य के तत्व भी उपलब्ध हैं। दोनों की परम्परा कन, वर्णन-पद्धति, काव्य-रूप, सिद्धान्त निरूपण आदि में जो वैभिन्न्य है, वह सर्वत्र परिलक्षित होता है।

परम्परा का वैभिन्न्य :

कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी प्रेम-पद्धति के लिए श्रीमद्-भागवत का अनुसरण किया है। जिस प्रेम का प्रसार सोलहवीं, सत्रहवीं शताब्दी में दिखाई देता है वह भागवतादि पौराणिक ग्रंथों का अनुकूल प्रेम है। हिन्दी सूफी कवियों ने अपने प्रेमास्थानों में जिस प्रेम-पद्धति को अपनाया है, उसमें एक ओर तो फारसी के सूफी प्रेमास्थानों की परम्परार्थ सुरक्षित हैं, दूसरी ओर इनमें भारतीय चरित काव्यों की प्रवृत्तियाँ भी मुखरित हो उठी हैं। इस प्रकार हिन्दी सूफी प्रेमास्थानों के रचयिता जहाँ एक ओर फारसी प्रेमास्थानों के प्रेम-निरूपण की भावभूमियों से प्रेरित हैं, वहाँ दूसरी ओर भारतीय वातावरण का भी उन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। फारसी में 'लैला मजनून' शीरी फरहाद, तथा यूसुफ जुलेखा की कथाओं को लेकर मसनवियों की सृष्टि हुई, जिन्हें फारसी प्रेमास्थानों की संज्ञा से अभिहित किया गया है। फारसी में मसनवियों की एक समृद्ध परम्परा उपलब्ध होती है। रूमी, सनाई, जामी, अत्तार और सादी प्रसिद्ध मसनवीकार रहे हैं। मसनवियाँ साधारण रूप से 'सर्ग-बद्ध' होती हैं। प्रथम सर्ग में ईश्वर का गुणानुवाद रहता है। द्वितीय में फाम्बर को स्मरण किया जाता है। तृतीय में फाम्बर के मेराज की चर्चा

रहती है। उसके बाद वाले सर्ग में शासनकर्ता सुल्तान या किसी महान् व्यक्ति की प्रशंसा रहती है। इसके बाद एक ऐसा सर्ग होता है जिसमें साधारणपणतः कवि यह वर्णन करता है कि वस्तु उद्देश्य से कथवा वस्तु मित्र की प्रेरणा प्राप्त कर उसने इस ग्रंथ का प्रणयन किया। इसके पश्चात् ही मूल काव्य ग्रंथ का प्रारम्भ होता है। काव्य ग्रंथ के विभाग या सण्ड होते हैं जो मूलतः सर्गबद्ध रहते हैं। प्रत्येक सर्ग के ऊपर उस सर्ग में वर्णित विषय संक्षिप्त रूप में रहता है। अन्त में कवि एक उपसंहार से ग्रंथ को समाप्त करता है। लेखक कथाओं के माध्यम से अलौकिक प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति ही इन मसनवियों की विशेषता है।

फारसी मसनवियों की उपर्युक्त लक्षण सभी विशेषताएँ हिन्दी सूफी प्रमास्थानों में उपलब्ध होती हैं। अधिकांश सूफी कवियों ने अपनी रचनाएँ परमात्मा की स्तुति से प्रारम्भ की हैं। उदाहरण के लिए जायसी कृत "फदमावत" में प्रारम्भ की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

“सुमिरौ वादि एक करतारु । जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह सैसारु ॥
कीन्हैसि प्रथम जोति परकासू । कीन्हैसि तेहि विरीत कैलासू ॥”

८
कीन्ह सबै अस जाकर, दूसर हाजन काहि ।

पहिले ताकर नांव लै, कथा करौ वीगाहि ॥” १

परमात्मा की स्तुति के बाद कवि ने हजरत मुहम्मद साहब की स्तुति तथा “शाहेवक्त” (बादशाह) की प्रशंसा की है :

१- जायसी ग्रन्थावली - बाबाय रामचन्द्र शुक्ल- स्तुति सण्ड- पृ० १

“ कीन्हैसि पुरुष सक निरमरा । नाम मुहम्मद पूनी करा ॥

प्रथम जोति विधि ताकरसाजी । वीतैहि प्रीति सिहिर उपराजी ॥”

“ सरसाहि देहली सुलतानू । चारिउ सण्ड तपै जस मानू ॥

वोहि क्राज क्रात वी पाटा । सब राजै मुई धरा लिलाटा ॥” २

इसके उपरान्त ही कवि ने मूल कथा को उठाया है, जो बिना अध्यायों में विभक्त हुए निरन्तर प्रातिशील रही है। बीच बीच में प्रमुख प्रमुख घटनाओं के शीर्षक दे दिए गये हैं, जो अध्यायों या सर्गों के स्थानापन्न हैं एवं जिनकी संख्या पर्याप्त है। फारसी कवियों ने नायक को नायिका की अपेक्षा अधिक प्रेमीदीप्त दिखाया है। मजनुू सैला के प्रेम में वि-
दिग्भावस्था को प्राप्त होता है, इसी प्रकार फरहाद शीरी की उपलब्धि हेतु पर्वत काटकर नहर बनाता है परन्तु फिर भी प्रेमिका के न प्राप्त होने पर उसी नहर में गिरकर प्राण गँवा देता है। फारसी मसनवियों के नायकों के समान हिन्दी सूफी कवियों के नायक भी अपनी प्रेमिकाओं की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हैं। रत्नसेन पद्मावती की प्राप्ति के लिए, मनोहर मधु-
मालती के लिए, एवं सुजान चित्रावली के लिए अपने अपने प्राणों की बाजी लगा देते हैं। काव्य ग्रंथों के नामकरण भी फारसी काव्यों के समान नायक और नायिका के नामों पर किया गया है। हिन्दी सूफी काव्यों की मूल भावना लौकिक प्रेम कथाओं के माध्यम से अलौकिक के प्रति प्रेम को हृदयगम करने का स्तुत्य प्रयास भी फारसी कवियों की ही देन है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह बात दृढ़ता से कही

१- जायसी ग्रंथावली- सं० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल स्तुति सण्ड पृ० ४

२-

..

..

पृ० ५

जा सकती है कि हिन्दी सूफी कवियों द्वारा रचित प्रेमास्थानक काव्य विशुद्ध रूप में फारसी की मसनवी परम्परा का ही अनुगामी रहा है, परन्तु मसनवी परम्परा को ग्रहण करने पर भी ये काव्य भारतीय लोक कथाओं पर आधारित है। डा० हजारि प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि, “लौकिक निजन्धरी कहानियों को आश्रय करके धर्मोपदेश देना इस देश की चिराचरित प्रथा है। — हमारे साहित्य के इतिहास में एक गलत और बेबुनियाद बात यह चल पड़ी है कि लौकिक प्रेम कथाओं का आश्रय करके धर्म भावनाओं के उपदेश देने का कार्य सूफी कवियों ने आरम्भ किया था। बौद्ध ब्राह्मणों और जैनों के अनेक आचार्यों ने नैतिक और धार्मिक उपदेश देने के लिए लोक कथाओं का आश्रय लिया था।” इस प्रकार डा० हजारि प्रसाद द्विवेदी सूफी काव्य को लौकिक कथाओं के माध्यम से धर्मोपदेश देने वाले बौद्ध, ब्राह्मण और जैन ग्रंथों की परम्परा की परवर्ती कड़ी स्वीकार करते हैं।

वस्तुतः सूफी प्रेमास्थानों में हमें कुछ ऐसी विशेषताएँ दिखाई देती हैं, जो इन्हें भारतीय प्रेमास्थानों की प्राचीन काल से चली जाती हुई परम्परा के समीप ला देती हैं। भारतीय प्रेमास्थानों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। उनके कुछ उदाहरण ऋग्वेद संहिता तक में पाये जाते हैं। ‘प्रसूवा उर्वशी, यम यमी संवाद, श्यावाश्व’ की कथा ऐसे ही पौराणिक प्रेमास्थान हैं। प्रेमास्थानों की यह परम्परा ‘कालिदास का विक्रमोर्वशीय, महाभारत का नलोपास्थान, उषा अनिरुद्ध की कथा, प्रद्युम्न और मायावती, ‘अर्जुन और सुमद्रा’ आदि उपास्थानों के रूप में आगे भी चलती रही। बौद्ध एवं जैन प्रेमास्थानों में ‘पद्मसिरी, मविसय्य कहा, णयकुमार चरित, ककुप्पु

१- हिन्दी साहित्य का आदिकाल - डा० हजारि प्रसाद द्विवेदी

चरित आदि प्रमुख हैं। लोकगाथात्मक प्रेमास्थानों में राजस्थानी की 'ढोला-
मारवणी' कथा, लौकिक और मैनावती, माधवानल कामकन्दला आदि प्रच-
लित हैं। हिन्दी के आदिकाल की रासो परम्परा भी जिसका सर्वाधिक विपु-
लकाय ग्रंथ पृथ्वीराज रासो है, प्रेमास्थान परम्परा के ही अन्तर्गत आती है।
इस प्रकार हम देखते हैं कि सूफी कवियों के प्रेमास्थानों के पूर्व भी हिन्दी
प्रेमास्थानों की कमी नहीं थी। अधिकारी सूफियों ने हिन्दू धरानों की लोक
प्रचलित कहानियों को अपनी कल्पना द्वारा सजा सवार कर काव्य का रूप
प्रदान किया।

उदाहरणार्थ मुल्ला दाऊद कृत 'चन्दायन' लोक
गाथा रूप में चली जाती हुई 'लौकिक और मैनावती' नामक कहानी
का परिष्कृत रूप है। जायसी ने अपनी प्रेम कहानी का कथानक राजस्थान
के इतिहास से ग्रहण किया है। यही कारण है कि इनका 'पदमावत'
इतिहास और कल्पना का अपूर्व समन्वय है। रत्नसेन, पदमावती आदि ऐति-
हासिक पात्र हैं, कुछ ऐतिहासिक घटनाओं को भी जायसी ने अपनाया है
जैसे अलाउद्दीन का चित्तौड़ पर आक्रमण, परन्तु इसके साथ अधिकारी पात्र
और घटनाओं का सृजन कवि ने स्वयं अपनी कल्पना से किया है। इसी प्रकार
शेख रीफन की 'मधुमालती' के कथानक का मूल स्रोत भी किसी पुरानी
प्रचलित कहानी में ही खोजा जा सकता है। स्वयं रीफन का कथन है कि
'आदिकथा बापर चलि आई' और यह 'कलियुग महँ भासा' के
माध्यम से गायी गयी थी। रीफन की 'मधुमालती' के बाद लिखी गई
सूफी प्रेमाथाओं में से ऐसी बहुत कम मिलती हैं, जिनके मूलधार कथानक

की सौज के विषय में अभी तक कोई प्रयत्न किया गया हो। उसमान कवि ने अपनी 'चित्रावली' की प्रारम्भिक पंक्तियों में उसे स्वयं काल्पनिक कह दिया है, अतः उसके विषय में सौज बोन करने का प्रश्न ही नहीं रह जाता। उन्होंने कहा है, 'इस कथा को मैंने अपने हृदय से उत्पन्न किया है, जो कहते समय भी मोठी जान पड़ती है और सुनने में भी सुन्दर लगेगी। जैसा सूफ पड़ा है इसे मैंने बनाया है और जिसे यह जैसी सूफ पड़ेगी वैसी बूझ पायेगा।'

अतः सूफियों की प्रेम गाथाएँ या तो लोक प्रचलित कहानियों का रूप हैं या काल्पनिक हैं। इन लोक प्रचलित या काल्पनिक प्रेम कथाओं की सर्जना कर सूफियों ने गहरे प्रेम के माध्यम से ईश्वर के प्रति अपने गंभीर और एकान्त प्रेम की अभिव्यक्ति की। हिन्दुओं के घरों में बहुत समय से चली आती हुई कहानियों को लेकर सूफी कवियों ने उनमें बहुत कुछ हेर फेर की है। कहानियों का मार्मिक आधार हिन्दू कहानियाँ हैं। नारी को पातिव्रत, प्रेम में एकनिष्ठता, अहिंसा, परोपकार, मनुष्य के साथ पशु पक्षी और पेड़ पौधों को सहानुभूति सूत्र में बद्ध दिखाकर एक असण्ड जीवन समष्टि का आभास देना हिन्दू कहानियों की विशेषता है। ये सभी विशेषताएँ सूफी प्रेमास्थानों में मिलती हैं। यहाँ भी मानव के गहन दुःख पर वन के वृद्ध भी रोते हैं, पशु पक्षी भी संदेश पहुँचाते हैं।

सूफी कवियों में हिन्दू जीवन और धर्म के प्रति धार्मिक सहिष्णुता और सहानुभूति दिखाई देती है। उन्होंने हिन्दू देवी देवताओं, प्राचीन पौराणिक आस्थानों, मंदिरों, तीर्थ स्थानों आदि के प्रति पूर्ण

१- चित्रावली- नागरी प्रचारिणी सभा- संस्करण दोहा ३२ पृ० १४

२- हिन्दी साहित्य का इतिहास- पृ० रामचन्द्र शुक्ल- पृ० ७२

हिन्दी प्रेमास्थानों की परम्परा का अनुसरण किया है। उनके काव्यों की कथानक रूढ़ियाँ प्रायः चरित् काव्यों की कथानक रूढ़ियों के समान ही हैं। इस प्रकार सूफियों की प्रेम पद्धति फारसी काव्यों एवं हिन्दी प्रेमास्थानों का समन्वित रूप है।

हिन्दी सूफी कवियों ने जहाँ फारसी और हिन्दी प्रेमास्थान परम्परा का अनुवर्तन किया है, वहाँ कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी प्रेम पद्धति के निर्माण हेतु पृथक् ही मार्ग की खोज की। उन्होंने सदियों से चली आती हुई परम्परा को अपनाया। जिस माधुर्यमयी उपासना के अवलम्ब से उन्होंने अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण को प्रसन्न किया, वह उनकी दृष्टि में यूँ तो वेदों का सार स्वरूप ही थी परन्तु पुराणकाल तक आते आते उसका विस्तार हो गया था और श्रीमद्भागवत में तो कृष्ण के ऐश्वर्य और माधुर्य रूपों का उद्भूत मिश्रण दृष्टिगन् होता है। माधुर्योपासक जब अपने प्रियतम की रसमयी उपासना में संलग्न हो जाता है तो वह अपने मन, शरीर तथा प्राण सभी को प्रियतम के हेतु समर्पित कर देता है। उसके समस्त सांसारिक विषय समाप्त हो जाते हैं और वह प्रियतम हो जाता है। इष्टदेव के संयोग में जो दीर्घकाल दाण्ड सम व्यतीत होता था, उनके वियोग में वही काल साधक को दुःखदायक प्रतीत होता है। श्रीकृष्ण के अनुराग में रंजित गोपियों को वही दशा भागवत के दशम स्कन्ध में दिसाई देती है :

“ यस्यानुरागललितस्मित वल्गुर्मत्र-

लीलावलोक परिरम्भण रासगोष्ठयाम् ।

नीताः स्मनः दाण्डमिव दाण्डाविनार्त,

गोपयः कथन्वतितरेम तमोदुरन्तम् ॥ ” १

अर्थात् जिन कृष्ण के स्नेहयुक्त मन्द २ मुस्कराते हुए मनोहर मुस को देखकर उनके सुमधुर वचनों को सुनकर एवं लीला सहित उन्हें देखते हुए प्रेमालिंगनों द्वारा रास झीड़ा में हमने अनेक रात्रियाँ जाण सम व्यतीत कर दीं, श्रीकृष्ण के विरह में उनके वियोगजन्य दुःख को हम किस प्रकार सहन करेंगी ? अर्थात् इस दुःख विरह दुःख का सहन करना तो अव्यक्त कठिन है।

भागवत की गोपियों की इसी अवस्था का प्रतिरूप सूरसागर की गोपियाँ हैं। रासस्थल से श्रीकृष्ण के अन्तर्धान होने पर वे व्याधा से व्याकुल हो उठती हैं और लतावल्लरियों से कृष्ण का पता पूछती हैं :

“ अति व्याकुल भई गोपिका, दूढ़ति गिरिधारी ।

ब्रूफति हैं बन बेलि सौं, देखे बनवारी ॥ ” १

अनेक कृष्ण भक्त कवियों ने श्रीमद्भागवत के आधार पर अपने ग्रंथों का भी नामकरण किया है। निम्बार्क मत के आरक्षण में शुकदेवाचार्य जी ने “ सिद्धांत प्रदीप ” में सम्पूर्ण भागवत का विवेचन प्रस्तुत किया । चैतन्य मत के आचार्य सनातन गोस्वामी जी ने “ बृहत् वैष्णव तोषिणी ” में भागवत के दशम स्कन्ध की आध्यात्मिक टीकाएँ प्रस्तुत की तथा जीव गोस्वामी जी ने भी सम्पूर्ण भागवत की आध्यात्मिक व्याख्या की और उसके अभिव्यक्तीकरण हेतु षट् सन्दर्भ नामक ६ सन्दर्भों की पृष्ठा से रचना की । आचार्य वल्लभ ने “ भागवत की सुबोधिनी टीका ” का निर्माण किया एवं अन्य आचार्यों ने भी

दशम स्कन्ध के रास लीला आदि प्रसंगों की सौंदर्यपूर्ण व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं। नन्ददास जी ने अपने 'भागवत दशम स्कन्ध' में श्रीमद्भागवत का अक्षरशः अनुवाद न करके भावानुवाद किया है। इनकी 'रास पंचाध्यायी' का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत का रासक्रीड़ा प्रसंग ही है। अपनी पुस्तक के प्रथम अध्याय में कवि स्वयं इस बात को स्वीकार करता है कि उसने भागवत से रासलीला की कथा ग्रहण की है :

“ श्री भागवत सुनाम परम वभिराम परम वपति।
 निगम सार सुक सार बिना गुरु कृपा काम वति ।
 ताही में मणि वति रहस्य यह पंचाध्याई ।
 तन में जैसे पंच प्रान अस सुख मुनि गाई ।
 परम रक्षि क मित्र मोहि तिन वाजा दीनी ,
 याही ते यह कथा यथामति भाषा कीनी ॥ ” १

अन्य कृष्ण भक्त कवियों ने भी अपने काव्य सृजन हेतु भागवत का अनुसरण किया है। भागवत में वर्णित कृष्ण और गोपियों का प्रेम उच्च कोटि का है। कृष्ण प्रेम प्राप्त करने के लिए गोपियों ने अपना सर्वस्व कृष्ण चरणों में अर्पित कर दिया एवं दुर्जर गृह बन्धनों की अवहेलना कर उन्होंने कृष्ण भक्ति या कृष्ण प्रेम की प्राप्ति को ही अपना एक मात्र लक्ष्य बनाया । कृष्ण भी उस प्रेम बन्धन में बंधने को बाध्य हो गए । प्रेम का यही उत्कट स्वरूप मध्ययुगीन कृष्ण भक्त कवियों में भी द्रष्टव्य है।

भागवत में राधा का वर्णन नहीं है परन्तु एक ऐसी

गोपी का उल्लेख है जिस पर कृष्ण की विशेष कृपा थी और जिसे रास झोड़ा करते हुए कृष्ण अन्य गोपियों से पृथक् ले जाते हैं। उसके भाग्य से ईर्ष्या करते हुए गोपियाँ परस्पर कहती हैं :

“जनयाराधितो नूनं भगवान्हरिरीश्वरः ।

यन्नोविहाय गोविन्दः प्रीतोयाम न यद्गहः ॥” १

अर्थात् इस प्रेमिका ने भगवान् हरि को अवश्य आराधित कर लिया होगा, जिस पर प्रसन्न हो वे उसे सैकड़ स्थल पर ले गये और हमें झोड़ दिया ।

सम्भव है कृष्ण की प्रिया वही गोपी राधा हो ।

मध्य युगीन कृष्ण भक्तों ने राधा की सृजना की । राधावल्लभ सम्प्रदाय में तो कृष्ण से अधिक राधा का महत्व वर्णित है। राधा और कृष्ण थे ही मध्ययुगीन कृष्ण भक्ति या प्रेम के आश्रय स्थल रहे हैं। गोपियाँ इस प्रेम में सहयोग प्रदात्री हैं।

आलवार सन्तों के पदों में भी हमें गोपी कृष्ण की लीलाओं का आभास मिल जाता है। कुछ विद्वानों ने आलवार भक्ति साधना को कृष्ण भक्ति के समकक्ष माना है। “प्रबन्धम्” नाम से संगृहीत उनके चार हजार भावपूर्ण गीतों में विष्णु, नारायण एवं उनके अवतारों राम और कृष्ण के प्रति अनन्य भाव का प्रेम प्रदर्शित है। डा० हरबंश लाल शर्मा के अनुसार “इन भक्त कवियों ने प्रेमाभक्ति के वे गीत गाए जिसकी मधुर धारा में तर्क, शास्त्रज्ञान, अविश्वास आदि के भाव विलीन होगए और समस्त देश रसासिक्त

१- श्रीमद्भागवत- दशम स्कन्ध- पूर्वार्द्ध अध्याय ३० श्लोक २८

२- Hymns of Alvars- JSM Hooper pp 18

हो गया^१। “ यही कारण है कृष्ण भक्तों की प्रेम पद्धति को आलवार सन्तों की भी देन माना जाता है। परन्तु आलवार भक्त और कृष्ण भक्तों की प्रेम पद्धति में अन्तर है। आलवार भक्त कृष्ण को प्रियतम मानकर स्वयं को उसकी प्रियतमा स्वीकार करते थे परन्तु ब्रज के लगभग सभी कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों में राधा कृष्ण को प्रिया प्रियतम स्वीकार किया गया है और उन्हीं की प्रेम लीलाओं के माध्यमसे मधुर रसास्वादन का प्रयास किया गया है।

गोपी कृष्ण लीलाओं की पूर्ण प्रतिष्ठा श्रीमद्भागवत में हो चुकी थी और मध्ययुगीन कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी प्रेम पद्धति में इन्हीं लीलाओं को अपनाया है, यह सम्भव है कि आलवार सन्तों की प्रेम पद्धति का भी पुट उनके काव्य में आ गया हो परन्तु अपनी प्रेम पद्धति का आधार इन्होंने भागवत को ही बनाया। बंगाल के चैतन्य सम्प्रदाय वाले वैष्णवों की रागानुगा भक्ति के लिए तो भागवत पुराण की गोपियाँ वादश ही बन गईं और इन्होंने गोपी भाव को सर्वश्रेष्ठ कहकर उसकी पूज्य व्याख्या ही कर डाली।

गौड़ीय सम्प्रदाय के भक्ति सिद्धान्तों का सार देते हुए श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इसी तथ्य का उल्लेख निम्न श्लोक में किया है :

“ वाराध्यो भगवान् ब्रजेशत्तजयस्तद्धाम वृन्दावनम् ।

रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूर्गण या कल्पिता ॥

शास्त्रं भागवत प्रमाणमलं प्रेमापुमर्थं महान् ।

श्री चैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो न परः ॥ ” २

१- सूर और उनका साहित्य- डा० हरबंश लाल शर्मा - पृ० ८५

२- ब्रजभाषा के कृष्ण काव्य में माधुर्य भक्ति - ले० डा० रूपनारायण पृ० ११८

आचार्य वल्लभ ने अपने सिद्धान्त प्रतिपादन के लिए भागवत पुराण पर टीका लिखकर उसका महत्त्व प्रतिपादित किया। तभी तो आचार्य शुक्ल ने कहा है, “ इस परिस्थिति में भागवत की प्रेम लक्षणा भक्ति के प्रचार द्वारा ही लोगों के कल्याण मार्ग की ओर आकर्षित होने और साथ ही साथ भारतीय संस्कृति के बने रहने की सम्भावना आचार्य (वल्लभ) को दिसाई दी।^१”

परशुराम चतुर्वेदी ने भी अपनी ‘मध्यकालीन प्रेम-साधना’ में लिखा है, “ श्रीमद्भागवत पुराण मध्यकालीन युग के लिए कदाचित् सबसे महत्त्वपूर्ण भक्ति ग्रंथ सिद्ध हुआ। इसके आदर्श पर अथवा इसके विषय और वर्णन शैली का अनुसरण करते हुए अन्य कई पुराणों की भी रचना की गई। इसकी विविध टीकाएँ लिखी गईं, अनुवाद किये गये तथा इसकी कृष्ण कथा के आधार पर उस अवतार का गुणानुवाद प्रायः प्रत्येक प्रचलित भाषा में किया जाने लगा।^२”

श्रीमद्भागवत का स्पष्ट प्रभाव संस्कृत में जयदेव के ‘गीत गोविन्द’ पर भी लक्षित होता है। ‘गीतगोविन्द’ में राधा कृष्ण की निर्बुज लीलार्थ विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। वसन्त के सौंदर्यपूर्ण वातावरण में विरह व्यथा से व्याकुल राधा कृष्ण की रूपमाधुरी के ध्यान में लीन है। वे अपनी सखियों द्वारा कृष्ण के पास सदैव भेजती हैं, उधर श्रीकृष्ण भी राधा से मिलने को व्याकुल हैं और दूती द्वारा उनके पास सदैव भेजते हैं। कवि राधा का चित्रण वासकसज्जा, सण्डिता, कलहान्तिरत्ना, मानिनी और

१- सूरदास- ले० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- पृ० ६०

२- मध्यकालीन प्रेम साधना- श्री परशुराम चतुर्वेदी- पृ० १७५

अभिसारिका आदि रूपों में करता हुआ अन्त में उनके कृष्ण मिलन और केलि विलास का वर्णन करता है। श्रीमद्भागवत में जिस राधा का वर्णन गोपी रूप में है, वह 'गीत गोविन्द' में एकीभाव और एकान्त निष्ठा को प्राप्त कर अधिक गम्भीर हो गया। कवि जयदेव ने उसे अमर करके मध्य युगीन कृष्ण भक्तों के लिए एक आदर्श उपासिका प्रदान की। अतः प्रेमसाधना के जिस रूप का दर्शन हमें श्रीमद्भागवत में होता है, वह जयदेव के गीतगोविन्द तक आते आते अधिक स्पष्ट होगया एवं मध्ययुगीन कृष्ण भक्त कवियों ने उस शृंखला को और अधिक दृढ़ता प्रदान की।

भागवत पुराण में भी दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध का स्थान महत्वपूर्ण है, कारण उसमें कृष्ण की माधुर्यपरक शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर सभी प्रकार की लीलाओं का मधुर शैली में वर्णन उपलब्ध है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूफी सन्त कवियों और कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी प्रेम पद्धति के लिए जिन परम्पराओं का अनुवर्तन किया है, उनमें बहुत बड़ा अन्तर है, एक फारसी मसनवियों का आधार लिए हुए प्रेमास्थानों की परम्परा है और दूसरी श्रीमद्भागवत की प्रेमलक्षणा भक्ति की परम्परा।

परम्परागत वैभिन्न्य होने पर भी सूफी कवियों और कृष्ण भक्त कवियों ने एक दूसरे की प्रेम-पद्धति के भाव और विचारों को ग्रहण कर पारस्परिक आदर की भावना व्यक्त की है एवं आपस में समन्वय उत्पन्न करने का प्रयास किया है।

प्रतीक, उपमानों और अप्रस्तुत योजना आदि का वैमिन्य :

ईश्वर की असीम, अगोचर वर्णनातीत तथा विराट् सत्ता की अभिव्यक्ति शब्दों की शक्ति द्वारा सम्भव नहीं, अतः प्रतीक तथा उपमानों की योजना करना अनिवार्य सा हो जाता है। प्रतीकों में अभिव्यक्ति शक्ति प्रबल होती है। इनके द्वारा भावों को सम्पूर्ण तीव्रता का तो प्रकटीकरण असम्भव है, हाँ उसका आभास अवश्य ही किया जा सकता है। प्रभु की महत्ता के आभासीकरण के हेतु सूफी कवियों एवं कृष्ण भक्त दोनों ने ही प्रतीक और उपमानों का चयन किया है, पर दोनों के चयन में विशिष्ट अन्तर है। सूफी सन्त कवियों ने लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति की है और यह कार्य उन्होंने प्रतीकों आश्रय से सम्पन्न किया है। उनके कुछ प्रतीक और उपमान भारतीय हैं, कुछ फारसी की मसनवियों द्वारा ग्रहण किए गए हैं, एवं कुछ नवीन प्रयोगों पर आधारित हैं। इसके विपरीत कृष्ण भक्तों द्वारा प्रयुक्त प्रतीक और उपमान परम्परागत हैं और भागवतादि पुराणों के अनुकरण के कारण अत्युक्ति से कोसों दूर हैं।

अपनी प्रेम कथाओं के व्यापक प्रचार एवं अभिव्यक्ति के लिए तथा निराकार ब्रह्म को पाठक के समक्ष सरलतम तथा सुलभ रूप से प्रस्तुत करने के हेतु सूफियों ने प्रतीक और उपमानों को पर्याप्त योजना की है। जायसी का तो सम्पूर्ण पदमावत ही प्रतीक रूप में है। कथा के उपसंहार में उनकी ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं जिनमें पात्रों और स्थानों के प्रतीकों का स्पष्टीकरण किया गया है :

“ मैं रहि अरथ पण्डितन्ह बूझा । कहा कि हम्ह किछु और न सूझा ।

चौदह भुवन जोतर उपराही । ते सब मानुष के घर माहीं ॥
 तन चितउर मन राजा कीन्हा । हिय सिंहल बुधि पदमिनि चीन्हा ॥
 गुरु सुखा जेइ पंथ देखावा । बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ।
 नागमनी यह दुनिया धन्धा । वाचा सोइ न रहि चित बंधा ॥
 राघव दूत सोइ सैतानू । माया अलाउदी सुलतानू ॥
 प्रेम कथा रहि मांति बिचारहु । बूझि लेहु जौ बूझे पारहु ॥ १

डा० माता प्रसाद जी गुप्त ने जायसी की इन पंक्तियों को प्रदिप्त माना है। परन्तु प्रो० दान बहादुर पाठक और प्रो० जीवन प्रकाश जोशी अपनी पुस्तक 'जायसी और उनका पदमावत' में माता प्रसाद जी गुप्त के कथन को अप्रामाणिक आधार वाला मानते हुए प्रस्तुत पंक्तियों को जायसी कृत ही स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार डा० सुधीन्द्र का कथन है, " कि पदमावत एक विराट् आध्यात्मिक रूपक सक्ति अथवा अन्याक्ति है जिसमें लौकिक, शारीरिक और बोधायन प्रतीकों के द्वारा अलौकिक, अशारीरिक और ज्ञानातीत ब्रह्म, जीव और उसके चिरन्तन सम्बन्ध कथित की व्यंजना की गई है। " पं० चन्द्रबली पाण्डेय ने भी इस अंश को जायसी कृत ही स्वीकार किया है।

प्रस्तुत अंश जायसी कृत है या नहीं, इस कथन की समीक्षा करना हमारा विषय नहीं, हाँ इस कथन के आधार पर यह अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि जायसी ने अपने 'पदमावत' में प्रचुर परिमाण में प्रतीकों का आश्रय लिया है जिससे कि विद्वानों को सम्पूर्ण

१- जायसी ग्रंथावली- सं० रामचन्द्र शुक्ल- पृ० ३०१

२- जायसी ग्रंथावली- भूमिका- माता प्रसाद गुप्त पृ० ६३

३- जायसी और उनका पदमावत- प्रो० दानबहादुर पाठक एवं जीवन प्रकाश जोशी - पृ० १८०, १८१

४- पदमावत का काव्य सौंदर्य- ले० चन्द्रबली पाण्डेय पृ० १२६, १३०

ग्रंथ को ही प्रतीक कहने के लिए बाध्य होना पड़ा है। 'पद्मावती' के पात्रों में पद्मावती की प्रतीकात्मकता सर्वोत्कृष्ट है। यों तो वह रत्नसिन की प्रेमिका है, पर अलौकिक रूप में वह ब्रह्म की प्रतीक है। वह विश्वव्यापी महाज्योतिष का ही रूप है। वही ज्योति चन्द्र रूप में आकाश में मासित होती है। वही शिवलोक की मणि है, जिसका प्रकटीकरण सिंधलद्वीप को प्रकाशित करने के लिए हुआ है :

“ सोने मंदिर सवारहि औ चन्दन सब लीप ।

दिया जो मनि शिवलोक मंह बुपना सिंधल दीप ॥ ” १

इसी प्रकार मङ्गल की 'मधुमालती' भी ब्रह्म का प्रतीक है जिसका रूप सर्वत्र व्याप्त है :

“ एही रूप प्राट बहुरूपा, एही रूप जेहि भाव अनूपा ।

एही रूप सब नैनन्ह जोति, एही रूप सब सागर मोती ।

एही रूप सब फूलन्ह बासा, एही रूप रस भँवर बटासा ॥ ” २

नूर मुहम्मद की 'इन्द्रावती' भी इस ईश्वरीय ज्योति का प्रतीक है, जिसके चन्द्र बदन से जगत् के नेत्रों को प्रकाश मिलता है। आकाश भी अपने सहस्र नेत्र रूपी नक्षत्रों से उसी ज्योति के शृंगार-दर्शन में मग्न है :

“ है तेहि चन्द्र बदन लसि, जगत नयन उँजियार ।

गगन सहस्र लोचन सौँ, निरखै तेहिक सिँहार ॥ ” ३

१- जायसी ग्रंथावली- सं० आचार्य शुक्ल- पृ० १६

२- मधुमालती- सं० माता प्रसाद शुक्ल गुप्त

३- इन्द्रावती- पृ० ४५

सूफी कवियों की नायिकाएँ ईश्वरीयज्योति की प्रतीक हैं और नायक आत्मा के । "पूजावती" का राजकृवर, "पदमावत" का रत्नसेन, "मधुमालती" का मनोहर और "चित्रावली" का सुजान सभी साधक हैं। इस प्रकार नायक और नायिका की प्रेम कथाएँ आत्मा और ब्रह्म की प्रतीकात्मक कथाएँ हैं। "पदमावत" में हीरामन सुजा गुरु काष प्रतीक है जिसके मार्ग निर्देश करने पर ही रत्नसेन रूपी आत्मा को पदमावती रूपी परमात्मा का वाचास मिलता है और वह उसकी प्राप्ति हेतु सर्वस्व त्यागकर सिंहलगढ़ की ओर प्रस्थान करता है। सिंहल यात्रा आध्यात्मिक यात्रा की प्रतीक है। पदमावती को प्राप्त करने के लिए रत्नसेन को "चार बसेरे" पार करने पड़ते हैं। ये चार बसेरे परमात्मा को प्राप्त करने के लिए आत्मा की चार अवस्थायें हैं :

शरीकत

तरीकत

हकीकत और

मारिफत

इनका निर्देश कवि सिंहलगढ़ वर्णन प्रसंग में इस प्रकार करता है :

“ नवी सण्ड नव पौरी औ तहँ वज्र केवार ।

चारि बसेरे जाँ चढ़ै सौँ उतरे पार ॥ ” १

उसमान ने भी चित्रावली रूपी ईश्वरीय ज्योति का वर्णन किया है जिसकी एक झलक पाकर सुजान मूर्च्छित हो जाता है और योगी उसे समझाता है कि अभी तो तुम केवल चित्र पर अनुरक्त हो, इस

चित्र के भीतर जो चित्तरा है, उसे देखकर तुम्हारी क्या दशा होगी पर उसकी उपलब्धि निर्मल दृष्टि से और गुरु द्वारा मार्ग निर्देशन पर ही की जा सकती है। यहाँ चित्रावली परमात्मा का सर्व सुज्ञान वात्मा का प्रतीक है :

“ जोगी कहा कृवर सुनि बाता । अब हौं देसि चित्र तू राता ।
वह सो चित्र तैं देसा नाहीं । जाकर ऐस चित्र परछाहीं ।
चित्र देसि तैं चित्र जाना । ता मई अहा सो नहि पहिचाना ॥
चित्रहि मई सो आहि चित्तरा । निर्मल दिष्टि पाउ सो हेरा ।
जैसे बूंद माँह दधि होई । गुरु लखाव तौ जानै कोई ।
जा कह गुरुन पथ देखावा । सो बन्धा चारिहूँ दिसि धावा ॥१

कवि उसमान ने अपने नायक नायिका के तो नहीं परन्तु कुछ नाम अवश्य ही प्रतीकात्मक रहे हैं, जैसे गुरु पुत्र सुबुद्धि विवेक का प्रतीक है। चित्रावली की सौज में सुज्ञान के प्रस्थान करने पर सुबुद्धि राजा धरनीधर को दान धर्म करने की सम्मति देते हैं, जिससे राजकृवर का साधन मार्ग सरल हो जाए। रूप नगर के बीच में पड़ने वाले नगरों के नाम भी प्रतीक रूप में आये हैं- भोगपुर, इन्द्रियपुर, गोरसपुर और फिर रूपनगर आदि जो शारीरिक विषय वासना, उनके दमन, आनन्द वृत्ति, और रमण वृत्ति के प्रतीक हैं। ये नगर वास्त्व में कवि उसमान की कल्पना से ही उद्भूत हैं। इनका चित्रण करके उन्होंने प्रेम मार्ग की विशेषताओं का परिचय दिया है एवं इस मार्ग पर अग्रसर होने वाले साधक की विभिन्न दशाओं के क्रमिक

विकास की ओर ईगित किया है।

कवि नूर मुहम्मद ने भी अपनी 'इन्द्रावती' में पात्रों और स्थानों के नाम प्रतीकात्मक रखे हैं। उनकी कहानी की कथावस्तु यूँ तो पूर्णरूपेण काल्पनिक है पर उसमें रूपक का स्पष्टीकरण मली भाँति हुआ है। राजकुंवर साधक है, जो गुरुनाथ तपस्वी के मार्ग निर्देश करने पर इन्द्रावती रूपी परमात्मा की प्राप्ति का प्रयास करता है। राजकुंवर के साथ रहने वाले आठ सखा शारीरिक इन्द्रिय विकारों के प्रतीक हैं और उसके मार्ग में जाने वाले जिन सात बीहड़ वनों की चर्चा नूर मुहम्मद ने की है वे साधना मार्ग के सप्त सोपानों के रूप में आते हैं। ये सप्त सोपान क्रमशः अनुताप, आत्म संयम, वैराग्य, वारिद्र्य, धैर्य, आस्था और सन्तोष हैं। 'मचिकुचैर' ने भी आध्यात्मिक यात्रा की, सात घाटियों की ओर ईगित किया है। इन सभी पर राजकुंवर की विजय 'शारीरिक वासनावी' पर विजय की प्रतीक है। विषय वासनावी से युक्त रहने पर साधना में सफलता नहीं मिल सकती इस कारण राजकुंवर शारीरिक विषय वासनावी के प्रतीक आठ सखाओं को 'देहन्तपुर' में छोड़ देता है। देहन्तपुर शरीर का प्रतीक है। इससे आगे बढ़कर कुंवर अपने शरीर को विस्मृत कर प्राणों एवं स्वासों में इन्द्रावती का ही स्मरण करता है। 'जिवन्तपुर' में पहुँच कर तो कुंवर की बाह्य चेष्टाएँ लुप्त हो जाती हैं। 'जिवन्तपुर' हृदय का प्रतीक है जहाँ प्रियतम के दर्शन करने में साधक निमग्न रहता है। यह निमग्नता सूफी शब्दावली में 'जिक्र' सूफी 'कही' जाती है। यहाँ पहुँचकर कुंवर तर्क, वितर्क, ऊहापोह की प्रतीक बुद्धि का भी त्याग कर देता है :

“ जब जिवन्तपुर पहुँचा राजा, बुद्धिहि छाड़ तहाँ सौ भाजा ॥

बुद्धि का त्याग करने ही राजकुंवर को 'वागमपुर' का आवास होने लगता है। 'वागमपुर' परमत्त्व के निवास स्थान का प्रतीक है। यहाँ पहुँच कर कुंवर शिव के ध्यान में निमग्न हो जाता है। एकाग्र होकर ध्यान करने से उसके हृदय में ज्ञानोदय होता है और फिर मन फुलवारी में चैता मालिन के सहयोग से उसे इन्द्रावती के दर्शन होते हैं। मन फुलवारी यहाँ मन की और चैता मालिन चैता की प्रतीक है। यानि ज्ञान होने पर मन में ही आराध्य देव के दर्शन संभव हैं। इन्द्रावती भी राजकुंवर का विरह अनुभव करती है। यह विरहानुभव इस बात का प्रतीक है कि आत्मा के प्रेम में पुष्ट हो जाने पर परमात्मा भी आत्मा को अपने समीप बुलाने को बाहर हो जाता है।

अन्त में कवि ने राजकुंवर और इन्द्रावती का विवाह कराकर कथा का पूर्वाह्न समाप्त कर दिया है। विवाह सूफी काव्यों में आत्मा और परमात्मा के मिलन का प्रतीक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तुर मुहम्मद कृत 'इन्द्रावती' की कथा सम्पूर्ण रूप से प्रतीकों पर आधारित है।

कुतुबन कृत 'मृगावती' में भी सूफियों के साधन मार्ग की सात अवस्थाओं का वर्णन मिलता है। साधक अपने प्रियतम को पाने के लिए सात स्वर्ग पार करने को तत्पर है :

“सात सग चढ़ि धावौ जाइ । जहाँ सुनौ मिरगावती नाउ ।” १

ये ही सात स्वर्ग आध्यात्मिक मार्ग की सात मंजिलें हैं जिन्हें पार करने पर आत्मा और परमात्मा का मिलन होता है।

प्रतीकों के साथ साथ सूफी कवियों ने अपने प्रेमास्थानों में उपमानों की भी योजना की है। प्रतीकों के द्वारा जहाँ सूफी कवि अपनी काव्य व्यञ्जना में सफल हो सके हैं वहाँ उपमानों के द्वारा उन्होंने इसमें रमणीयता का संचार किया है। वस्तुतः उपमान ही वे उपादान हैं जिनके द्वारा कवि अपनी उक्ति को रमणीय बनाता है। कृष्ण भक्त कवियों ने भी उपमानों का प्रयोग किया है परन्तु उनका काव्याधार भागवत होने के कारण अधिकशः उपमान परम्परागत ही है। सूफी कवियों ने भी परम्परागत उपमान प्रयुक्त किये हैं परन्तु उन्हें नये सन्दर्भों में एवं नवीन भाव-व्यञ्जना के माध्यम से व्यक्त किया है। कुछ उपमान फारसी साहित्य से भी गृहीत हैं। उपमान संयोजन मुख्यतः पाँच प्रकार से किया जाता है :

- १- मूर्त के लिए मूर्त उपमान
- २- अमूर्त के लिए अमूर्त उपमान
- ३- मूर्त के लिए अमूर्त उपमान
- ४- अमूर्त के लिए मूर्त उपमान
- ५- मूर्त-मूर्त रूप उपमान

सूफी कवियों ने यों तो सभी प्रकार के उपमानों का प्रयोग किया है परन्तु मूर्त के लिए अमूर्त एवं अमूर्त के लिए मूर्त उपमान उनके काव्य में बहु प्रयुक्त हैं। प्रेम की अमूर्तता को भी सूफी कवि मूर्त रूप प्रदान करने में नहीं चूके हैं। प्रेम के प्रकाश को कवि दीपक द्वारा मूर्त रूप देता है।

“ प्रेम दिया जाके घर बारा , तेहि सम वादि अन्त उजियारा ॥ ” १

बहुप्रयुक्त उपमान हैं। पद्मावती के सौंदर्य के लिए चन्द्र का उपमान आया है। कमल और भ्रमर के उपमान भी पद्मावती और रत्नसेन के लिए प्रयुक्त हुए हैं :

“ हीरामन जो कमल बसाना । सुनि राजा होइ भँवर भुलाना ॥
बागे बाउ पंखि उजियारे । कहहि सौ दीप पत्तंग के मारे ॥ ” १

उसमान कृत ‘चित्रावली’ में भी चित्रावली के लिये चन्द्र उपमान का प्रयोग हुआ है :

“ चित्रावली फारोसे आई, सग चाँद जनु दीन्ह दिताई ॥ ” २

इसी प्रकार मृगावती में भी कुतुबन ने अपनी नायिका के लिये चन्द्र उपमान प्रयुक्त किया है :

“ तारेन्हि माँझ चाँद जो अही । ख एक बात आपु सौ कही ।
मानुस हमहिँ पँस दुहुँ कहौ । चाहहिँ उड़हिँ जहाँ चित तहाँ ॥ ” ३

जायसी ने सृष्टि के लिए दर्पण का उपमान ग्रहण किया है, जिसमें सर्वत्र पद्मावती का रूप प्रतिबिम्बित होता है :

“ पावा रूप रूप जइ चाहा । ससि मुख जनु दरपन होइ रहा ॥ ” ४

नसलिस वर्णन में सूफी कवियों ने अधिकांश परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग

१- जायसी ग्रंथावली- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ० ३८

२- उसमान कृत- चित्रावली - पृ० १०६

३- कुतुबन कृत- मृगावती- सं० डा० शिवगोपाल मिश्र पृ० ८४

४- जायसी ग्रंथावली सं० रामचन्द्र शुक्ल- पृ० २५

किया है जैसे बैंगी के लिए नाग, भाल के लिए द्वितीया काच चन्द्र, मू के लिए धनुष, नेत्र के लिए कुरंग, नासिका के लिए कीट, मुस के लिए कमल, अधर के लिए माणिक्य, दशन के लिए हीरा, कटि के लिए केहरि लंक एवं गति के लिए मग गज गति आदि । परन्तु कहीं कहीं इन्होंने बड़ी ही स्वाभाविक एवं सरल व्यंजना की है। उदाहरणार्थ उसमान ने पक आम को दबाने पर जो गड़ढा पड़ जाना है, उसे चित्रावली की ठोढ़ी के गड़ढे के लिए उपमान रूप में प्रयुक्त किया है :

“ आव सूल सग ठोढ़ी मई, वह आ मिल यह अमिरन मई ।

तेहि नगाड़ अपूरब जोबा, पाक आव अनु कंगुरी टोबा ।।” १

सूफ़ी कवि मीरान भी उपमानों की रुढ़िगत परम्परा से मुक्त नहीं । उन्होंने भी रस वर्णन में नख शिस की परिपाटी का आश्रय ग्रहण किया है। मधु मालती के ललाट को उन्होंने द्वितीया का कलकहीन शशि बन्ताया है :

“ निहकलक ससि दुख लिलारा । नौ सण्ड नीनि भुवन उजियारा ।।” २

कहीं कहीं उनके वर्णन अधिक आकर्षक होकर हैं जैसे सुप्नावस्था में किंचित् मुस्कान की समझ - “ तकि विसनाइ नौद मई हंसी, जान स्वर्ग से दामिन ससी ।” जायसी ने नौ परम्परागत उपमानों के प्रयोग के साथ साथ उनके लोक व्यापी प्रभाव का भी वर्णन किया है। उनके इस रूप सौंदर्य के सृष्टि व्यापी प्रभाव की ओर लक्ष्य कर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने

१- उसमान कृत चित्रावली - पृ० ७३

२- मीरान कृत मधुमालती- डा० मान प्रसाद गुप्त- पृ० ८१

“ हिन्दी साहित्य ” में लिखा है कि “ केशों की दीर्घता, सघनता और श्यामता के वर्णन के लिए परम्परा से प्रचलित पद्धति के अनुसार केवल सादृश्य पर जोर न देकर कवि ने उसके लोक व्यापी प्रभाव की ओर स्तित किया है। ” और डा० द्विवेदी जी की यह मान्यता उचित ही है कि जायसी सादृश्यमूलक उपमानों के द्वारा केवल साधारण धर्म को ही बनाकर विरत नहीं हो जाते, वरन् उसके लोक व्यापी प्रभाव का भी स्पष्टीकरण करते हैं। पदमावली की भृकुटियों की उपमा उन्होंने धनुष बाण से देकर उसका लोक व्यापी अस्तित्व घोषित किया है :

“ बरानी का बरनों इमि बनी । साधि बान जानु दुइ बनी ॥

उन बानन्ह उस को जो न मारा । बेधि रहा सगरी संसारा ॥

गगन नखन जो चाहि न गने । वै सब बान ओही के हने ॥

धरती बान बेधि सब राखी । सासी ठाढ़ देहिं सब सासी ॥ ” १

यह बात द्रष्टव्य है कि सूफ़ी कवियों ने अधिकतर उपमानों का चयन लोक जीवन से ही किया है जिसके उनके वर्णनों में अधिक वास्तविकता आ सकी है। जायसी के प्रेम के उपमान भ्रमर, चान्क, दीपक की वार्त्तिका और पत्थिा है जो सदैव प्रेम के नाम पर पीड़ा और व्यथा ही पाते हैं। दीप की वार्त्तिका जो अग्नि में निरन्तर प्रचलित होती रहती है, भ्रमर जो रात्रि में कमल सम्पुट में बन्द होकर कमल पत्रों को काटने की सामर्थ्य रखने पर भी स्वयं को मुक्त नहीं कर पाता, चान्क जो सदैव पिउ पिउ की रट लगाता रहता है एवं सीप जो जल में रहकर भी स्वानि नपात्र

की एक बूंद जल की वाशा में प्यासी हो रहती है, जायसी के प्रेम के श्रेष्ठ उपमान हैं।

लोक जीवन की अन्य वस्तुओं को भी जायसी ने उपमान रूप में प्रयुक्त किया है जैसे विरह सञ्जल पदमावली के शरीर के लिए कड़ाही में जलने हुए घी का उपमान- “ दगधि कराह जै जस खीउ, बेगि न आव मलयगिरि पीउ । ” इसी प्रकार नागमती के लिए भाड़ में मुनने हुए चने का उपमान ग्रहण किया है :

“ लागेऊ जै जै जस मारू । फिर फिर भूजसि तजहि न बारू ॥ ”

सूफी कवियों के उपमानों में जहाँ रमणीयता और सौंदर्य है वहाँ फारसी प्रभाव के कारण कहीं कहीं कुछ अतिशयोक्ति और वीमत्सना भी आ गई है। नायिका की कमर के लिए “ सिंह की लक ” का उपमान तो परम्परागत है परन्तु जायसी ने तो फारसी प्रभाव के कारण कटि की सूक्ष्मता के लिए तार की सूक्ष्मता का उपमान ही दे डाला है :

“ मानहु नाल सण्ड दुए भये । दुहुँ बिचलक तार रहि गए ॥ ”

इसी प्रकार जायसी ने हथेली की लालिमा के लिए हृदय के रक्त की लालिमा का उपमान ग्रहण किया है, जो कोई रुचिकर दृश्य सामने नहीं लाता -

“ हिया काढ़ि जनु लीन्हैसि हाथा । रुहिर मरी ऊंगुरी तेहि साथा ॥ ”

उसमान की चित्रावली की कटि तो दृष्टि का भार भी नहीं सह पाती :

“ अति सुखुवारि लंक प्रनि खीनी । दिस्टि न परै बारहु तब सीनी ॥ ”

देसत सकुचै देस नहारा , दूटि न परै दिस्टि के मारा ॥ १

नेत्रों के ऋजुओं के लिए मोती और मूँगा का उपमान तो रमणीय लगता है परन्तु रक्त के ऋजुओं का उपमान सौंदर्य की सृष्टि नहीं करता। फारसी प्रभाव के कारण सूफी कवियों ने वनिक स्थलों पर इसका प्रयोग किया है :

“ विरग सरागन्हि भूजै मांसु । दरि दरि परै रक्त के वांसु । ”

मीरान ने भी रक्त के ऋजुओं को वनिक स्थलों पर उपमान रूप में प्रयुक्त किया है :

“ देखि रूप चसु भरमैं, सौंह न सकहिं निहारि ।

रक्त वांसु बह नैनन्हि, फलक न जाइ उधारि ॥ ” १

नूर मुहम्मद ने भी रक्त के वांसुओं के उपमान को ग्रहण करने से स्वयं को विरत नहीं कर सके :

“ राजै वांसु रक्त की द्वारा । भा ईश्वर गेरु रत्नारा । ”

अतः फारसी काव्य से ग्रहण करने के कारण सूफी कवियों के उपमानों में कुछ वीमत्सत्ता व अतिशयोक्ति आ गई है जैसे गति की सूक्ष्मता के वर्णन में पीक का संचार दृष्टिगत होना, नायिका की कटि की सूक्ष्मता दर्शाने के लिए उसकी उपमा सिंह कटि या बर की कमर से देना, जाँघों की उपमा कदली वृद्धा से न देकर हाथी की सूँढ़ से देना आदि ।

“ फुलवारी ” का उपमान भी सूफी कवियों ने फारसी काव्य परम्परा से ग्रहण किया है। सामूहिक सौंदर्य की अनुसूति कराने के लिए फुलवारी का उपमान हिन्दी साहित्य में कहीं भी उपलब्ध

इस प्रकार सूफी कवियों ने फारसी के उपमानों की पर्याप्त मात्रा में अपनाया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्राचीन परम्परागत उपमानों को नवीन रूप में भी प्रयुक्त किया है। जैसे जायसी ने नदी को उसकी चंचलता एवं उन्मत्तता के कारण यौवन का उपमान बनाया है। युद्ध की अग्नि में साहसपूर्वक जल मरने वाले हिन्दू सैनिकों के लिये जायसी ने पतिंगा उपमान का प्रयोग किया है :

‘ रतनसेन है जौहर साजा । हिन्दुन्ह माँफ़ आहि बहराजा ।
हिन्दुन्ह केर फाँग कै लेखा । दौरि परहिं अग्निनी जहँ देखा ॥’^१

वाच यन्त्रों में जायसी ने सारंगी उपमान प्रयुक्त किया है। विरह विदग्धा नागमती के लिए कवि ने उस सारंगी का प्रयोग किया है, जिससे सदैव प्रिय नाम की ध्वनि उठती है :

‘ हाह भये सब कीगरीं, नसै मई सब ताँति ।

राँव राँव तन धुनि उठै, कहै विधा केहि भाँति ॥’ 9 ref.

इस प्रकार सूफी कवियों द्वारा प्रयुक्त अधिकांश उपमान तो रुढ़िगत हैं एवं कुछ उपमानों पर फारसी प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। प्राचीन उपमानों के नवीन प्रयोग सूफी कवियों की कल्पना की उत्कृष्टता एवं सूक्ष्मता के परिचायक हैं।

प्रस्तुत द्वारा अप्रस्तुत की व्यञ्जना करने में भी सूफी कवि सिद्धहस्त थे। उनका लक्ष्य था लौकिक प्रेम कहानियों के माध्यम से कला-

किन्तु प्रेम की व्यंजना, इसके लिए उन्होंने प्रस्तुत द्वारा अप्रस्तुत की व्यंजना ही अधिक की है। उदाहरण के लिए जायसी कृत 'पद्मावत' की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

“ ऐ रानी मन देसु बिचारी । एहि नैहर रहना दिन चारी ।

जौ लगि वहै पिता कर राजू । सेलि लेहु जो सेलहु बाजु ॥

पुनि सासुर हम गौनब काली । कित हम कित यह सखर पाली ॥१॥

प्रस्तुत वर्णन में साधारण रूप से वैसे तो पितृ कुल की स्वतन्त्रता और श्वसुरालय की परवशता ही लक्षित होती है, पर व्यंग्यार्थ में पिता के घर से तात्पर्य इस संसार से है और श्वसुरालय से परलोक से । इसी प्रकार का अन्य उदाहरण है, राजा रतनसेन दिल्ली में अलाउद्दीन की कैद में है और पद्मावती चिबौड़ में विलाप करती है :

‘सौ दिल्ली उस निबहर देसू । कहि पूछूँ को कहै संदेसू ॥

ਜੀ ਕੀਓਂ ਜਾਣੁ ਤਹਾ ਕਰ ਹੋਓਂ । ਜੀ ਆਵੈ ਕਿਉ ਜਾਨੁ ਨ ਸੋਓਂ ॥

वागम पंथ पिय तहाँ सिधावा । जोरै गयऊ सौ बहुरि न आवा ॥ २

पद्मावत में ये पंक्तियाँ प्रस्तुत प्रसंग का ही वर्णन करती हैं, पर व्यंग्यार्थ में इनका अर्थ परलोक यात्रा से है। यहाँ वाच्यार्थ को प्रस्तुत और व्यंग्यार्थ को अप्रस्तुत मानकर तथा 'किछु जानन', 'बहुरि न जावा' को दिल्ली गमन और परलोक गमन दोनों के सामान्य कार्य ठहराते हुए दिल्ली गमन में परलोक गमन का आरोप करके हम समासोक्ति कह सकते हैं।

१- जायसी ग्रंथावली- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- पृ० २३

२- ,, ,, पृ० २६४

३- ,, ,, पृ० ५६

कुछेक स्थलों पर जायसी ने अप्रस्तुत के माध्यम से प्रस्तुत की व्यंजना भी की है। जैसे -

“ कंवल जो विगस्ता मानसर, बिनु जल गसत सुखाइ ।

जबहुं बेलि फिर फलुहै, जो पिउ सींचै जाइ ॥

यहाँ पर विरहिणी की दशा (जो कि प्रस्तुत प्रसंग है) की व्यंजना हेतु जल कमल का प्रसंग (जो कि प्रस्तुत प्रसंग नहीं है) लिया गया है, अतः यहाँ अप्रस्तुत द्वारा प्रस्तुत की व्यंजना होने के कारण ‘व्योक्ति’ है, परन्तु ऐसे स्थल सूफी काव्यों में कम ही हैं।

जायसी के अतिरिक्त कुतुबन, मीमन, उसमान और नूर मुहम्मद आदि ने भी ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति हेतु प्रस्तुत और कहीं कहीं पर अप्रस्तुत की भी योजना की है। निम्न पंक्तियों में कवि मीमन ने यों तो मधुमालती और मनोहर के प्रेम का वर्णन किया है परन्तु व्यंग्य रूप में उन्होंने परमात्मा के प्रति आत्मा के प्रेम की अभिव्यक्ति की है। जब जीव को ईश्वरीय सौंदर्य का आभास होने लगता है तो वह उसके प्रेम के वशीभूत हो जाता है एवं उसकी प्राप्ति के लिए विरही होकर देश देशान्तर भ्रमण करता है। विरह से मुक्ति उसे तभी मिल सकती है जब परमात्मा की प्राप्ति हो। निम्न पंक्तियों में यही अर्थ व्यंग्य गर्भित है :

“ जब परगट भा रूप तुम्हारा । तब के हम चहुँ देस निहारा ।

जेहि दिन आदि रूप तोर सौहा । तेहि दिन हुते तोहि हौं मोहा ।

जेउ जेउ रूप उदित जग तोरा । तेउ तेउ जिउ विरहा बस मोरा ।

रूप तुम्हारा मोर दुस बारा । देस देस गे भसत प्यारा ॥

दिन दिन रूप अधिक जइ तोही । अब कह मुक्ति विरह सेउ मोही ॥२

कवि नूरमुहम्मद ने भी ' इन्द्रावती ' में इन्द्रावती के स्वरूप के माध्यम से ईश्वरीय स्वरूप की व्यंजना की है। जीवात्मा को ईश्वर से संयोग की इच्छा सदैव रहती है, विश्व का प्रत्येक व्यक्ति परमेश्वर की प्रीति की चाह रखता है। इसी भाव की व्यंजना कवि की निम्न पंक्तियों से होती है :

‘ सब मानुस मन प्रीत घनेरी , उपजी इन्द्रावति मुख कैरी ।

मुखुर बने चाहा सब कोई , जामो वाह परे मुख सोई ॥ ’ १

अतः सूफी कवि प्रतीक, उपमान एवं प्रस्तुत, अप्रस्तुत के विधान में नितान्त सफल रहे हैं। उनकी प्रेम कथाओं का प्रमुख लक्ष्य था लौकिक प्रेम द्वारा ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति और इस अभिव्यक्तिकरण के हेतु उन्होंने प्रतीक और उपमानों को महत्त्वता प्रदान की है, एवं प्रस्तुत विधान द्वारा उस अप्रस्तुत सत्ता की ओर संकेत किया है जिससे विश्व का कण-कण आभासित हो रहा है। इस नश्वरजगत् की हर वस्तु उसी परम सौंदर्य का अंश मात्र है, और जब जीवात्मा पर इस रहस्य का पर्दाफाश होता है तो वह उस परम सौंदर्य से मिलने के लिए लालायित हो उठता है। सूफी प्रेम काव्यों का यही मूल भाव है जिसकी व्यंजना के हेतु उन्होंने प्रतीक उपमानों एवं प्रस्तुत अप्रस्तुत की योजना की है। वैसे यह संयोजन नितान्त सुन्दर बन बड़ा है, काव्य परम्परा के अनुकूल है परन्तु कहीं २ पर फारसी प्रभाव के कारण इसमें वीमत्सिता एवं विदेशीयता की गन्ध आगई है। कृष्ण भक्त कवियों के प्रतीकों और उपमानों में यह बात लक्षित नहीं होती। उन्होंने भागवतादि पौराणिक ग्रंथों का

अनुसरण किया है एवं उनके प्रतीक और उपमानों पर भी इन्हीं ग्रंथों का प्रभाव दिखाई देता है। प्रायः सभी कृष्ण भक्तों ने श्री कृष्ण को पूर्ण ब्रह्म तथा राधा और गोपियों को आत्मा एवं वृन्दावन को गोलोक धाम का प्रतीक माना है। राधा उच्चतम प्रतीक है, वस्तुतः श्रीकृष्ण से अभिन्न उन्हीं के आनन्द रूप परम पुरुष रूप की पूरक तथा उन्हीं की आह्लाद-कारिणी शक्ति है। इस विषय में लगभग सभी कृष्ण भक्त कवि एक मत हैं। चैतन्य सम्प्रदाय के श्रीकृष्ण का स्वरूप द्रष्टव्य है, वे सच्चिदानन्दघन हैं, उनकी चित् शक्ति आनन्दशिखा आह्लादिनी, सत्रूपा सन्धिनी एवं चित् रूपा संवित् इन तीन रूपों में विकास को प्राप्त है :

“ सच्चिदानन्द पूर्ण कृष्णोऽस्वरूप ।
 सहै चिच्छक्ति तार धरे तिन रूप ॥
 आनन्दशिखा ह्लादिनी संदेश सन्धिनी ।
 चिदंशै संवित् योऽहं ज्ञान करि मानि ॥ ” १

कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति होने के कारण राधा कृष्ण का आह्लाद करती है। स्वयं कृष्ण राधा रूप आह्लादिनी शक्ति का आश्रय ग्रहण कर भक्तों को सुख प्रदान करते हैं :

“ कृष्ण के आह्लाद करे ताते नाम ह्लादिनी ।
 सहै शक्ति द्वारे सुख, आस्वादे आपनि । ।
 सुख रूप कृष्ण करे सुख आस्वादन ।
 भक्त गणों सुखदिते ह्लादिनी कारण ॥ ” २

१- चैतन्य चरितामृत आदि लीला- चतुर्थ परिच्छेद

२- चैतन्य ,, मध्य लीला - अष्टम परिच्छेद

चैतन्य सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण के साथ गोपियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। कारण गोपियों को यहाँ पर उपासना मार्ग में साधक भक्त के आदर्श की प्रतीक स्वीकार किया गया है। गोपियों द्वारा की गई रागात्मिका भक्ति का ही अनुसरण भक्तगण करते हैं। गौणीय आचार्य राधा कृष्ण की लीलाओं को नित्य स्वीकार करते हैं। जब कृष्ण अपने परिकर सहित धराधाम पर अवतरित होकर लीला करते हैं तो ये प्रकट लीलाएँ उन अप्रकट लीलाओं का ही प्रतीक है जो कृष्ण परब्रह्म रूप में ब्रह्मांड के अनन्त लोकों में करते हैं।

वल्लभ सम्प्रदाय के कृष्ण भी परमात्मा के ही प्रतीक हैं। पुराणों के प्रभाव से इन्हीं कृष्ण को वल्लभाचार्य जी ने पुराणेश्वर पुरु-
षोत्तम कहा है। वेदान्त में जिसे ब्रह्म कहा गया है, स्मृति तथा पुराणों में जो परमात्मा शब्द से अभिहित है। भागवत शास्त्र में जिसका अभिव्यक्ति करण भगवान् शब्द से हुवा है वही पुष्टि मार्ग में इस स्वरूप श्री कृष्ण है। राधा कृष्ण की आनन्दात्मिका शक्ति है। कहीं कहीं तो राधा को प्रकृति और कृष्ण को पुरुष स्वीकार किया गया है। दोनों का सम्बन्ध अभिन्न है क्योंकि पुरुष और प्रकृति में अनेक भाव है ?

“ ब्रजहि बसे बाफू बिसरायो ,

प्रकृति पुरुष स्खै करि जानो बातनि भेद करायो ॥ ११

वल्लभ भक्तों के लिए गोपिकाएँ रसात्मकता (आनन्द

१- भागवतामृत कणिका- विश्वनाथ चक्रवर्ती - पृ० ४३

२-तत्त्वदीप निबन्ध- शास्त्रार्थ प्रकरण- ज्ञानसागर बम्बई - पृ० २३७

३- पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि- श्रीकण्ठमणि शास्त्री

४- सूरसागर- दशम स्कन्ध- वे० प्र० - पृ० २६२

के वाविर्भाव की स्थिति) सिद्ध करने वाली शक्तियों की प्रतीक भी है और राधा रसात्मक सिद्धि की प्रतीक है। कृष्ण तथा गोपियों का झीड़ा स्थल वृन्दावन वैकुण्ठ धाम का प्रतीक है एवं परमात्मा रूपी कृष्ण और वात्मा रूपी गोपियों के साथ वृन्दावन रूपी बैकुण्ठ में होने वाली रास लीला आत्मा का परमात्मा के साथ मिलन का प्रतीक है। तभी तो रासझीड़ा के अवसर पर कृष्ण और गोपियों में पृथक् भाव नहीं रहता । राधा के साथ नृत्य करते हुए कृष्ण के कुण्डल और राधा के ताँटक स्क हो गये फलस्वरूप दोनों कपोलों पर उनकी झलक पड़ रही है :

‘ कुण्डल संग ताँटक स्क भये युगल कपोलनि फाई । ’ २

रास अपनी चरमावस्था पर पहुँचता है और कृष्ण के साथ नृत्य करती हुई गोपियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं जैसे बादल के मध्य में विद्युत चमक हो और कभी ऐसा प्रतीत होता है जैसे विद्युत प्रभा के मध्य में घन हो । इस प्रकार रसिक राज कृष्ण के साथ तद्रूप बनी हुई ब्रजबालारें हर्षा पुलक से परिपूर्ण हैं :

‘ मानो माई घन घन अन्तर दामिनि,

घन दामिनि दामिनि घन अन्तर सौभित हरि ब्रज भूमिनि । ३

मुरली जिसकी ध्वनि सुनकर गोपियाँ सर्वस्व त्यागकर चल पड़ती हैं अपने प्रियतम कृष्ण से मिलने, योग माया की प्रतीक है। यह प्रभु की अपरा शक्ति का वाचक है। योग माया होने के कारण मुरली को हर जाण कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त रहता है। सूरदास, नन्ददास आदि ने मुरली को शब्द ब्रह्म का प्रतीक माना है।

१- अष्टशाय और कल्मस सम्प्रदाय- डा० दीनदयालु गुप्त पृ० ५०६

२- सूर सागर - डा० प्र० समा- १७५६

३- ,, ,, १६६६

जिस प्रकार ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है, उसी प्रकार उसका शब्द या वाणी भी सर्वव्यापक है। नन्ददास जी 'रासर्षवाध्यायी' के प्रथम अध्याय में इसी प्रकार का वर्णन करते हैं :

तब लीनी कर कमल जौग माया सी मुरली ।
 कवटित घटना चतुर बहुरि अधरन सुर जुरली ॥
 जाकी धुनि ते निगम अगम प्राटित बह नागर ।
 नाद ब्रह्म की जानि मोहनी सब सुख सागर ॥ १

वैष्णव आचार्यों ने वेणु की व्याख्या इस प्रकार दी है। वेणु में तीस अक्षर हैं : व + ह + णु । 'व' ब्रह्म सुख का गीतक है, 'ह' सासारिक सुख को फूट करती है, इन दोनों प्रकार के सुखों को जो 'णु' अर्थात् मात करने वाली है, वह है वेणु । आचार्य वल्लभ ने मुरली को ब्रह्मानन्द से भी अधिक आनन्द प्रदायक माना है।

माखन चोरी, चौर हरण और दान लीला आदि प्रसंग भी साधारण प्रसंग नहीं अपितु आध्यात्मिक क्षेत्र की लीलायें हैं। माखन चोरी जीवात्माओं के समस्त सुकृतों पर प्रभु अनुग्रह का प्रतीक है, इसी प्रकार चौर हरण समस्त मायिक आवरणों से मुक्त जीवात्मा के परमात्मा से मिलन का प्रतीक है।

वल्लभ सम्प्रदाय के समान राधा वल्लभ और सखी सम्प्रदाय में प्रकृतियों का उतना महत्त्व नहीं परन्तु वहाँ भी कृष्ण परब्रह्म एवं राधा

१- रास र्षवाध्यायी- नन्ददास- प्रथम अध्याय

२- भारतीय साधना और चुर साहित्य- ले० श्रीराम शर्मा पृ० २२

३- ब्रह्मानन्दादपि अधिक आनन्द सारभूता- आचार्य वल्लभ - भागवत पर सुबो-
 धिनी छिन्न भाष्य

उनकी बाह्लादिनी शक्ति का ही प्रतीक है। राधा वल्लभ सम्प्रदाय में राधा की महत्ता अधिक है। राधा आनन्द रूप है पर उस आनन्द के प्रकाशक श्रीकृष्ण हैं। अतः दोनों के सम्मिलित रूप की ही भक्तगण कामना करता है :

“ रा अक्षर श्री गौर तन धा अक्षर घनश्याम ।
 सहज परस्पर आत्मरति बिवि मिलि राधा नाम ।
 गौर दैत नित सर्व सुख श्याम रूप ह्वै लेत ।
 रा जाने धा धारणै राधा नाम समेत ॥ ” १

हरिदासी सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण को अभिन्न स्वीकार किया गया है , जिन्होंने लीला हेतु दो देह धारण की हैं। राधा और कृष्ण के परस्पर प्रेम का कारण लौकिक प्रेम नहीं । वे सदा सहज प्रेम में अनुरक्त रहते हैं। वे नित्य और अनादि हैं और उनका प्रेम भी उन्हीं के समान है। भगवत रसिक जी ने इस प्रेम को श्रुति स्मृति से पृथक् केवल अनुभवात्म्य माना है :

“ कोई सुकिया कोउ परकीया कलप किये मत वादि ।
 जोरी भगवत रसिक की नित्य अनन्त अनादि ॥
 नित्य अनन्त अनादि लोक तै रीति विलक्षण ।
 श्रुति स्मृति विलगाय देसि अनुभव के अक्षण ॥ ” २

इस प्रकार लगभग सभी कृष्ण भक्तों ने कृष्ण को परमात्मा, राधा और गोपियों को आत्मा, मुरली को योगमाया खयोग माया या ब्रजनाद एवं कृष्ण और गोपियों के झीझा स्थल वृन्दावन को वैकुण्ठ

१- सुधर्मबोधिनी- लाहिली दास- पृ० २१

२- भगवत रसिक जी की भाषा- पृ० ८२, ८३

लोक कौ प्रतीक माना है।

कृष्ण भक्त कवियों की उपमान तथा प्रस्तुत वप्रस्तुत योजना भी सुन्दर बन पड़ी है। इनके अधिकतर उपमान परम्परागत हैं एवं संस्कृत कवियों की रुढ़िगतता पर आधारित हैं, परन्तु कहीं २ पर उपमान और उपमेय का सम्बन्ध परम्परागत होने पर भी उनके संयोजन में नूतन कौशल दृष्टिगत होता है। कवि नन्ददास का वर्ण और रूप साम्य कौशल द्रष्टव्य है :

“ वति वादर करि लई मई पिय पै ठाढ़ी जनु ।

छबिलि छटनि मिलि कैंकरी मँजुल घन मूरति जनु ॥ ” १

अर्थात् “ नीलवर्ण कृष्ण को गौर वर्ण गोपियों ने इस प्रकार घेर लिया मानो छबीली घटज्यों ने श्यामघन को आवृष कर लिया हो ।

कृष्ण भक्तों ने राधा और कृष्ण के सौंदर्य वर्णन हेतु जिन उपमानों का चयन किया है, वे भी अधिकतर परम्परागत ही हैं। सूर ने कृष्ण के नेत्र सौंदर्य के लिए सँजन, मीन, राजीव आदि उपमानों की योजना की है :

“ देखि री हरि के चंचल नैन ।

सँजन , मीन, मृगज, चपलाई नहिं पटतर छ सैन ।

राजिव दल, इन्दीवर सतदल, कमल कुसेसय जाति ।

निसि मुदित प्रातहि वै विकसत, ये विकसति दिन राति ॥ २

१- रासपंचाध्यायी- नन्ददास- पृ० १०। ७४

२- सूरसागर- ना० प्र० समा० पृ० १८१३

किसी किसी स्थल पर तो कृष्ण भक्त कवि भागवतादि ग्रंथों से स्पष्ट रूप से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। जैसे नन्ददास के रास वर्णन पर भागवत की अप्रस्तुत योजना का प्रभाव स्पष्ट है। चन्द्रोदय के वर्णन में मानव जीवन का एक ऐसा स्निग्ध चित्र द्रष्टव्य है :

‘ ताही कन उहुराज उदित एस-राज सहायक ।

कुम्कुम मण्डित प्रिया बदन जनु नागर नायक ॥ १

भागवत की निम्न पंक्तियों से उपर्युक्त वर्णन प्रभावित जान पड़ता है :

‘‘ तदोहुराजः कुकुमः करैमुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणीन शन्तमैः ।

स चर्णणीनामुदगाच्छुक्वयो मृजन् प्रियः प्रियाया स्त्व दीर्घ दर्शनः ॥ २

वर्थात् ‘‘ भगवान् कृष्ण के संकल्प करते ही चन्द्रदेव ने प्राची दिशा के मुख पर अपने शीतल किरण रूपी करों से लालिमा की रौली पोत दी, जैसे बहुत समय के पश्चात् अपनी प्राणप्रिया पत्नी के पास आकर उसके प्रियतम ने उसे वानन्दित करने के लिए ऐसा किया हो । ‘‘

नन्ददास और सूरदास के समान परमानन्ददास और कुम्भनदास आदि द्वारा प्रयुक्त उपमानों और अप्रस्तुत वर्णनों में परम्परा का ही अनुसरण किया गया है परन्तु कवियों की नूतन सूझ ने उन्हें सजीवता प्रदान की है। उदाहरणार्थ कुम्भनदास जी की निम्न पंक्ति द्रष्टव्य है :

‘ कंचन बैलि बनी ब्रज वाल, ज्यों लफटी घनश्याम तमाल ॥ ३

१- रास पंचाध्यायी- नन्ददास- ७।४२

२- श्रीमद्भागवत- गीता प्रेस गौरखपुर- पृ० ५३३ अध्याय २६-२

राधावल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी ने भी विशेषतः परम्परागत उपमानों का प्रयोग किया है और सादृश्यमूलक अप्रस्तुत विधान में ही उनकी दृष्टि अधिक रमी है। वर्ण साम्य और रूप साम्य का आधार ग्रहण कर जो साम्य विधान वह उन्होंने प्रस्तुत किया है उसमें उनकी सौंदर्य दृष्टि की सूक्ष्मता दृष्टिगत होती है। नायिका का सौंदर्य वर्णन करते हुए उन्होंने कुछ नवीन कल्पनाएँ भी की हैं। निम्न पंक्तियों में राधा की दन्त पंक्तियों का चित्रण द्रष्टव्य है :

‘जरून स्याम उज्ज्वल दसन, अति हृदि सौ फलकाय ।

कंज में अलि मुक्तन सहित, मनु रंग बन्दन माहि ॥ १

अर्थात् भिस्सी और पान से रंजित दांत मुख में शोभित हो रहे हैं, मानो वन्दन से रंजित मुक्ता तथा भ्रमर कमल पर शोभित हो रहे हों । इस प्रकार की योजनाओं में साम्य काल्पनिक है और उसका आधार केवल वर्ण ।

हरिदास जी की अप्रस्तुत योजना का रूप भी परम्परागत है। उनके उपमानों में कोई नूतनता नहीं, अन्य कृष्ण भक्तों द्वारा अपनाये गये उपमानों का उन्होंने अनुसरण किया है :

रसखान और मीराबाई ने कृष्ण के रूप वर्णन में परम्परागत उपमानों में साम्य योजना की है, जिन पर सूरदास आदि कवियों का प्रभाव स्पष्ट है :

‘कुंडल की अलक फलक, कपोलन पर धाई ।

मनो मीन सरवर तजि, मकर मिलन जाई ॥ २

१- कुम्भनदारा- पृ० ३३ पद ६५

२- मीराबाई की पदावली- परशुराम चतुर्वेदी- पृ० ६६ पद सं० ६ प्र० संस्करण

अतः कृष्ण भक्त कवियों ने अधिकतर परम्परागत प्रतीकों और उपमानों का ग्रहण किया है। उनके उपमान अधिकतर संस्कृत के आचार्यों द्वारा निर्धारित पद्धति पर आधारित हैं। किसी २ स्थल पर इन परम्परागत उपमानों में नूतनता और सजीवता का संचार अवश्य ही कर दिया गया है। कृष्ण भक्त कवियों की प्रेम पद्धति की आधार शिला प्रमुख रूप से श्रीमद्भागवत आदि पौराणिक ग्रंथ हैं, और इन्हीं ग्रंथों का प्रभाव कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं पर दृष्टिगत होता है फिर मला प्रतीक उपमान और अप्रस्तुत योजना के ग्रहणीकरण में वे परम्परागत लीक का परित्याग क किस प्रकार करते ? शास्त्रीय परम्परा के अनुसार नेत्रों के मुख्य उपमान मृग, संजन, चकोर तथा भ्रमर आदि हैं। इसी प्रकार मुख के चन्द्र और कमल तथा केशों के लिए तम, भ्रमर, चामर, नीलमणि, नीलकमल आकाश आदि स्वं वैष्णवी के उपमान रूप में सर्प तथा नागिन का प्रयोग किया जाता है।

सूफी कवियों ने भी इनमें से अधिकांश उपमानों को अपनाया है पर नवीन रूप में जैसे मुख के लिए सूफी कवि और कृष्ण भक्त दोनों ने ही चन्द्र का उपमान ग्रहण किया है। सूफी सन्त कवियों ने अनेक स्थलों पर समग्र नायिका के लिए भी चन्द्र का उपमान ग्रहण किया है, कुछ स्थलों पर मुख की उपमा चन्द्र से भी दी है। इसके अतिरिक्त वैष्णवी के लिए नाग नागिन स्वं नेत्र के लिए संजन, मृग आदि को सूफियों ने भी उपमान रूप में अपनाया है, परन्तु सूफियों के कुछ उपमान व अप्रस्तुत योजनाएँ फारसी साहित्य द्वारा गृहीत हैं और कुछ नवीन व मौलिक हैं। बाँसू के लिये रक्त के बाँसू, कमर के लिये बरं की कमर , नेत्र के लिए तरंग मरी माणिक्य, ज्वर के लिए रुधिर भरी तलवार कपोल के लिये साँठ के लड्डू, मुख के लिए फ़्म बबल , ग्रीवा के लिए तुरंग कम्बु, रोमावलि के लिए श्याम सर्पिणी आदि

उपमान कृष्ण भक्त साहित्य में कहीं भी उपलब्ध नहीं होते । दूसरा कारण यह था कि कृष्ण भक्तों की दृष्टि में राधा कृष्ण का एक मान्य रूप रहा, जिसके विरुद्ध रूप चित्रण कवि के लिए दोष बन जाता । उन्होंने स्वयं को इस दोष से बचाये रखा और उनके राधाकृष्ण पौराणिक ग्रंथों के मान्य उपास्य देव ही रहे । अतः एक परम्परागत मान्यता को ही ग्रहण कर उन्होंने अपने उपास्य देव का रूप चित्रण किया है। इसके विपरीत अधिकतर सूफी कवियों के नायक नायिका स्वकल्पित और उनसे सम्बन्धित कथाएँ स्वनिर्धारित थीं । फारसी मसनवियों का उन्होंने आधार ग्रहण किया । अतः उनके द्वारा गृहीत कुछ उपमान परम्परागत हैं, कुछ स्वनिर्मित और कुछ फारसी काव्य द्वारा अनुसरित । फिर भी कुछ उपमानों में साम्य दृष्टिगत होता है जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। सूफी सन्त कवियों और कृष्ण भक्त कवियों की प्रतीक योजना में भी अन्तर है। सूफी कवियों ने फारसी मसनवियों के प्रभाव के कारण नायिका को परमात्मा का प्रतीक माना है और नायक को आत्मा का जबकि कृष्ण भक्तों के कृष्ण पूर्ण ब्रह्म परमात्मा के सर्व राधा तथा अन्य गोपियाँ जीवात्मा की प्रतीक हैं। इसके अतिरिक्त सूफियों का कोई २ तो सम्पूर्ण काव्य ही प्रतीकात्मक है, परन्तु कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं के विषय में ऐसा लक्षित नहीं होता ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूफी कवियों सर्व कृष्ण भक्त कवियों के प्रतीक उपमान सर्व अप्रस्तुत योजनाओं में पर्याप्त वैभिन्न्य है। कहीं कहीं उपमानों में साम्य भी दृष्टिगत होता है। परन्तु कृष्ण भक्तों ने अपने उपमानों को संस्कृत के आचार्यों से परम्परारूप में वैसा ही ग्रहण किया है, जबकि सूफी कवियों ने उनमें मौलिक उद्भावनाएँ भी की हैं:

वर्णन पद्धति में वैमिन्स्य :

सूफी कवियों एवं कृष्ण भक्त कवियों की वर्णन पद्धति में भी अन्तर है और यह अन्तर परम्पराजन्य है। सूफी कवि जहाँ अपनी वर्णन पद्धति के लिए फारसी मसनवियों के कृष्ण हैं, वहाँ कृष्ण भक्त कवियों ने भागवत आदि पुराणों को अपनी वर्णन पद्धति का आधार बनाया है। फलस्वरूप सूफी कवियों की वर्णन पद्धति लौकिक है एवं कृष्ण भक्त कवियों की वर्णन पद्धति धार्मिक ग्रंथों पर आधारित होने के कारण अलौकिकता के आवरण से आच्छादित है।

फारसी मसनवियों से प्रभावित होने के कारण सूफी प्रेमाख्यान की वर्णन पद्धति का मुख्य आधार प्रेम है। सूफी काव्यों के लगभग सभी कथानक प्रेम की धुरी पर घूमते हैं। उनकी झोड़ में प्रेम नहीं अपितु प्रेम की झोड़ में वे हैं और इसी इसी वैशिष्ट्य के कारण उन्हें प्रेमाख्यान की संज्ञा से अभिहित किया गया है। लगभग सभी फारसी मसनवियों में पद्मी कथा के स्वाभाविक विकास में योग देते हैं। मज्नु ने अपना पत्र एक कबूतर के द्वारा तैला के पास भेजा था। सूफी प्रेमाख्यान में पद्मी पात्र रूप में आते हैं। जायसी के फरमावत में हीरामन सुये की योजना है तथा भँवरे और काग के समक्ष नाग-मती द्वारा संदेश निवेदन कराया है। भँवरे के माध्यम से संदेश भिजवाने की परंपरा भागवत में भी उपलब्ध है। सम्भव है जायसी फारसी मसनवियों के साथ साथ भ्रमरगीत परम्परा से भी प्रभावित हुए हैं।

नूर मुहम्मद की इन्द्रावती में भी इन्द्रावती के पास राजकुंवर का संदेश एक पद्मी ने ही भेजा था। हंस जवाहिर में भी जवाहिर की संदेशवाहक परी पद्मी वेश धारण करके ही हंस के समीप गई थी। उसमान कृत 'चित्रावली' में यद्यपि प्रसुप्त पात्र के रूप में किसी पद्मी की अवतारणा

नहीं है फिर भी एक पक्षी अवश्य ही विद्यमान है। ये सभी पक्षी मुख्य रूप से संदेश वाहक के रूप में प्रेमास्थानों में वर्णित हैं। सूफी प्रेमास्थानों में भी फार्सी मसनवियों के समान गुण श्रवण, साक्षात् दर्शन, स्वप्न दर्शन और चित्र दर्शन से नायक के मन में नायिका के प्रति प्रेमाद्भावना होती है। 'फद्मावत' में हीरामन शुक द्वारा फद्मावती के रूप और गुण की चर्चा सुन रत्नसेन उसकी प्राप्ति हेतु गृहत्याग कर निकल पड़ता है। 'मधुमालती' में साक्षात् दर्शन द्वारा नायक के मन में प्रेम उत्पन्न होता है, कवि उसमान ने चित्रदर्शन द्वारा यह प्रेमोन्मेषण दिखाया है एवं नूर मुहम्मद कृत 'इन्द्रावती' में स्वप्न दर्शन द्वारा प्रेमाद्भावना वर्णित है। लगभग सभी प्रेम कहानियों में नायक ही नायिका की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील है। भारतीय प्रेम पद्धति के अनुसार प्रारम्भ में नायिका के हृदय में प्रेम उत्पन्न होता है परन्तु सूफी प्रेमास्थानों में फार्सी मसनवियों के समान प्रथम नायक के हृदय में नायिका के लिए विरह उत्पन्न होता है और वह वह मार्ग की कठिनाइयों की चिन्ता न कर करता हुआ मिलन के लिए प्रयत्न करता है और जब तक वह नायिका की प्राप्ति नहीं कर लेता अपने कार्य में प्रयत्नशील ही रहता है। इन प्रेमास्थानों की समाप्ति नायक नायिका मिलन के बाद स्वदेश प्रत्यावर्तन पर ही जाती है। कहीं कहीं कथारं आगे भी बढ़ती है जैसे फद्मावत में। वस्तुतः इन सभी प्रबन्धों का स्थूल रूप से विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है, नायिका के रूप गुण की चर्चा सुनकर नायक द्वारा गृह त्याग कथा का आदि भाग, मार्ग के कष्ट एवं बाधाएँ पार करके अन्त में प्रिय प्राप्ति कथा का मध्य भाग, स्वदेश प्रत्यावर्तन एवं जीवनान्त कथा का अन्त भाग होता है। इन तीनों वर्गों की घटनाएँ आगे होने वाले कार्य की ओर उन्मुख होती हैं। लगभग सभी प्रेमास्थानों की कहानियाँ एक और ती प्रेमास्थानों की कौटि में आती हैं और दूसरी और वाध्यात्मिक अर्थ की भी गूढ़ व्यंजना करती हैं।

प्रबन्धकाव्यों की रचना सर्ग बढ़ होती है परन्तु सूफी प्रेमास्थानों में फारसी मसनवियों के समान सर्गबद्धता का अभाव है, बीच बीच में प्रसंगों के अनुसार शीर्षक दे दिए गए हैं। प्रबन्ध काव्यों में आठ सर्गों की योजना काव्यशास्त्री स्वीकार करते हैं, परन्तु प्रेमास्थानों में फारसी मसनवियों की भाँति ऐसा कोई नियम नहीं है। सूफियों ने अपने प्रेमास्थानों में अधिकतर दोहा, चौपाई का ही क्रम रखा है। डा० शिव गोपाल मिश्र का कथन है कि, "रचना के लिए जो छन्द सभी सूफियों ने एक रूप से चुना, वह दोहे चौपाई का है। पाँच - पाँच, सत्त- सात या नव नव चौपाइयों के बाद दोहे या सौरठे का संयोग" अर्द्धालो दोहा 'शैली' के नाम से पुकारा जाता है। यही मसनवी शैली है।^१

मसनवी शैली में छन्दों की विविधता दृष्टिगत नहीं होती, सूफी प्रेमास्थानों में भी छन्दों की बहुलता का अभाव है। मसनवी काव्य शैली वर्णनात्मक होती है उसमें रस योजना की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। सूफी प्रेमास्थानों पर भारतीय रस योजना का तो पर्याप्त प्रभाव पड़ा है परन्तु चमत्कार प्रदर्शन और वर्णन वैचित्र्य की दृष्टि से ये आस्थान मसनवी शैली से ही प्रभावित हैं। किसी २ स्थल पर तो मसनवियों की वर्णनात्मकता का इतना अधिक प्रभाव दृष्टिगत होता है कि वस्तु वर्णन, वीर्याधि चर्चा, भोज वर्णन आदि वर्णनों की अतिशयता पाठक के मन में ऊब उत्पन्न कर देती है। प्रबन्ध काव्य की कथा ऐतिहासिक या पौराणिक होनी चाहिए कारण काल्पनिक कथानक उच्च कौटि का रसोद्रेक करने में समर्थ नहीं होता। पर सूफी प्रेमास्थान मसनवी काव्यों के समान अधिकतर काल्पनिक ही हैं, जबकि

१- कुतुबन कृत मृगावती- सं० डा० शिव गोपाल मिश्र - भूमिका भाग पृ० ३३

ऐतिहासिक और पौराणिक वात्स्यानी की कोई कमी नहीं। सूफी प्रेमास्थानों के प्रारम्भ में इंसवर, फैम्बर, फैम्बर के मित्र, कवि गुरु, शाहे वक्त की प्रशंसा और वात्म परिचय आदि के वर्णन प्रसंग भी फारसी मसनवियों के प्रभाव के कारण ही है। फारसी मसनवियों के लिए यह कोई नियम नहीं कि वे रहस्यवादी भावना से अनुप्राणित ही हों, वे शुद्ध प्रेम व्यंजनात्मक भी हो सकती हैं। हिन्दी के सूफी प्रेमास्थानों में भी दोनों प्रकार की प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं।

प्रारम्भ के कुछ प्रेमास्थान तो रहस्यात्मक हैं, पर बाद के प्रेमास्थानों में शुद्ध प्रेम व्यंजना ही अधिक मुखरित हुई है। जान कवि के अधिकांश प्रेमास्थान और कवि निसार कृत 'यूसुफ जुलेखा' आदि इसी कोटि में आते हैं।

अतः हिन्दी के सूफी प्रेमास्थानों की वर्णन पद्धति फारसी मसनवियों की भाँति ही है। उनकी कथन शैली भी वर्णनात्मक अधिक है। उदाहरणार्थ 'फद्मावत' में बादशाह भोज सण्ड में कवि साथ फदार्थों के नामों की गणना करते हुए ही नहीं थकता। कथन शैली के वर्णनात्मक होने के अतिरिक्त इन प्रेमास्थानों में विषय प्रधान शैली का स्वरूप ही दृष्टिगत होता है, कवि की अपनी वैयक्तिकता पृथक् से नहीं दिखाई देती। भाषा की दृष्टि से अपने वर्णन पद्धति के हेतु सूफी कवियों ने लोक प्रचलित अवधी भाषा का प्रयोग किया है। डा० शिव सहाय पाठक का कथन है कि, "मूलतः हिन्दी के अनेक सूफी काव्य अवधी मसनवियाँ हैं, जिनमें भारतीय प्रबन्ध-काव्यों की शैली का भी समन्वय हुआ है।"

सूफी प्रेमास्थानों के वर्णन प्रसंग मसनवी काव्य-शैली

के समान काल्पनिक हैं, परन्तु कृष्ण भक्त कवियों ने भागवत आदि पौराणिक ग्रंथों के आधार पर अपने वर्णन प्रस्तुत किए हैं, अतः उनकी वर्णन पद्धति भी उन्हीं ग्रंथों से प्रभावित है। सूफी कवियों के समान उनकी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति अज्ञात, अपार्थिव के प्रति रहस्यानुभूतियों के रूप में नहीं हुईं अपितु भागवत धर्म के सिद्धान्तों का आधार ग्रहण कर कृष्ण का लीला गान करने में ही उनकी वाणी प्रवृत्त हुई। आचार्य शुक्ल ने सूफियों और कृष्णोपासकों के माधुर्य भाव में भिन्नता दर्शाते हुए लिखा है, "सूफियों और ईसाई भक्तों में माधुर्य भाव रहस्यवाद का एक अंग है पर कृष्णोपासकों में वह भगवान् की विज्ञात नर लीला का एक अंग है। ---- उनके श्रवण, कीर्तन और ध्यान में जो मधुर रस है वह लीला रस है अर्थात् भक्त लोग राधा और कृष्ण के परस्पर प्रेम की भावना द्वारा मधुर रस में लीन होते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे किसी काव्य में नायक और नायिका के प्रेम व्यापार को पद सुनकर पाठक या श्रोता शृंगार रस में मग्न होता है।"

अतः कृष्ण भक्त कवियों ने अधिकतर कृष्ण लीला के वर्णनों से युक्त प्रसंगों को ही अपनी वर्णन पद्धति का आधार बनाया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य' के इतिहास में इस विषय में कहा है कि- "उसमें लीला पद्य अर्थात् बाह्यार्थ विधान की प्रधानता रही है। उसमें कैलि, विलास, रास, छेड़छाड़, मिलन की युक्तियाँ आदि बाहरी बातों का ही विशेष वर्णन है। प्रेम लीन हृदय की नाना अनुभूतियों की व्यंजना कम है। वियोग वर्णन में कुछ संचारियों का समावेश मिलता है, पर वे रूढ़ और

परम्परागत है, उनमें उद्भावना बहुत थोड़ी पाई जाती है।^१ "

केवल सूर और नन्ददास जी ने ही लीला वर्णनों के अतिरिक्त अन्य प्रसंगों को भागवत से ग्रहण किया है। भागवत की विविध-रूपा सामग्री को डा० हरबंश लाल शर्मा ने चार वर्गों में विभक्त किया है :

- १- घटनात्मक
- २- उपदेशात्मक
- ३- स्तुत्यात्मक
- ४- गीतात्मक^२

सूरदास और नन्ददास जी ने अपने काव्य ग्रंथों में घटनात्मक स्थलों का संगी-पाणि चित्रण प्रस्तुत किया है। अन्य कवियों ने अगर कहीं इस विषय को ग्रहण किया भी है तो अत्यन्त ही संक्षेप में। सूरसागर के नवम स्कन्ध तक के प्रसंग अधिकतर घटनात्मक ही हैं। दशम स्कन्ध में इस प्रकार के वर्णनों से दृष्टि हटा कर उन्होंने कृष्ण की कैशोर लीलाओं की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया है।

नन्ददास जी ने गोवर्धन लीला, सुदामा चरित, स्याम सगाई आदि के विवरणात्मक प्रसंग प्रस्तुत किये हैं। अन्य कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण की लीलाओं का विशेष रूप से वर्णन किया है। राधा वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख ग्रंथ हित चौरासी का तो प्रतिपाद ही राधा कृष्ण का शृंगार विषयक वर्णन है। डा० विजयेन्द्र स्नातक के शब्दों में " हित चौरासी का वर्ण्य विषय मुख्य रूप से अन्तरंग भावना से सम्बन्ध रखता है। शृंगार रस की पृष्ठभूमि पर उन विषयों को इन पदों में हित हरिवंश जी ने प्रस्तुत किया है।

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास- ले० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- पृ० १७२

२- सूर और उनका साहित्य- डा० हरबंश लाल शर्मा पृ० १३२, ३३

जो राधा वल्लभ सम्प्रदाय के मेरुदण्ड हैं। अर्थात् राधा कृष्ण का अनन्य प्रेम, नित्य विहार, रास लीला, भक्ति भावना, प्रेम में मान विरह की स्थिति राधा वल्लभ का यथार्थ स्वरूप नित्य विहार के चतुर्व्यूहात्मक अवस्थाओं का वर्णन आदि ही इस ग्रंथ का प्रमुख प्रतिपाद्य है।^१ ”

इस प्रकार लगभग सभी कृष्ण भक्त कवियों की वर्णन पद्धति भागवत द्वारा गृहीत है। कल्पना में ”स्त्री” बनकर स्त्रियोचित भावों का अभिव्यक्तिकरण उन्होंने बड़ी ही कुशलता से किया है। डा० शुक्ल का मत भी कृष्ण भक्त कवियों के पक्ष में ही पड़ता है, वे कहते हैं कि, ”स्त्री यदि माधुर्य भाव से उपासना करेगी, तो वह अपने को गोपिका रूप में रक्कर शृंगार के आनन्द का अनुभव काव्य की रसानुभूति के ढंग पर कर सकती है, परन्तु जहाँ पुरुष उक्त भाव से ध्यान करेगा, वहाँ शृंगार आलंकारिक आरोप मात्र होगा।”

सूफियों की वर्णन पद्धति में फारसी मसनवी शैली के सभी गुणों का समन्वय है जबकि कृष्ण भक्त कवियों की वर्णन पद्धति भागवतादि पौराणिक ग्रंथों पर आधारित है, उसमें न तो प्रतिपाद्य के आविष्करण का स्थान है और न कल्पना का अधिक समन्वय। उसमें तो श्रीमद्भागवत का आधार ग्रहण कर लौकिक अनुभूतियों के सहारे अपार्थिव आलम्बन का पार्थिवकरण कल्पना के आश्रय से किया गया है। जबकि सूफी कवियों ने अपनी वर्णन पद्धति में स्वानुभूतियों को ज्ञात अपार्थिव के प्रति ज्ञात पार्थिव का आश्रय लेकर व्यक्त किया है।

१- राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य- ले० विजयेन्द्र स्नातक
पृ० ३१०

२- सूरदास- पं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० ६८

काव्य रूप का वैभिन्न्य :

सूफी कवियों और कृष्ण भक्त कवियों के काव्य रूपों में भी वैभिन्न्य है। सूफी कवियों की रचनायें मसनवी शैली पर आधारित प्रबन्धकाव्य या सण्ड काव्य के रूप में प्राप्त होती हैं परन्तु कृष्ण भक्त कवियों की अन्तवृत्तियों का निरूपण गीति काव्य के रूप में अधिक हुआ है। आत्माभिव्यक्ति गीतों के रूप में जितने सरल ढंग से हो सकती हैं उतनी अन्य ढंग से नहीं अतः कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं के लिये गैय पद शैली को उपयुक्त माना। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से अपने इष्ट की आराधना की। प्रबन्धकार की दृष्टि व्यक्तिपरक न होकर समाजपरक होती है। वहाँ तो कथा चरित्र चित्रण, भाव-व्यञ्जना आदि सभी का विशाल रूप होता है। सूफी कवियों की रचनाओं में प्रबन्ध काव्य के उपयुक्त यह समाजपरक भावना भली भाँति दिखाई देती है, परन्तु इसके साथ ही उनमें कथा आख्यायिका जैन चरित काव्य, महाकाव्य तथा मसनवी की विशेषताओं का भी समावेश है और यही इनकी सबसे बड़ी विशेषता है।

सूफियों के प्रायः सभी प्रेमाख्यानो में दोहा, चौपाई का प्रयोग हुआ है। यह प्रयोग बाह्य रूप से भले ही फारस की देन दृष्टिगत हो पर इसका स्वरूप भारतीय है। अफ़्ग़ानिस्तान साहित्य और रासी ग्रंथों में दोहा और चौपाई का प्रयोग उपलब्ध होता है। बौद्ध और जैन कवियों ने चौपाई दोहा, छन्दों का प्रयोग सुन्दर ढंग से किया है। स्वयंभू देव के "पद्म चरित" में दोहा और चौपाई बहुतायत से प्रयुक्त हैं। डा० राम कुमार वर्मा का इस विषय में कथन है कि, "यद्यपि चौपाई, छन्द का प्रयोग कुछ सिद्ध कवियों द्वारा भी हुआ है, तथापि जैन कवियों ने दोहा छन्द के साथ चौपाई का मेल

बड़े सुन्दर ढंग से किया है। स्वयंभूदेव ने अपने 'पञ्चचरित' में तो दोहा और चौपाई का प्रयोग ही अधिकतर किया है। सम्भव है, राम काव्य के महाकवि तुलसीदास ने भी 'स्वयंभूदेव' का 'पञ्च चरित' देखा हो और उसी शैली के अनुकरण पर दोहा चौपाई की शैली में अपना रामचरित मानस लिखा हो।^१

कुतुबन तथा मंमन ने पाँच पाँच चौपाइयों के पश्चात् एक दोहे या सौरठे का क्रम रखा है, किन्तु जायसी ने सर्वत्र सात अर्धालियों के पश्चात् एक दोहे का विधान किया है। मसनवी शैली में भी दोहे और चौपाइयों का यही क्रम विधान है पर दोहे चौपाई की यह परम्परा बहुत पहले से यहाँ चली आ रही थी।

हिन्दी सूफ़ी काव्यों में दोहा चरणों की मात्राओं के विषय में विविधता है। डा० शिवगोपाल मिश्र 'मृगावती' की भूमिका में कहा है, "मंमन की 'मधुमालती' में भी १६, ११ मात्राओं वाले दोहा, चरणों की बहुलता है, किन्तु २६ तथा २८ मात्रा वाले दोहे भी हैं। कुतुबन की 'मृगावती' में प्रस्तुत पाठ के आधार पर दोहे के प्रथम और तृतीय चरण में १६ मात्राओं का अत्याधिक प्रयोग हुआ है, किन्तु १६ मात्राओं के अतिरिक्त १५ और १७ मात्राओं का प्रयोग पहले और तीसरे चरण में पाया जाता है।" जायसी के दोहा चौपाई में भी कहीं कहीं मात्राओं की कमी बेशी है, पर प्रायः १६ मात्रायें ही उपलब्ध होती हैं। इसके अतिरिक्त १४, १५ और १७ मात्रा वाली चौपाइयाँ भी मिलती हैं। डा० माता प्रसाद गुप्त ने अपनी 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका में अनेक उदाहरणों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जायसी दोहा, चौपाइयों की मात्राओं के विषय में पर्याप्त स्वतन्त्र थे।^३

१- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- ले० डा० रामकुमार वर्मा पृ० १६५

२- कुतुबन कृत मृगावती - डा० शिवगोपाल मिश्र - पृ० ३७

३- जायसी ग्रंथावली- डा० माता प्रसाद गुप्त - भूमिका भाग

लगभग सभी सूफी कवियों ने अवधी भाषा के माध्यम से अपनी काव्य रचना की एवं दोहा, चौपाई जैसे मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया। उनके द्वारा रचित बड़ी बड़ी रचनायें प्रबन्ध काव्य और महाकाव्य की श्रेणी में आती हैं, तथा छोटी २ रचनाओं को सण्ड काव्य की संज्ञा से अभिहित किया गया है। परन्तु कृष्ण भक्ति काव्य में किसी महाकाव्य की रचना नहीं हुई। यद्यपि अनेक कवियों ने कृष्ण के जीवन चरित का आचोपान्त चित्रण किया है किन्तु शैली और विषय दोनों ही दृष्टियों से ये चित्रण महाकाव्य की कसौटी पर सरे नहीं उतरते। 'सूरसागर' में गीपाल कृष्ण की सम्पूर्ण कथा विद्यमान है पर वह प्रायः ७० पदों में ही निबद्ध है। गीति पदों में गायी गई सम्पूर्ण कृष्ण लीला में एक सामान्य कथा निबद्ध प्रबन्धात्मकता वर्तमान है। राधा के कंकण किंकिणी और नूपुरों तथा कृष्ण के मोर मुकुट एवं पीताम्बर से टकरा कर सूर की कल्पना शत शत गीतों के रूप में प्रसूटित हुई है। सूर ने गेय पद शैली में अनेक छन्दों को राग रागनियों एवं तालों के बन्धन में बाँधकर प्रयुक्त किया है। वर्णनात्मक प्रसंगों में अवश्य ही यह बन्धन कुछ शिथिल सा हो गया है। वर्णनात्मक प्रसंगों में उन्होंने अधिकतर चौपाई, चौपढ़, दोहा और रोला, छन्दों का प्रयोग किया है। इन प्रसंगों में प्रयुक्त छन्दों के विद्वध्य में डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने कहा है कि "सूरसागर में जिन सरलतम छन्दों का उपयोग हुआ है, वे १५ और १६ मात्राओं वाले चौबीला चौपढ़, और चौपाई हैं यद्यपि पादानुकूल तथा उसके भेद प्रमेदों के उदाहरण भी दूँडे जा सकते हैं पर कवि ने पादानुकूल और चौपाई में कदाचित् कोई भेद नहीं समझा, क्योंकि प्रायः एक चरण चौपाई और दूसरा पादानुकूल का एक साथ मिलता है।"^१

कृष्ण भक्त कवियों के पदों के ऊपर किसी न किसी राग का उल्लेख मिलता है और इन राग रागनियों का प्रयोग उन्होंने विषयानुरूप ही किया है। विभिन्न राग उसमें अपने अपने स्वर विधान द्वारा विभिन्न भावों का व्यक्तीकरण करने में समर्थ होते हैं किसी राग का स्वरूप गम्भीर होता है, किसी का चपल, कोई परुष प्रकृति का होता है और कोई कीमल प्रकृति का। रागबद्ध पद रचना करने वाले कवि के लिए विषयानुरूप राग का प्रयोग परमावश्यक है और यह कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं में मली भाँति उपलब्ध है। इन कवियों ने विनय के पदों के लिए बिलावल, कान्हरी, मारु, धनाश्री, रामकली, नट कैदारी, सारंग, मलार आदि रागों को प्रयुक्त किया है। करुण प्रसंगों पर इन कवियों ने कैदारा और सम्बावती जैसे रागों का प्रयोग कर श्रोता के नेत्रों को अश्रुपूर्ण करने का पूर्ण प्रयत्न किया है। जिन प्रसंगों में शृंगार, हर्ष, आनन्द, विनोद आदि की प्रधानता है, उनमें कीमल प्रकृति के रागों का प्रयोग इन कवियों ने किया है, ये राग हैं बिलावल, आसावरी, राम कली, धनाश्री, कल्याण, काफ़ी, जैश्री, जै जैवन्ती, कान्हरी, नट, सौरठ, भैरव, भैरवी, बसन्त, मलार सारंग आदि।

अतः लगभग सभी कृष्ण भक्त कवियों की संगीत का पूर्ण ज्ञान था। भक्ति और संगीत का अपूर्व सन्निवेश इनकी रचनाओं में द्रष्टव्य है। उदाहरणार्थ सूर की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

‘सरगम सुनी के साधि, सप्त सुरन गाई । १

२
कहाँ राग क्वीस रागिनी कू कू नीके गावेरी ॥ २

संगीत के सप्त स्वराँ, कः रागाँ, कृषीस रागनियाँ का उल्लेख सूर की उपर्युक्त पंक्तियाँ में हुआ है। इसी प्रकार अन्य कृष्ण भक्त कवियों ने भी राग, रागिनियाँ, सरगम आदि का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है, जो उनके ज्ञान की दुरुहता की दृष्टि से बेजोड़ है।

सूरदास जी के पदों में प्रयुक्त चौपाई कृन्द के स्पष्टीकरण के लिए उनका निम्न पद द्रष्टव्य है :

“हूँ हैं पुत्र भक्त अति जानी । जाकी जग में चलै कहानी ।
मुँह माल सिव ग्रीवा कैसी । मौसों बरनि सुनावी तैसी ।
उमा कही मैं तो नहीं जानी । वरु सिवहुँ मौसों न बखानी ॥” १

दोहा का प्रयोग सूरदास ने कहीं २ शुद्ध रूप में किया है और कहीं कहीं रौला कृन्द के साथ मिलाकर भी । दोहा और रौला का संयुक्त प्रयोग द्रष्टव्य है :

दोहा- नन्दराइ सुत लादिले, सब ब्रज जीवन प्रान ।
बार बार माती कहै, जागहु स्याम सुजान ।

रौला- जसुमति लेति बुलाइ , मोर भयी उठी कन्हाई ।
संग लिये सब सखा , द्वार ठाढ़े बल भाई ॥ २

सूर की भाँति परमानन्द दास जी, नन्ददास जी और कुंभनदास आदि ने कृन्द तथा पद दोनों शैलियों में लिखा है। वर्णनात्मक स्थलों पर उन्होंने भी चौपाई कृन्द का प्रयोग किया है और सूर की भाँति बीच बीच में चौबौला, और चौपाई का समावेश भी उन्होंने किया है।

हित हरिवंश जी ने स्फुट वाणी में सवैया, कृष्ण और कुण्डलिया तथा गीतपूर्ण स्थलों पर कविच का प्रयोग किया है। कविच और सवैया का प्रयोग ध्रुवदास जी ने भी किया है। सवैया का उदाहरण द्रष्टव्य है :

“ स्याम घटा उमड़ी चंद्र औरनि पावस की रितु जाई सुहाई ।
नाचत मोर मयूरी विनोद सौं जानन्द की वरषा वरषाई ॥
कौधैं जहाँ वहाँ दामिनि कामिनि प्रतिम कैं रही दुरि भाई ।
कैसे कहौ ध्रुव जात है सो कबि देखत नैन रहै हैं लुभाई ॥ ” १

मीराबाई की रचना में भी प्रायः वही कृन्द प्रयुक्त है, जो अन्य कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं में । उनके द्वारा प्रयुक्त कृन्दों में मुख्य है : सार कृन्द, सरसी कृन्द, विष्णु पद, दोहा, सवैया, तारक, कुण्डल आदि । मीरा ने अपनी पदों की रचना राग रागनियों के अनुसार की है जिससे प्रतीत होता है कि उन्हें संगीत का पूर्ण ज्ञान था । उनके काव्य में कृन्दों का प्रयोग उनकी लयपूर्ण भावाभिव्यक्ति का परिचायक है। मीरा तो सम्प्रदायभक्त भक्त थीं पर विभिन्न सम्प्रदाय के भक्तों में ब्रह्मकाय के कवियों की गैर शैली सर्वाधिक सुन्दर एवं प्रभावात्मक बन पड़ी है। उन्होंने विविध कृन्दों के बन्धान पर टेक और राग के बन्ध द्वारा अपनी रचनाओं को कोर्तन और भजन के योग्य बना लिया था । राधावल्लभ , निम्बार्क एवं कृष्ण भक्ति के अन्य सम्प्रदायों के भक्त कवियों ने अधिकतर भक्तक काव्य को अपनी रचना का माध्यम बनाया । ‘नन्ददास’ ने अनेक सण्डकाव्यों का सृजन किया जो श्रीमद्भागवत के कृष्ण से सम्बद्ध विविध वाक्यानों पर आधारित हैं। इनमें

कुछ सण्ड काव्य इस प्रकार हैं : रास पंचाध्यायी, रुक्मणि मंगल, श्याम सगाई, रूप मंजरी आदि । सण्डकाव्य की दृष्टि से इन सब कृतियों का पूर्ण स्थान है। रास पंचाध्यायी प्रतीकात्मक, रूप मंजरी अन्यौलितमूलक तथा रुक्मणि मंगल और श्याम सगाई घटनात्मक सण्डकाव्य की श्रेणी में आते हैं।

कृष्ण भक्त कवियों ने गीतों के रूप में आत्माभिव्यक्ति दो प्रकार से की है- प्रत्यक्ष रूप से स्व गोपी भाव के माध्यम से । प्रत्यक्ष रूप से आत्माभिव्यक्ति मीरा के पदों में हुई है या फिर सूरदास आदि के विनय सम्बन्धी पदों में । इन पदों में आत्माभिव्यक्ति का शुद्ध रूप उपलब्ध है। कवि के अन्तर्जगत् में उठने वाले भावों की अभिव्यक्ति यहाँ पर हुई है। इस प्रकार के पदों में घटनाओं या अन्य पात्रों के लिए किंचित् भी स्थान नहीं है।

गोपी भाव के द्वारा की गई आत्माभिव्यक्ति कृष्ण भक्ति के विविध सम्प्रदायों में दृष्टिगत होती है। वहाँ भी प्रकृत तत्त्व का निर्वाह मली प्रकार हुआ है। गोपियों की उक्तियों में कवि हृदय मुखर हो उठा है। हृदय की अनुरक्ति और आसक्ति इन उक्तियों में कूट कर मरी है। कृष्ण भक्त कवियों ने अधिकांश रूप से लीला गीतों और फिर लोक गीतों का सृजन किया है। कृष्ण लीला के दो मुख्य रूप प्राकृत स्व अति प्राकृत प्रत्येक कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय में अपनाये गये हैं। प्राकृत लीलाओं में भक्तों के अनुराग तथा अति प्राकृत लीलाओं में उनकी आस्था का चित्रण युक्तिपूर्वक हुआ है । अधिकतर कवियों ने भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित कृष्ण लीलाओं का ही गान किया है। इन लीला पदों में बाल लीला, गोदोहन, गोचारण, वीर-हरण, गोवर्धन धारण, नाग लीला, दान लीला आदि से सम्बन्धित पद विशेष उल्लेखनीय हैं। इन लीला गीतों के अन्तर्गत ही उनके वे गीत आते हैं

जो राधा और कृष्ण के रूप एवं लीला चित्रण की कल्पना का आश्रय लेकर प्रस्तुत किए गये हैं।

कृष्ण भक्त कवियों ने लोक गीतों के अन्तर्गत ब्रज के प्रचलित लोक गीतों को लिया है। शास्त्रीय रागों तथा साहित्यिक भाषा के संस्पर्श से उनका रूप और परिष्कृत हो गया है। इन लोक गीतों में भावात्मकता वर्णनात्मकता की अपेक्षा कम है। सूरदास द्वारा रचित बधाई लोक गीत का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

“ धनि धनि नन्द जसौमति, जनि जग पावन रे ।
 धनि हरि लियौ अवतार, सधनि दिन जावनि रे ।
 दसई मास मयौ पूत, पुति सुहावन रे ।
 सँस, चक्र , गदा, पद्म चतुर्भुज भावन रे ।
 बनि ब्रज सुन्दर चलीं , सुगाई बधावन रे ।
 कनक थारु रौचन, दग्ध तिलक बनावन रे ।
 पाहन परि सब बधू, महरि बैठावन रे ॥ ” १

काव्य कला की दृष्टि से इन लोक गीतों का महत्त्व अधिक नहीं । कारण इनमें कृष्ण भक्त कवियों की भावुक कल्पना एवं कला नैपुण्य के दर्शन नहीं होते परन्तु अपने शास्त्रीय संगीत के साथ इन कवियों ने विभिन्न प्रकार की लोक गीत शैलियों का जो समन्वय किया है, वह अवश्य ही कला के क्षेत्र में उनके नवीन प्रयोग का प्रतीक है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि कृष्ण काव्य

का चरम विकास गीति फर्मा में ही हुआ । इन गीति फर्मा में अनुभूति की तीव्रता , तन्मयता एवं आत्मा की वह प्रभावमयी आवाज है जो सीधी हृदय को बेधती है। गेयफर शैली को अपनाकर कृष्ण भक्त कवियों ने अपने फर्मा को स्वयं तक ही सीमित नहीं रखा अपितु उन्हें जनता तक पहुँचा दिया । साधारण जनता उन्हें गा गाकर उनके रस में सरा बोर होती रही । इन भक्त कवियों के पास अपने गीति फर्मा को न तो प्रबन्ध रूप में बाँधने का अवकाश था और न उन्हें इसकी आवश्यकता ही अनुभव हुई । इसके विपरीत सूफी कवियों की रचनाएं अधिकतर प्रबन्ध काव्य या सण्ड काव्य के रूप में उपलब्ध होती हैं। जायसी का 'फरमावत' प्रबन्ध काव्य है, उसमें विषय की व्यापकता है, विशद चरित्र चित्रण है एवं लोक जीवन का व्यापक चित्र उपलब्ध है। मले ही इन प्रबन्ध काव्यों में ऐतिहासिकता या पौराणिकता का आश्रय न ग्रहण किया गया हो फिर भी व्यापकता एवं संघटन के आधार पर सूफी प्रेमाख्यानों को आकार के अनुसार प्रबन्ध या सण्ड काव्य कहना ही मीचीन होगा । इन सूफी कवियों ने दोहा, चौपाई कन्दों का ही अधिकतर प्रयोग किया है, जिनमें भारतीय प्रबन्ध काव्यों एवं फारसी मसनवी काव्य-शैली का मिला जुला रूप दिखाई देता है। जबकि कृष्ण भक्त कवियों ने अपने गीति फर्मा में दोहा, चौपाई, सरसी, सवैया और हरिप्रिया आदि अनेक कन्दों को स्थान दिया है। वस्तुतः इनकी गेय फर शैली में इन सभी कन्दों का प्रयोग बढ़ी सुन्दरता एवं कलात्मकता के साथ हुआ है। उनकी गेय फर शैली को लक्ष्य कर आचार्य शुक्ल ने कहा है, कि "कृष्ण चरित के गान में गीत-काव्य की जो धारा पुराण में जयदेव और विद्यापति ने बहाई उसी का अवलम्बन ब्रज के भक्त कवियों ने भी किया --- । कृष्ण सम्बन्धी कविता का स्फुरण मुक्तक के क्षेत्र में ही हुआ, प्रबन्ध क्षेत्र में नहीं ।

Part

कारण स्पष्ट है कृष्ण भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण भगवान् के चरित का जितना वेश लिया, वह एक अच्छे प्रबन्ध काव्य के लिए पर्याप्त न था। उसमें मानव जीवन की वह कनेक रूपता न थी जो एक अच्छे प्रबन्ध काव्य के लिए आवश्यक है। कृष्ण भक्त कवियों की परम्परा अपने दृष्ट देव की बाल लीला और यौवन लीला लेकर ही अग्रसर हुई, जो गीत और मुक्तकके लिए ही उपयुक्त थी।^१ अतः सूफी सन्त कवियों और कृष्ण भक्तों के काव्य रूपों में अन्तर स्पष्ट है, सूफियों ने मसनवी शैली पर आधारित प्रबन्ध या सण्ड काव्यों की सृष्टि की, जिनमें कल्पना का प्राचुर्य है एवं कृष्ण भक्त कवियों ने पौराणिकता का आश्रय ग्रहण कर जयदेव और विद्या-पति की गीत-काव्य की परम्परा को आगे बढ़ाने में योग दिया।

पात्र- चयन में वैभिन्न्य :

सूफी सन्त कवियों एवं कृष्ण भक्त कवियों के पात्र चयन में भी अन्तर है। सूफी प्रेमस्थानों के पात्र अधिकतर काल्पनिक हैं। जबकि कृष्ण भक्त कवियों ने पौराणिक पात्रों के नाट्यम से प्रेमाभिव्यक्ति की। ऐतिहासिक कथानकों से सम्बन्धित प्रेम कथाओं में भी सूफी कवियों ने ऐतिहासिक पात्रों के साथ साथ काल्पनिक पात्रों की अवतारणा की है जैसे जायसी कृत 'पद्मावत' में। इसका कारण था सूफियों की रचनाओं का मूल उद्देश्य, इसक मज़ाजी द्वारा इसक हकीकी की प्राप्ति अर्थात् लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की उपलब्धि, जिसको लेकर इन्होंने अपने काव्यों का सृजन किया। इसक हकीकी की उपलब्धि हेतु इन कवियों ने अपने काव्यों की नायिकाओं

को ईश्वरीय ज्योति के प्रतीक रूप में चुना। कुतुबन की 'मृगावती', मकन की मधुमालती, और नूरमुहम्मद की इन्द्रावती सभी नायिकाएँ ईश्वर का प्रतिरूप हैं जिनके सौंदर्य का श्रवण कर नायक उनकी प्राप्ति के लिए निकल पड़ते हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार साधक ईश्वर की खोज में निकल पड़ता है, और अगर उसकी साधना सच्ची होती है तो वह मार्ग की विघ्न बाधाओं का अतिक्रमण कर अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है। सूफी प्रेम कथाओं के नायक भी नायिकाओं की उपलब्धि करके ही चैन से बैठते हैं। कुछ सूफी कवियों ने तो पात्रों के नाम भी आध्यात्मिक उद्देश्य को लेकर ही रखे हैं, इस प्रकार उनके उद्देश्य 'इश्क हकीकी' का स्पष्टीकरण भली भाँति हो जाता है। कवि उसमान ने अपनी 'चित्रावली' में गुरु फुज का नाम 'सुबुद्धि' रखा है जो विवेक का परिवाक है। नूर मुहम्मद ने तो अपनी 'अनुराग बांसुरी' में अधिकांश पात्रों की योजना इसी प्रकार की है। राजा 'जीव' का पुत्र 'अन्तःकरण' है, स्वं पुत्र के मित्र हैं, बुद्धि, चित और अहंकार आदि। 'इन्द्रावती' में भी उन्होंने कुछ पात्रों का नामकरण आध्यात्मिक उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही किया है। अतः सूफी कवियों का लक्ष्य अपनी कल्पित प्रेम कथाओं के आधार पर लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना करना रहा है। जायसी कृत 'फदावत' में फदमावती के ईश्वरीय सौंदर्य का वर्णन कर उसके द्वारा परमात्मा का प्रतिनिधित्व कराने की चेष्टा की गई है। उसका रूप पारस के समान है जिसके द्वारा विश्व की समस्त वस्तुएँ सौंदर्यान्वित होती हैं। इसी प्रकार 'मकन' की 'मधुमालती', उसमान की 'चित्रावली' एवं 'नूर मुहम्मद' की इन्द्रावती अमूर्त सौंदर्य का भाण्डार हैं। इनके सौंदर्य में ईश्वरीय सौंदर्य प्रतिबिम्बित होता है। उदाहरणार्थ 'नूर मुहम्मद' की इन्द्रावती का सौंदर्य वर्णन द्रष्टव्य है :

‘ जो काहुव पर हारै ढीठी , सो जन देख जगत दिस पीठी ।

कस रूपवन्ती सुन्दर वाहै, बिनु देखे सब ताहि सराहै ॥ ” १

यही नहीं उसका सौंदर्य दीप्ति ज्योति के समान प्रकाश मान है जिस पर समस्त संसार शलम सदृश प्राण विसर्जन करने को उत्सुक है :

‘ जेहि दरसन के दीप पर है फाँग संसार ।

प्रेम तेहिक तुम लीन्हा, मरे न नाम तोहार ॥ ” २

इस प्रकार सूफी कवियों ने लौकिक प्रेम सर्व पात्रों के द्वारा अलौकिक प्रेम का संकेत किया है। नारी वहाँ उस नूर का प्रतीक है, जो संपूर्ण विश्व का मूल स्रोत है, सर्व वह उस पूर्ण का भी कार्य करती है जिसके अभाव में मानव जीवन ही सूना है। नायक नायिका के मिलन तक तो सूफी कवियों की प्रेम व्यंजना पूर्ण रूपेण अलौकिक है। सिद्ध योगी के समान नायक घर बाहर यहाँ तक कि स्वदेश का भी त्याग कर परमात्मा रूपी नायिका की प्राप्ति हेतु अग्रसर होता है और अक्सर आने पर तपस्वी का वेश धारण कर महादेव के मन्दिर में सिंह चर्म पर आसीन होकर नायिका के नाम का जाप करने से भी नहीं डरता :

‘ बैठ सिंघाला होइ तपा, फदमावती फदमावती जपा ।

दिस्टि समाधि जाहि सौ लागी, जेहि दरसन कारन बैरागी ॥ ” ३

राजा रत्नसेन के वेश और उसकी साधना को देखकर ऐसा नहीं लगता कि वह लौकिक प्राणी के हेतु यह समाधि रमाये है। जिस प्रकार साधक ईश्वरीय ज्योति

१- इन्द्रावती पृ० ४५

२- ,, ४५

३- फदमावत- वासुदेव शरण अग्रवाल - पृ० १६७

के अलौकिक तेज को प्रथम बार नहीं सह पाता उसी प्रकार मन्दिर में पद्मावती के दर्शन करने पर रत्नसेन उसके सौंदर्य की ज्योति को सहन न कर मूर्च्छित हो जाते हैं। नायक नायिका मिलन के बाद कवि की रचना का अभीष्ट स्फुट प्रकार से समाप्त हो जाता है और इसके बाद प्रेमाख्यानों के नायक नायिका सामान्य पुरुष नारीवत् आचरण करने लगते हैं। अधिकांश सूफी कवियों ने नायक - नायिका मिलन के बाद अपने काव्यों को अधिक नहीं बढ़ाया, कुछ ने मिलन के बाद अपने काव्यों को अधिक नहीं बढ़ाया, कुछ ने मिलन के बाद पुनः विरह करा दिया है जैसे कुतुबन कृत 'मृगावती' में। जायसी तो नायक नायिका को मिलाकर भी अपनी रचना को आगे तक ले गये हैं परन्तु वहाँ पर पद्मावती का आदर्श गृहिणी का रूप ही अधिक स्पष्ट हुआ है, उसका अलौकिक रूप बस दब सा गया है। यही कारण है कि उन्हें अन्त में कुछ पंक्तियाँ द्वारा रचना का मूल उद्देश्य उसका रूपत्व स्पष्ट करना पड़ा है।

सूफी काव्यों के पात्रों को प्रमुक्तः दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है : दैवी पात्र और मानवी पात्र। प्रथम वर्ग के पात्र देव-ताओं या नबियों के रूप में आते हैं जिनकी वाराधना करने पर वरदानस्वरूप नायक या नायिका का जन्म होता है, जैसे 'चित्रावली' के नायक सुजान की प्राप्ति नेपाल देश के राजा धरनीधर को शिव पार्वती को प्रसन्न करने के बाद होती है। इसी प्रकार 'नूर मुहम्मद' की इन्द्रावती का जन्म भी शिव-राधना के बाद ही होता है। ये अलौकिक पात्र नायक नायिका के प्रेम की परीक्षा भी लेते हैं जिस प्रकार शिव-पार्वती राजा रत्नसेन के प्रेम को कसाँटी पर कसते हैं और सरा उतरने पर उसकी सहायता भी करते हैं। पार्वती तो अप्सरा का वेश धारण कर राजा रत्नसेन के समक्ष आकर खड़ी हो जाती है, पर रत्नसेन अपने साधना मार्ग से तनिक भी विचलित नहीं होता। वह तो एक मात्र

पद्मावती का ही मिदुल है। प्रस्तुत पंक्तियाँ में उसके प्रेम की दृढ़ता द्रष्टव्य है :

“मलेहि रंग क्करी तौर राता , माँह दूसर सौ भावन बाता ॥” १

इस दृढ़ता के समझा भवानी भी नत मस्तक हो जाती है, सर्व अवसर पर शिव पार्वती रत्नसेन की सहायता भी करते हैं तथा सिद्धि गुटिका देकर उसे सिंहल गढ़ क्रौश का मार्ग भी बताते हैं^२। जब गन्धर्व सेन रत्नसेन को शूली देने को तैयार होता है तब शिव ही उसकी रक्षा करते हैं^३। जब “पद्मावत” में लक्ष्मी भी जलौकिक पात्र है पर उसका चित्रण कवि ने लौकिक पात्र के रूप में किया है। वह पद्मावती का रूप धारण कर रत्नसेन को छलने का प्रयास करती है। उसे वह विश्वास दिलाती है :

“हाँ रानी पद्मावति, रत्नसेन तू पीउ ।

जानि समुद्र मँह छाड़ेहु, अब रीवाँ देख जीउ ॥” ४

इस प्रकार लक्ष्मी एक लौकिक स्त्री की भाँति ही हमारे समझ आती है। इन जलौकिक पात्रों को सूफ़ी कवि ऊर्ध्व पारलौकिक स्वीकार करते हैं क्योंकि ये ईश्वरावतार में विश्वास नहीं करते और मूर्ति पूजा को व्यर्थ मानते हैं। फिर भी सामयिक विश्वासों के कारण वे इन्हें कुछ जलौकिकता प्रदान कर देते हैं सर्व इन व्यक्तित्वों की कथाओं के अप्रमुख पात्रों के रूप में ही रहते हैं।

सूफ़ी प्रेमाख्यानो के मानवी पात्र दो वर्गों में विभक्त हैं : पुरुष एवं स्त्री । पुरुष वर्ग के पात्र नायक और प्रतिनायक दो भागों

१- जायसी ग्रंथावली- सं० रामचन्द्र शुक्ल - पृ० ६१

२- “, “, ६४

३- “, “, ११५

४- “, “, १८३

में बंट जाते हैं। लगभग सभी प्रेमास्थानों का नायक सम्प्रान्त कुल से सम्बद्ध होता है। वह दृढ़ संकल्पी, प्रेम मार्ग का पथिक एवं अपने प्रिय की उपलब्धि हेतु प्राणों की भी बाजी लगा देता है। 'पद्मावत' का रत्नसेन, चित्रावली का सुजान, मधुमालती का मनोहर आदि इसी प्रकार के नायक हैं। प्रतिनायक का होना प्रत्येक काव्य में आवश्यक नहीं है। 'पद्मावत' का अलाउद्दीन प्रतिनायकों की श्रेणी में आता है।

प्रायः सभी प्रेम काव्यों की नायिकायें ईश्वरीय ज्योति का प्रतिरूप हैं, इन नायिकाओं के अतिरिक्त कुछ प्रतिनायिकारं भी होती हैं, जैसे 'पद्मावत' में नागमती, चित्रावली में कौलावती, मृगावती में रूपमयिणी तथा इन्द्रावती में सुन्दर आदि। नायक नायिकाओं, प्रतिनायकों एवं प्रतिनायिकाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य पात्रों की भी सूफी कवियों ने अपने प्रेमास्थानों में योजना की है जैसे राजास, परी, अस्सरा, पशु एवं पक्षी आदि। इन पात्रों ने कथा को आगे बढ़ाने में पर्याप्त योग दिया है।

कुतुबन कृत 'मृगावती' में तो नायिका का सर्वप्रथम अवतरण ही मृगी के रूप में होता है। जायसी कृत पद्मावत में सिंहलद्वीप से लौटते समय रत्नसेन को समुद्र में स्वच्छन्द रूप से भ्रमण करने वाला एक अति विशालकाय राजास अत्याधिक कष्ट देता है। रमकन की मधुमालती में तो मनोहर और मधुमालती को अस्सराओं के कारण संयोग और वियोग दोनों भोगने पड़ते हैं। बाद में जब मनोहर मधुमालती की प्राप्ति हेतु गृह त्याग कर निकल पड़ता है, तो मार्ग में भ्रमित हो जाने पर वह अगम्य वन में पहुँच जाता

है वहाँ प्रेमा को मुक्त करने के लिए उसे एक राजास से युद्ध करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कवि मरुन तो माता द्वारा शाप्यस्त मधुमालती को ही पक्षिणी बनाकर उड़ा देते हैं, जो अपने प्रियतम की प्राप्ति के लिए देश विदेश घूमती है। 'उसमान कृत चित्रावली' में भी देव, राजास, वज्रगर, वन मानुष आदि का विधान है। एक देव ही नायक सुजान को चित्रावली की चित्रसारी में पहुँचाता है जहाँ चित्रावली का चित्र देखकर वह मुग्ध हो जाता है और देव द्वारा वापस ले जाने पर प्रातःकाल जब वह चित्रावली का स्मरण करता है तो विरहाकुल हो जाता है। उसकी प्राप्ति हेतु सर्वस्व त्याग कर निकल पड़ता है। जंगल में पहुँचने पर एक वज्रगर उसे निगल जाता है, जो कुँवर की विरह ज्वाला न सह सकने के कारण पुनः उसे उगल देता है। वन-मानुष कुँवर की सहायता करता है परन्तु फिर एक हाथी उसे फँस लेता है, पक्षिराज हाथी सहित कुँवर को ले उड़ता है, घबराहट में हाथी के मुँह से कुँवर छूट जाता है जो समुद्र तट पर जा गिरता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि लगभग सभी सूफी कवियों ने अपने प्रेम काव्यों में राजास, परीष्ट पक्षु, पक्षी आदि पात्रों की योजना करके आश्चर्यजनक तत्वों का समावेश किया है।

काल्पनिक पात्रों के अतिरिक्त कुछ ऐतिहासिक पात्रों की भी योजना सूफी कवियों ने की है जैसे राघव चेतन, रत्नसेन, फरमावती, अलाउद्दीन आदि। परन्तु इन पात्रों से सम्बन्धित घटनाएँ अधिकशतः ऐतिहासिक नहीं जिसके कारण इन पात्रों का भी ऐतिहासिक व्यक्तित्व संदिग्ध सा ही प्रतीत होता है। रत्नसेन का जो चित्रण जायसी ने किया है वह किसी इतिहास द्वारा प्रमाणित नहीं होता, उस पर कवि ने बहुत कुछ काल्पनिक रंग चढ़ा दिया है।

वतः सूफी कवियों द्वारा रचित प्रेम कथाओं के समान इनके पात्र भी अधिकतर काल्पनिक हैं। उन्होंने अपनी काल्पनिक प्रेम कथाओं में काल्पनिक पात्रों की योजना अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए की है। इनका उद्देश्य जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति था और इसके लिए उन्हें पौराणिक या ऐतिहासिक पात्रों का चयन नहीं जंचा और न उन्होंने इसकी आवश्यकता ही समझी।

प्रेमास्थानों के पात्र उनके कथानकों के समान ही काल्पनिक हैं परन्तु कृष्ण भक्त कवियों ने जहाँ अपने प्रेम की अभिव्यक्ति के हेतु पौराणिक आस्थानों को चुना, वहाँ पौराणिक पात्रों को ही उनके कथानकों के उपयुक्त समझा। उनके कृष्ण और गौपियों भागवतादि पुराणों के कृष्ण और गौपियाँ हैं, केवल अन्तर इतना है कि भागवतकार ने जहाँ कृष्ण के परम पुरुषत्व को सिद्ध करने के उद्देश्य से कृष्ण और गौपियों का चित्रण किया है, वहाँ कृष्ण भक्तों ने केवल विलक्षण ढंग से उसकी व्यंजना की है। उनके काव्य में योग और दर्शन से अधिक प्रेम का महत्व वर्णित है। भागवतकार की भाँति भक्त कवियों का मुख्य उद्देश्य कृष्ण की अलौकिकता चित्रित करना नहीं रहा, उन्होंने कृष्ण के मानवरूप की प्रधानता दी है। यही कारण है कि यशोदा के यहाँ जन्म ग्रहण करते ही श्रीकृष्ण देशकालानुकूल सामान्य शिशु-वत आचरण करने लगते हैं एवं मधुरागमन तक ऐसी मनभावनी लीलायें करते हैं जिनमें बाल और किशोर काल की मानवीय स्वाभाविकता स्वतः ही जागृत है फिर भी कृष्ण के अलौकिक रूप को वे कहीं भी विस्मृत नहीं कर पाये हैं।

कृष्ण भक्त कवियों में अग्रगण्य एवं अष्टहाप के प्रमुख कवि सुर ने कृष्ण चरित के स्वाभाविक चित्रण में विलक्षणता का रंग भर

दिया है। उनके कृष्ण ब्रह्म होने पर भी ऐसा वाचरण करते हैं कि किसी को सहज भाव से उनके ब्रह्मत्व का भान ही नहीं हो पाता। यशोदा, नन्द एवं ब्रजवासी सदैव उन्हें अपने पुत्र एवं भाते बालक के रूप में देखते हैं। ब्रज युवतियाँ रतिनागर के रूप में उनकी धारणा करती हैं। पर कृष्ण की झीझारों के मध्य में होने वाले पराक्रमपूर्ण विस्मयजनक संहार कार्य कृष्ण के अति मानव रूप की पुष्टि कर देते हैं जैसे वत्सहरण के अवसर पर कालियदमन, गौवर्धन धारण एवं दानलीला आदि। पूतना वध से लेकर भौमासुरवध तक कृष्ण की बाललीलाओं में जितने अलौकिक कृत्य हैं, सभी में भगवान् के असुर संहारक एवं भक्त उद्धारक रूप के दर्शन होते हैं। परन्तु इन स्थानों पर भी सूर ने दुस्तर से दुस्तर कार्य करने में भी समर्थ कृष्ण की कोमलता और माधुर्य को अद्भुत ही रखा है। तभी तो पूतना वध के अवसर पर मातृ-हृदय विष्वक्तता से ओत प्रीत होजाता है :

‘जमुमति विकल मर्दं हिन कलना ।

लेहु उठाय पूतना उर तैं मेरी सुभग साविरी ललना ॥ १

सूर के अतिरिक्त अन्य कृष्ण भक्त कवि कृष्ण के बाल और किशोर रूप की अधिक महत्व न देकर उनके माधुर्य पूर्ण चरित की और मुक्त एवं राधा तथा गोपियों के साथ उनके प्रेम सम्बन्धों के चित्रण में ही लीन रहे। यद्यपि, अन्यान्य कवियों ने इस चित्रण में तन्मयता दर्शायी है परन्तु जिन कुशल संकेतों द्वारा सूर अपने कृष्ण की वीतरागत्व एवं अनासक्ति की उच्च भाव भूमि पर प्रतिष्ठित कर सके वैसा सम्भवतः अन्य कवि न कर सके।

भागवत में राधा का वर्णन नहीं है, केवल एक गोपी

विशेष का उल्लेख है जिसके साथ श्रीकृष्ण स्कान्त में भ्रमण करते और विहार करते हैं। राधा के वर्णन के लिए सूर ने ब्रह्मवैवर्तपुराण से सहायता ली है। जय-देव ने भी अपने "गीत गोविन्द" के लिए ब्रह्मवैवर्तपुराण का आश्रय ग्रहण किया है। "जयदेव", विद्यापति और चण्डीदास का सूर पर स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। कृष्ण की भाँति राधा का भी सूर ने सहज मानवीय रूप में चित्रण किया है स्व राधा कृष्ण के प्रेम की बाल्यकाल से ही सहज आकर्षण के रूप में प्रारम्भ करके उसका मनोवैज्ञानिक विकास दिखलाया है। वैसे तो राधा कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति होने के कारण उनसे अभिन्न और उन्हीं का स्वरूप है पर व्यवहार में वे कृष्ण प्रेम को प्राप्त करने के लिए अत्याधिक अधीर, व्याकुल और कालांतर है। सूर ने राधा कृष्ण के संयोग और प्रेम विलास के अनेक चित्र अंकित किए हैं, इन चित्रों में अवश्य ही प्रेमी नायक, नायिका के अगणित रूप और भाव मिलते हैं, पर हैं ये भाव मात्र ही, कहीं भी सूर राधा कृष्ण के अवशिष्टरूप अलौकिक रूप को भूल नहीं पाए। राधा के प्रेम की महत्ता और कृष्ण से उनकी अभिन्नता का प्रमाण कुरुक्षेत्र में मिलन के अवसर पर मिलता है, जब राधा और कृष्ण स्कार हो जाते हैं :

राधा माधव भेंट भई ।

राधा माधव, माधव राधा, कीट भृंग गति हूँ जु गई ।

माधव राधा के रंग रचि, राधा माधव रंग रई ।

माधव राधा प्रीति निरन्तर, रसना रुकि सौ कहि न गई ।

विहँसि कह्यौं हम तुम नहीं अन्तर, यहि कहि कै उन ब्रज पठाई ।

सूरदास प्रभु राधा माधव, ब्रज विहार नित नई नई ॥१

सूर के अतिश्रुत अष्टरूप के अन्य कृष्ण भक्त कवियों

ने भी राधा और कृष्ण के चरित्र चित्रण में मानवीय स्वाभाविकता का समावेश करते हुए भी कुछ ऐसे रहस्यमय संकेत किए हैं जो उनके अलौकिक व्यक्तित्व की व्यंजना करते हैं। 'नन्ददास' का तो संपूर्ण 'भैरवगीत' ही इसी भाव से पूर्ण है। भैरवगीत की गौपियाँ कृष्ण के ब्रह्म रूप से अभिज्ञ नहीं, इसी कारण उद्धव द्वारा प्रतिपादित ब्रह्म का निर्गुण उपदेश उन्हें मान्य नहीं। उद्धव में उस दिव्य दृष्टि का अभाव है जिससे वे कृष्ण के परब्रह्म स्वरूप का दर्शन कर सकें अतः गौपियाँ उद्धव की ब्रह्म ज्योति और ज्ञान का अनादर कर अपने सीधे सादे प्रेम मार्ग का निर्देश करती हैं।

‘कौन ब्रह्म की जाति, ग्यान कासी कहाँ ऊधौ ?

हमारे सुन्दर स्याम, प्रेम की मारग सुधौ ।

नैन, बैन, श्रुति नासिका, मोहन रूप दिखाइ ।

सुधि बुधि सब मुरली हरी, प्रेम ठगौरी लाइ ॥ १

अष्टकाप सम्प्रदाय के अतिरिक्त निम्बार्क, राधा-वल्लभ, चैतन्य और सखी सम्प्रदाय में भी कृष्ण के अलौकिक स्वरूप की व्यंजना कहीं कहीं की गई है। राधा को उनकी आह्लादिनी शक्ति एवं गौपियों को इस विकास में सहायिका स्वीकार किया गया है। राधा वल्लभ सम्प्रदाय में राधा का महत्त्व अधिक है। वहाँ स्वयं कृष्ण उनके प्रेम की प्राप्ति हेतु उनसे अनुनय विनय करते हैं।

चैतन्य सम्प्रदायानुयायियों ने भी राधा कृष्ण की एक आत्मा स्वीकार किया है जो रसास्वादन हेतु दो शरीर धारण किये

है। कृष्णादास कविराज ने दोनों को अभिन्न ही स्वीकार किया है :

‘ उपास्यैर मध्ये कौन उपास्य प्रधान ।

श्रेष्ठ उपास्य युगल बाधा कृष्ण नाम ॥ १ ‘

हरिदासी सम्प्रदाय में राधा कृष्ण के प्रेम को अलौकिक स्वीकार किया गया है। भगवत रसिक जीने स्पष्ट रूप से कहा है कि राधा कृष्ण का प्रेम उन्हीं के समान है नित्य, अनन्त और अनादि है। वह स्वकीया परकीया भाव से रहित, श्रुतिस्मृति से पृथक् सर्व लौकिक प्रेम से विलक्षण है, जो केवल अनुभव के द्वारा ही जाना जा सकता है :

‘ कौउ सुकिया कौउ परकिया कलप किये मतवादि ।

जोरी भगवत रसिक की नित्य अनन्त अनादि ॥

नित्य अनन्त अनादि लोक हैं रीति विलक्षण ।

श्रुति, स्मृति विलगाय देखि अनुभव के अनादि ॥

सहज प्रेम माधुर्य रहत अनुरागे दीऊ ॥ ‘ २

कृष्ण भक्त कवियों ने राधा कृष्ण के अतिरिक्त स्त्री पात्रों में गोपियाँ, यशोदा, तथा कुब्जा आदि का और पुरुष पात्रों में नन्द गोप और बलराम आदि का चयन किया है। बल्लभ सम्प्रदाय में गोपियाँ की आदि इस शक्ति राधा का ही स्वरूप स्वीकार किया गया है, पर अन्य सम्प्रदायों में गोपियाँ राधा कृष्ण के छीड़ा विलास में सहायक हैं। ये ही गोपियाँ उपासना मार्ग में साधक भक्त की आदर्श हैं। कृष्ण भक्त कवियों ने विशेष रूप से सूर ने यशोदा की स्नेहमयी माता के रूप में चित्रित किया है।

१- चैतन्य चरितामृत- मध्यलीला - अष्टम अङ्क

२- भगवत रसिक की वाणी - पृ० ८२, ८३

नन्द उनके पिता हैं, बलराम भाई एवं अन्य गोप वादि ससा हैं। यशोदा को भी कभी कभी कृष्ण के अलौकिक रूप का साक्षात्कार हो जाता है। शिशु रूप में कृष्ण माँकी भक्षण करते हैं, माता से इसके लिये झकार करते हैं, फलस्वरूप यशोदा उनसे मुस सीत्कर दिसाने का अनुग्रह करती हैं। मुस में दृष्टि जाते ही उन्हें बसिल ब्रह्मांड के दर्शन हो जाते हैं :

‘नन्दहि कहत यशोदा रानी ।

माटी के मिस मुस दिसरायाँ, तिहूँ लोक रजधानी ।

स्वर्ग, फताल, धरनि, वन पर्वत, बदन माँफि रहे बानी ।

नदी, सुमेरु देखि चञ्चित भई, याकी अकथ कहानी ।

चितै रहे तब नन्द घरनि मुस, मन मन करत बिनानी ।

सूरदास तब कहति जसोदा, गगं कही यह बानी ॥ १

अतः कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण को अलौकिक रूप प्रदान किया है, राधा उनकी आधा शक्ति हैं एवं गोपियाँ उन्हीं का स्वरूप उन्हीं की रस सिद्धि में सहायिका हैं। इन कृष्ण भक्त कवियों ने राधा कृष्ण के अलौकिक रूप का चित्रण कर स्वयं को उस रस में बोर दिया एवं इस लौकिक जगत् से परे आध्यात्मिक जगत् की लीलाओं का रसास्वादन करने में उनकी आत्मायें लीन हो गईं। पर सूफी कवियों ने अपने काव्यों के लिए न तो पौराणिक पात्रों को चुना और न उन्हें अलौकिक जगत् का ही स्वीकार किया। उनकी प्रेम कथाएँ कल्पित हैं और इन कथाओं के समान ही उनके पात्र भी कल्पित हैं, जो लौकिक जगत् से सम्बद्ध हैं। कृष्ण भक्त कवियों ने पौराणिक पात्रों का चयन किया क्योंकि उनके काव्य पुराणों पर आधारित हैं जबकि सूफियों ने काल्पनिक प्रेम कथाओं के लिए काल्पनिक पात्रों की

उद्भावना की ।

सिद्धान्त निरूपण में वैभिन्न्य :

सूफी कवियों और कृष्ण भक्त कवियों के दार्शनिक सिद्धान्तों में भी मत भेद है। वैसे तो सूफी कवि भी ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप के साथ साथ सगुण स्वरूप की स्वीकार करते हैं, परन्तु वे कृष्ण भक्त कवियों के समान न तो उसे अवतार मानते हैं और न उसके स्वरूप की ही चर्चा करते हैं। सूफियों का ब्रह्म निर्गुण होते हुए भी साधक के मनःक्षेत्र में सगुण होता है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का मत है कि "सूफियों का परमत्व सगुण निराकार है।" वह निर्गुण ब्रह्म होते हुए भी सबमें रूढ़ रहा है। ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ उसका अस्तित्व न हो। स्पष्टीकरण के हेतु उसमान की चित्रावली का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

"सौइ करता रामि रहा, रोम रोम सब माहि ।

तिन सब कीन्ह सिरछी यह, गाहक कीन्हो नाहि ॥२

हिन्दी सूफी कवियों ने प्रभु की दयामयता और कृपालुता का वर्णन करने में भी कृपणता नहीं की। उनका दृढ़ निश्चय है कि प्रभु कृपा जहाँनी की हीनी में, निराशा की वाशा में, सर्व अप्राप्ति की प्राप्ति में परिवर्तित कर सकती है। उसकी कृपा अपार है, वह कृपा वश ही समस्त सृष्टि का पालन करता है। कहीं कहीं सूफियों ने कृष्ण भक्तों के समान भगवान् का वर्णन किया है परन्तु उसके रूप की चर्चा कहीं भी नहीं

१- हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि-

डा० गोविन्द त्रिगुणाक्ष- पृ० ४०६

२- हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी - पृ० नन्ददुलारे वाजपेयी पृ० १६८

३- उसमान की चित्रावली- पृ० २

की। कवि जायसी की फरमावत के " मरुप गमन सण्ड " में ऐसा ही एक वर्णन द्रष्टव्य है, वहाँ पर प्रभु को भक्त वत्सल स्व परम कृपालु बताया है। यही भावना मन्दिरों तथा मूर्तियों के रूप में प्रतिफलित दृष्टिगत होती है :

‘ नमो नमो नारायण देवा, का मैं जीग करौं तोरि सेवा ।

तू दयालु सबके उपराही, सेवा कैरि वास तोहि नाही ॥ १

ईश्वर के उपर्युक्त सगुण रूप को दर्शाते हुए भी सूफी कवियों ने उसकी निर्गुण रूप को माना है। वह सृष्टि करता है पर इन नेत्रों से अदृश्य है वह रूप और वर्ण से रहित है। इस अखिल विश्व में जो कुछ दिखाई देता है सब उसकी रचना है पर वह स्वयं किसी के द्वारा उत्पन्न किया हुआ नहीं। भूत, इषिष्य और वर्तमान तीनों काल उसके अस्तित्व से युक्त हैं। उसने जैसा चाहा वैसा किया और जैसा करना चाहता है, वैसा ही करता है। अतः वह निर्गुण ब्रह्म अद्वितीय अलक्षण, अरूप, अवर्ण, अनादि, अगम्य, अनन्त, अगोचर तथा अन्तर्यामी है। जायसी का कथन है :

‘ बलस बरूप बबरन सौ कर्ण । वह सब सौ अब मोहि सौ बर्ण ।

वै सब कीन्ह जहाँ लगि कोई । वह नहि कीन्ह काहु कर होई ।
हुत पहिले अरु अब है सोई । पुनि सौ रहै रहै नहि कोई ।

जो चाहा सौ कीन्हैसि, कौ जो चाहे कीन्ह ।

ब्रजन डार न कोई, सदै चाहि जिउ दीन्ह ॥ २

किसी किसी स्थल पर सूफी कवियों ने परब्रह्म के सगुण और निर्गुण रूपों

की स्क साथ ही चर्चा की है : जैसे -

‘जीउ नाहिं पै जियै गुसाईं । कर नाहीं पै करै सवाई ।

जोम नाहिं पै सब किछु बोला । तन नाही सब ठाहर डोला ॥१

मैमन का निर्गुण निराकार भगवान् भी प्रकट और गुह्य रूपों में सर्वत्र व्याप्त है :

‘गुप्त रूप परगट सब ठाई । निर्गुन स्काकार गीसाई ॥ २

उसमान ने भी उस अद्वितीय ब्रह्म को प्रकट और गुप्त रूपों में सर्वव्यापी माना है, एवं उसकी सत्ता को समस्त प्राणी जगत् के भीतर और बाहर स्वीकार किया है :

‘सब वहि भीतर, वह सब माहि ॥ ३

इस प्रकार सूफियों का ईश्वर निर्गुण भी है और सगुण भी, परन्तु उसे सगुण भक्तों के ब्रह्म के साथ नहीं रखा जा सकता, क्योंकि न तो वह उनके समान अवतार धारण करता है और न मानवीय गुणों से ही युक्त है। कृष्ण भक्ति के लगभग सभी सम्प्रदाय श्रीकृष्ण को भगवान् मानकर अपने अपने भक्ति भाव के अनुसार मानवीय गुणों का आरोप करते हैं।

ब्रह्म के समान ही सूफी एवं कृष्ण भक्तों के जीव जगत्, माया एवं मोक्ष सम्बन्धी सिद्धान्तों में भी साम्य नहीं। सूफी अपने सिद्धान्त निरूपण के लिए कुरान की मान्यताओं से प्रभावित हैं। मार-

१- जायसी ग्रंथावली- आचार्य रान चन्द्र गुप्त- पृ० ३

२- मैमन कृत- मयुनालली- पृ० १

३- उसमान कृत चित्रावली- पृ० १

तीय अद्वैतवाद का भी उन पर प्रभाव पड़ा है परन्तु अधिक नहीं। परम तत्त्व की कल्पना कर इस्लाम के एकेश्वरवाद से प्रारम्भ करके अद्वैतवाद तक पहुँचाने की चेष्टा उन्होंने की है। एकेश्वरवाद एवं अद्वैतवाद के इस सम्मिलन में वे अधिक सफल नहीं हुए। उन पर कुरान के एकदेववाद का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। जगत् की उत्पत्ति के विषय में लगभग सभी सूफियों का विश्वास है कि उस परम ज्योति परमात्मा से सर्वप्रथम 'नुरुल मुहम्मदिया' या मुहम्मदिय वालीक की उत्पत्ति हुई एवं फिर उसी उपादान कारण से इस जगत् की रचना परब्रह्म की प्रसन्नता हेतु हुई। अतः नुरुलमुहम्मदिया ईश्वर और जीव के बीच का माध्यम है। हिन्दी सूफी कवियों ने मुहम्मद साहब की सत्ता को नूर रूप में मान्यता प्रदान की है। उदाहरणार्थ :

“वही ज्योति पुनि किरन फ़सारी। किरिन किरिन सब सृष्टि सवारि।
जोति के नाँव मुहम्मद राखा। सुनत सरीख कहा कमलासा ॥ १

अधिकांश सूफी कवि ईश्वर और जगत् का सम्बन्ध बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से स्वीकार करते हैं। बिम्ब ब्रह्म है और यह नाना रूपात्मक दृश्य जगत् उसका प्रतिबिम्ब। इस प्रतिबिम्ब पर दृष्टिपात करके ही साधक के हृदय में बिम्ब की और अग्रसर होने की लालसा जाग्रत होती है। और तभी सूफी कवि इश्क मजाजी के माध्यम से इश्क हकीकी की ओर कदम बढ़ाने का साहस कर उठता है। अधिकांश सूफी कवियों ने प्रतिबिम्बवाद की ओर संकेत किया है। मरफन की मधुमालती का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

“एक अहै दूसर कोउ नाहीं। तेहि सब सृष्टि रूप मुस चाहीं।”

यहीं पर कुरान के स्केश्वावाद एवं अद्वैतवाद के प्रतिबिम्ब वाद का अद्भुत समन्वय दृष्टिगत होता है।

कृष्ण भक्ति के लगभग सभी सम्प्रदाय जगत् को पूर्ण ब्रह्म वंशी का एक वंश स्वीकार करते हैं। ब्रह्म नित्य है और उसका वंश रूप जगत् और जीव भी नित्य है परन्तु सूफी कवि ब्रह्म को नित्य स्वीकार करके भी जगत् और जीव को अनित्य मानते हैं।

माया की चर्चा जहाँ भी सूफी कवियों ने की है वहाँ इन्द्रियात विषय मोगी के आकर्षण उसके दुष्प्रभाव का ही वर्णन अधिक है। माया का कोई सत्स्वरूप उन्हें मान्य नहीं। कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों में यों तो माया की स्मृति ही नहीं है परन्तु जहाँ कहीं भी उसका उल्लेख हुआ है, दो रूपों में ही उपलब्ध है। वल्लभ मत में माया के दो भेद माने गये हैं विद्या माया और अविद्या माया। भगवान् की शक्ति के रूप में तो वह सत्य है परन्तु उसी पृथक् रहकर उसका मिथ्या स्वरूप ही नेत्रों के सम्मुख उभरता है।

मीरा के लिये सूफियों ने सिद्धान्त रूप से इस्लाम के फ़ना या वक्फ़ शब्दों का ती प्रयोग नहीं किया परन्तु आत्मा परमात्मा के एकत्व की भावना उन्हें मान्य है और इसी के प्रदर्शन के लिए वे अन्त में नायक नायिका का चित्रन करा देते हैं। कभी कभी कथा को दुःखान्त करके सती की भावना द्वारा आत्मा का परमात्मा में विलयन भी करा देते हैं। कृष्ण भक्त कवि विदेह भुक्ति की अवस्था को श्रेष्ठ मानते हैं जीव शरीर धारण करते हुए भी भगवत्सेवा करता है एक प्रकार से वह भगवत्सेवा हेतु ही शरीर धारण करता

है, चार प्रकार की मुक्तियाँ मैं वे सायुज्य मुक्ति को सर्वोत्कृष्ट मानते हैं, क्योंकि इसी मुक्ति में ब्रह्म और जीव एक भावापन्न हो जाता है।

अतः सूफी कवियों और कृष्ण भक्त कवियों के सिद्धान्त निरूपण में भी मतभेद है, इसका कारण है कृष्ण भक्त कवियों की अवतारवाद की भावना। उनका कृष्ण सगुण साकार तथा रूप रेशा और गुणों से युक्त है। जबकि सूफी कवि ईश्वर के दोनों रूप सगुण और निर्गुण स्वीकार करने पर भी उसके अवतारवाद और रूप की प्रतिपादन नहीं करते। जैसाकि उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है, उनका ब्रह्म अलक्ष्य अरूप और अवर्ण है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूफी कवियों और कृष्ण भक्तों की परम्परा, वर्णन पद्धति, पात्र चयन तथा सिद्धान्त निरूपण आदि में पर्याप्त वैभिन्न्य है। सूफियों ने फारसी की मसनवी शैली की परम्परा का आधार ग्रहण किया है एवं कृष्ण भक्तों ने भागवतादि पौराणिक ग्रंथों की परम्परा को अपनाया है। फारसी की मसनवी शैली के समान ही उनकी वर्णन पद्धति, पात्र आदि पौराणिक या ऐतिहासिक ग्रंथों पर आधारित नहीं, अपितु काल्पनिक हैं जबकि कृष्ण भक्तों की वर्णन पद्धति पात्र आदि काल्पनिक नहीं, पौराणिक हैं।

सूफियों ने लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम प्राप्ति का आदर्श प्रस्तुत किया है और इसके अनुरूप ही उन्होंने प्रतीकों का आश्रय ग्रहण कर काल्पनिक पात्रों के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना की है। जबकि कृष्ण भक्तों के पात्र पौराणिक पात्रों के समान ही अलौकिकता लिए हैं, कल्पना के लिए वहाँ अधिक स्थान नहीं। अतः सूफी कवियों एवं कृष्ण भक्तों की वर्णन पद्धति, सिद्धान्त निरूपण आदि में जो अन्तर है वह परम्परागत है, मान्यताओं पर आधारित नहीं। यह स्वीकार करना ही पड़ेगा।

उपसंहार

ग्रंथ-सूची

उपसंहार :

प्रेम हृदय की वह दिव्य अनुभूति है, जो साधक की सामान्य वृत्तियों की ऊपर उठा उस सहज भावभूमि पर प्रतिष्ठित कर देती है, जहाँ पहुँच कर उसे कुछ काम्य नहीं रहता । सूफी और कृष्ण भक्तों की प्रेम पद्धति का आधार यही प्रेम है। सूफी तथा कृष्ण भक्त कवियों की प्रेम पद्धति के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि दो विभिन्न सम्प्रदायों तथा संस्कृतियों के परिवेश में विकसित होने पर भी भावनात्मक स्तर पर दोनों के प्रेम का रूप एक ही है। सूफियों के भारत में आगमन से पूर्व यहाँ जो प्रेम कथाएँ उपलब्ध थीं, उनमें कुछ पौराणिक या ऐतिहासिक थीं * और कुछ कल्पित । किन्तु ईश्वरीय प्रेम की उपलब्धि हेतु मानवीय प्रेम का आधार बनाने की जो प्रवृत्ति सूफी कवियों के यहाँ दृष्टिगत हुई उसके दर्शन पूर्ववर्ती साहित्य में दुर्लभ थे । हिन्दी के आदिकाल की रासी परम्परा प्रेमाख्यान परम्परा के अन्तर्गत ही आती है। "पुष्पोराज रासी" इस परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी है जिसमें अनेक कथाओं, आख्यानों के बाह्य आवरण के मध्य एक प्रेम भावना ही प्रधान है। इन प्रेमाख्यानों की अन्तर्भावना अलौकिकता के उतनी निकट नहीं पर सूफी कवियों ने इनसे मिलती जुलती कथाओं को आधार बनाया और तसव्वुफ की प्रणालियों के अनुरूप लौकिक प्रेम को ग्रहण करके अलौकिक प्रेम की ओर उन्मुख हुए । इसी को सूफियों ने इश्क मज़ाजी द्वारा इश्क हक़ीकी की प्राप्ति कहा ।

कृष्ण भक्त कवियों के काव्य का आधार भी ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति है पर इसके लिए उन्होंने लौकिकता का आश्रय नहीं ग्रहण किया,

अपितु मानवीय जगत् में रहते हुए भी अलौकिक जगत् में विचरण करने लगे । फलस्वरूप उनकी प्रेम भावना का प्रकटीकरण अलौकिक पात्रों के माध्यम से हुआ । उनके कृष्ण पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर हो गये और राधा व अन्य गोपियाँ उन पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर के वियोग में व्याकुल रहने वाली अनेक आत्माएँ ।

हिन्दी सूफी कवियों और कृष्ण भक्तों के काव्य का मूल आधार प्रेम है और परम्परा में वैमिष्य है और इसी आधार पर दोनों की वर्णन पद्धति, पात्र चयन, सिद्धान्त निरूपण आदि में भी अन्तर आ गया है। अब तक की उपलब्ध सामग्री के आधार पर मुल्ला दाऊद को प्रथम हिन्दी सूफी कवि और उनके ग्रंथ चत्पायन से हिन्दी सूफी काव्य का प्रारंभ स्वीकार किया जाता है। इनसे पूर्व फारसी में प्रेम कथाओं का प्रचलन अवश्य था, जिनकी हिन्दी सूफी प्रमास्थानों की आधार शिला माना जाता है। फारसी मसनवियों के आधार पर ही हिन्दी सूफी प्रमास्थानों की रचना हुई । कवि कुतुबन ईरान के अन्तिम श्रेष्ठ सूफी कवि मौलाना जामी के सम-कालीन थे । अतः जब ईरान में तसव्वुफ नष्ट प्रायः हुआ तो भारत में इसका पौधा पनपने लगा । यह परम्परा 20 वीं शताब्दी तक अप्रतिहत गति से चलती रही । प्रथमतः प्रायः सभी सूफी कवियों के काव्य का मूल आधार भारतीय लोक कथाएँ रहीं पर अठारहवीं शती ईस्वी और उसके पश्चात् के कवियों ने अरब या ईरान की कहानियों अथवा कुरान में वर्णित कथाओं को ग्रहण कर अपने काव्य का सर्जन किया । यों भारतीय लोक कथाओं को ग्रहण करने पर भी हिन्दी सूफी कवियों के काव्यों में फारसी मसनवियों का रूप ही अधिक मुखरित हुआ है, जबकि कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य सृजन हेतु पौराणिकता का आश्रय ग्रहण किया । उनकी काव्य परम्परा श्रीमद्भागवत का आधार ग्रहण

किए हुए हैं, फलतः उनकी रचनाएं भागवत का प्रतिबिम्ब दृष्टिगत होती हैं। हिन्दी सूफी कवियों की रचनाएं लोक कथाओं पर आधारित हैं, अतः काल्पनिक हैं। कृष्ण भक्तों के भक्ति काव्य पौराणिकता को लेकर चलते हैं अतः उसमें कल्पना के समावेश का न तो स्थान ही रह जाता है और न आवश्यकता ही ।

हिन्दी सूफी कवियों की प्रेम कथाओं के समान उनके पात्र भी अधिकतर काल्पनिक हैं। ऐतिहासिक कथाओं में भी सूफी कवियों ने ऐतिहासिक पात्रों के साथ साथ काल्पनिक पात्रों का समावेश अधिक किया है, जबकि कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं के पात्र पौराणिक हैं, उनके कृष्ण गोपियां उद्धव आदि सभी पुराणों के कृष्ण गोपियां और उद्धव आदि हैं।

सूफियों और कृष्ण भक्तों की परम्परा, वर्णन पद्धति आदि के समान उनके सिद्धान्त निरूपण में भी अन्तर है। कृष्ण भक्त कवि ब्रह्म के अवतारवाद को मानते हैं। उनके ब्रह्म पूर्णरूपेण सगुण हैं, परन्तु सूफी कवि ब्रह्म के निर्गुण रूप को मान्यता देते हैं। ब्रह्म के निर्गुण रूप को मान्यता प्रदान करने पर भी इन सूफी कवियों ने ब्रह्म के सगुणत्व की चर्चा कहीं कहीं अवश्य की है परन्तु वे कृष्ण भक्तों के समान न तो उसे अवतार मानते हैं और न उसके रूप वर्णन में ही रुचि लेते हैं। उनका ब्रह्म सृष्टि करता है पर इन नेत्रों से अदृश्य है, वह रूप और वर्ण से रहित है। इस अखिल ब्रह्मांड

में जो कुछ दृष्टिगत होता है वह उसकी रचना अवश्य है परन्तु वह स्वयं किसी के द्वारा उत्पन्न किया हुआ नहीं है। अतः सूफियों का ब्रह्म निर्गुण है जबकि कृष्ण भक्ति काव्यों में गोपियां बड़े ही युक्ति पूर्ण ढंग से निर्गुण ब्रह्म का खण्डन करती हैं। लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की प्राप्ति हेतु सूफियों और कृष्ण भक्त दोनों ने प्रतीकों का आश्रय ग्रहण किया है परन्तु सूफियों का ब्रह्म निराकार है। फलतः उसे सरल तथा सुलभ रूप से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए उन्हें प्रतीकों की आवश्यकता अधिक पड़ी। कृष्ण भक्त कवि सगुणोपासक थे, अवतारवाद के समर्थक थे अतः उन्हें प्रतीकों की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ी। बड़े सुलभ हुए ढंग से उन्होंने पाठकों के समक्ष अपने विचार प्रस्तुत किए।

सूफी कवि और कृष्ण भक्तों दोनों के प्रेम में एक-निष्ठता, अनन्यता और तीव्रता पाई जाती है और प्रेम की इस तीव्रता की स्थायित्व प्रदान करने के हेतु दोनों ने मिलन से अधिक विरह को महत्व प्रदान किया है। इस विरह की रूपक और प्रतीकों के द्वारा खूब सजाया गया है। सूफी काव्य में कृष्ण काव्य से भिन्न कुछ कथानक रुढ़ियां अवश्य ही उपलब्ध होती हैं जो सम्भवतः फारसी प्रभाव के कारण हैं जैसे हाथी, अजगर हुदहुद आदि परन्तु हिन्दी सूफी काव्य की अधिकांश कथानक रुढ़ियां का मूल स्रोत फारसी साहित्य न होकर भारतीय साहित्य है जैसे अप्सरा, कामदेव, कुमुद, कोकिल, गरुड़, चन्दन, चकोर चांद, मृग और वीणा, चक्का, चक्की, संवर का फूल, स्वाति बूंद, हारिल आदि। इनमें अधिकतर कथानक रुढ़ियां कृष्ण भक्ति काव्य में भी उपलब्ध हैं और प्रेमगाथा काव्यों में भी।

सूफी तथा कृष्ण भक्त दोनों ही प्रेम के समझा धार्मिक कर्मकाण्डों को महत्व नहीं देते । यूँ तो कबीर आदि के समझा भी प्रेम के ढाई अकार के सामने किसी प्रकार के ज्ञान का कोई महत्व नहीं । सूफी और कृष्ण भक्त कवि भी प्रेम का महत्व प्रतिपादित करते हैं। सूफी कवि जायसी, कुतुबन, मंफन, उसमान आदि प्रेम के समझा ज्ञान, जप, तप, संयम, नियम आदि सभी को ह्य मानते हैं। कृष्ण भक्त कवियों की गोपियां भी समाज, कुल, शास्त्र परिवार आदि की मर्यादा का उल्लंघन कर एक मात्र कृष्ण की ही अपना प्रेम पात्र स्वीकार करती हैं। प्रेम के समझा न तो उन्हें किसी की चिन्ता है और न सामाजिक नियमों का ज्ञान ही । सूफी कवियों ने अपने काव्य में भावात्मक रहस्यवाद को स्थान दिया है, उधर कृष्ण भक्त कवियों ने भी रहस्यवादी प्रणयमूला भक्ति को स्वीकार करके सूफियों के रहस्यवाद में अपना स्वर मिला दिया है।

पौराणिक या ऐतिहासिक प्रेम कथाओं की कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य का आधार बनाया किन्तु तथ्य यह है कि उनकी प्रेम भावना की अभिव्यक्ति अलौकिक पात्रों के माध्यम से होते हुए भी सामयिक लौकिक प्रेम की दरबारी पद्धतियों से पूर्ण रूपेण आते मुँदने में असमर्थ रही । इस प्रकार कृष्ण भक्ति काव्य में यद्यपि कृष्ण की पूर्ण प्रतिष्ठा पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर के रूप में हुई और राधा तथा अन्य गोपियां उनके वियोग में व्याकुल रहने वाली आत्माओं के रूप में प्रकट हुई फिर भी अनेक स्थलों पर कृष्ण राधा और गोपिकाओं का सामान्यीकरण परोक्षा रूप में होता रहा । यही कारण है कि कालान्तर में ऐतिहासिक के कृष्ण पूर्ण ब्रह्म की परिधियों को

लांघकर एक सामान्य नायक के रूप में चित्रित हुए और राधा तथा अन्य गोपिकाओं ने अपने अलौकिक रूप को उतारकर लौकिक रूप धारण कर लिया। कृष्ण भक्ति काव्य की ही भांति सूफी प्रेम कथाओं का साधारण पात्र अपने अलौकिक परिवेश को चिरकाल तक संभाले न रह सका और आगे चलकर सूफी कवियों के साथ ही साथ इस प्रकार की प्रेम कथाओं का भी लीप हो गया ।

वस्तुतः हिन्दी सूफी कवियों और कृष्ण भक्तों की प्रेम पद्धति का लक्ष्य एक ही रहा अलौकिक प्रेम की उपलब्धि उनका प्रेम हृदय के तार को मंजूर करने वाला है, जिसके मंजूर होते ही मन विकसित और प्राण पुलकित होकर उस अलौकिक प्रेम का रसास्वादन करने लगते हैं, जिसकी एक ही बूंद समस्त कष्टों का निवारण कर देती है।

सहायक ग्रंथों की सूची

- १- अग्रवाल, वासुदेव शरण सं० - व्याख्या- पद्मावत, जायसी, साहित्य
सदन, चिरगांव, फांसी सं० २०१२ वि०
- २- अमरेश, अमर बहादुर सिंह सं०- कहरनामा और मसलानामा- जायसी,
हिन्दुस्तानी ऐकेडमी, इलाहाबाद १९६२ ई०
- ३- अग्रवाल, शशि - कृष्ण भक्ति काव्य पर पुराणों का प्रभाव, हिन्दुस्तानी
ऐकेडमी, इलाहाबाद
- ४- ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द - ओझा निबन्ध संग्रह, द्वितीय भाग,
साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्वविद्या-
लय, उदयपुर, प्र० सं० १९५४ ई०
- ५- उपाध्याय, डा० बलदेव - भागवत सम्प्रदाय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र०
सं० २०१० वि०
वैदिक कहानियां- प्र० सं०
- ६- उप्रेती- डा० भवानी दत्त- नन्ददास जीवनी और काव्य- रामबीर पुस्तक
मन्दिर, पिथौरागढ़
- ७- किशनदास प्रका० - श्री भक्तमाल, नामादास, ध्वजप्रसाद मथुरा
- ८- कुलत्रिष्ठ- कमल - मलिक मुहम्मद जायसी- भाग १, साहित्य भवन,
प्रयाग, सं० १९४७ ई०
हिन्दी प्रमास्थानक काव्य, साहित्य भवन, प्रयाग,
सं० १९६२ ई०

६- कुलत्रिष्ठ, डा० सरोजिनी - हिन्दी साहित्य में कृष्ण-राज्यश्री
प्रकाशन, मथुरा

१०- ग्रियर्सन, जार्ज अब्राहम - हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास- हिन्दी
प्रचारक पुस्तकालय, बनारस

११- गुप्त, गणपतिचन्द्र - साहित्यिक निबन्ध, अशोक प्रकाशन, दिल्ली
सन् १९६३ ई०

१२- गुप्त, डा० दीन दयालु - अष्टकाप और वल्लभ सम्प्रदाय, हिन्दी
साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

१३- गुप्त, डा० माता प्रसाद सं० - जायसी ग्रंथावली, जायसी, हि० २०
प्रयाग, सं० १९५२ ई०

पदमावत, जायसी, भारती मण्डार, इलाहाबाद सं० १९६३ ई०

मधुमालती, मंकन, मित्र प्रकाशन इलाहाबाद,
१९६१ ई०

१४- गुप्त, सोमनाथ - अष्टकाप पदावली, १९४४ ई०

१५- गुहा, परमेश्वरी लाल- चन्दायन, दाऊद, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर,
दिल्ली, १९६४ ई०

१६- गोयन्दका, जयदयाल- श्री प्रेमभक्ति प्रकाश, गीता प्रेस, गोरखपुर

१७- गोस्वामी, ललिताचरण- श्रीहितहरिवंश गोस्वामी- सम्प्रदाय और
साहित्य, वैष्णु प्रकाशन, वृन्दावन संवत्
२०१४ वि०

- १८- गोस्वामी, राधाकिशोर प्रका० - व्यासवाणी, वृन्दावन संस्क० १९९५
वि०
- १९- गीतम, मनमोहन - सूर की काव्यकला, हिन्दी अनुसन्धान परिषद्,
दिल्ली
- २०- गौड़, शान्तिस्वरूप - सूरदास और उनका साहित्य, प्रभाकर पुस्तक
मन्दिर, आगरा , प्र० सं०
- २१- चतुर्वेदी, राजेश्वर प्रसाद- हिन्दी साहित्य का इतिहास, अशोक प्रकाशन,
दिल्ली
- २२- चतुर्वेदी, परशुराम - भक्ति साहित्य में मधुरोपासना, भारती मण्डार,
इलाहाबाद
- मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ, साहित्य भवन,
प्रयाग
 - हिन्दी काव्य धारा में प्रेम प्रवाह, किताब महल,
इलाहाबाद
- २३-
- हिन्दी के सुफ़ी प्रेमाख्यान, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर,
हीराबाग, गिरगांव, बम्बई- १९६२ ई०
 - सुफ़ी काव्य संग्रह, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग,
शक १८८०
 - वैष्णव धर्म, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
 - मध्यकालीन प्रेम साधना, साहित्य भवन इलाहाबाद,
प्र० सं० १९५२ ई०

- २३- जयदेव - सूफी महाकवि जायसी, भारतीय प्रकाशन मंदिर
अलीगढ़, सन् १९६६ ई०
- २४- बालान, धनश्यामदास प्रका०- श्रीमद्भागवत पुराण, दोनों भाग,
गीता प्रेस, गोरखपुर
- २५- जैन, विमलकुमार- सूफी मत और हिन्दी साहित्य, आत्माराम
एण्ड सन्स , दिल्ली, १९५५ ई०
- २६- जैन, डा० हीराताल- सं० - करकण्डु चरित, कलकामर मुनि, कारजा
जैन ग्रंथमाला, बरार सं० १९३४ ई०
- २७- तिवारी, डा० मोलानाथ - भारतीय पौराणिक कथाएं, राजकमल
प्रकाशन, दिल्ली
- २८- तिवारी, डा० रामचन्द्र - मध्ययुगीन काव्य साधना, विश्वविद्यालय
प्रकाशन, गोरखपुर, वाराणसी, १९६२ ई०
- २९- तिवारी, रामपूजन - जायसी , राधाकृष्ण प्रकाशन, सन् १९६५ ई०
सूफी मत साधना और साहित्य, ज्ञानमण्डल,
बनारस, सं० २०१३ वि०
हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका, पटना, सन्
१९६० ई०
- ३०- तीमर, श्रीमतिकणिका- ब्रजभाषा और ब्रजबुलि साहित्य, काशी,
हि० वि० सन् १९६४ ई०

३१- त्रिगुणायत, गोविन्द - जायसी का पद्मावत : काव्य और दर्शन,
अशोक प्रकाशन, दिल्ली - १९६३ ई०

हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी
दार्शनिक पृष्ठभूमि, साहित्य निकेतन, कानपुर,
१९६१ ई०

३२- देसाई, लक्ष्मी माई ज्ञान लाल प्र०- वर्णाश्रम और कीर्तन संग्रह, संस्करण,
१९६३ वि०

३३- द्विवेदी, गणेश प्रसाद सं० - हिन्दी प्रेम गाथा काव्य संग्रह, संशो०
गुलाबराय, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इला०
सन् १९५३ ई०

३४- द्विवेदी, डा० हजारी प्रसाद - नाथ सम्प्रदाय, हिन्दुस्तानी एकेडेमी,
इलाहाबाद, १९५० ई०

मध्यकालीन धर्मसाधना, साहित्य भवन,
इलाहाबाद, १९६२ ई०

हिन्दी साहित्य, दिल्ली- अम्बाला
वागरा, सन् १९६५

हिन्दी साहित्य का आदिकाल, बिहार
राष्ट्र परिषद्, पटना , सन् १९५२ ई०

हिन्दी साहित्य की भूमिका , हिन्दी
ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई, १९५४ ई०

- सूर साहित्य, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, हीरा
गांव, बम्बई, १९५४ ई०

३५- नलिन, जयनाथ - भक्ति काव्य में माधुर्य भाव का स्वरूप, बंसल एण्ड
कम्पनी, दिल्ली

३६- नारंग, इन्द्रचन्द्र - पदमावत का ऐतिहासिक आधार, हिन्दी भवन,
जालन्धर, १९५६ ई०

पदमावत का सार, हिन्दी भवन, जालन्धर प्र० सं०

पदमावत का अनुशीलन, हिन्दी भवन, जालन्धर

३७- पाण्डेय, डा० कपिलदेव - मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद, चौलम्बा
विधा भवन, वाराणसी १९६३ ई०

३८- पांडेय, चन्द्रबली - तसवुफ अथवा सूफीमत- नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स,
बनारस, १९४८ ई०

३९- पांडेय, डा० श्याम मनीहर- मध्ययुगीन प्रेमास्थान, मित्र प्रकाशन,
इलाहाबाद, प्र० सं०

४०- पाण्डेय, श्यामनारायण - हिन्दी कृष्ण काव्य में माधुर्योपासना,
रामा प्रकाशन, लखनऊ, १९६३ ई०

४१- पाण्डेय, डा० शम्भूनाथ - सूर की काव्यकला, सरस्वती संवाद, मीती
कटरा, आगरा, १९६२ ई०

४२- पाठक, शिव सहाय - मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य, ग्रन्थम
कानपुर, १९६४ ई०

- पदमावत का काव्य सौंदर्य, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर,
बम्बई, १९५६ ई०

४३- पाठक, शिव सहाय सं० - चित्ररेखा, जायसी, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९५६ ई०

४४- पारीख, द्वारकादास तथा
मीतल - सूर निर्णय, अज्वाल प्रेस, मथुरा, संस्करण
सं० २००६

४५- प्रेमी, त्रिलोकीनाथ- सूर साधना और साहित्य, आदर्श पुस्तक मण्डार,
कलकत्ता, बनारस

४६- बड़वाल, डा० पीताम्बर दत्त- हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय,
अथ पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ प्रसं०
सूरदास- सं० डा० भगीरथ मिश्र, लखनऊ

४७- बनारसीदास- कविवर, अर्ध कथानक , बम्बई, १९४३ ई०

४८- व्रजरत्नदास सं० - अमीर खुसरो : खुसरो की हिन्दी कविता, ना० प्र०
सभा, काशी, २०१० वि०

नन्ददास ग्रंथावली , नागरी प्रचारिणी सभा, काशी,

४९- मटनागर, डा० रामरत्न- सूरदास, किताब महल, प्रयाग

हिन्दी साहित्य : एक अध्ययन, किताब महल,
प्रयाग, १९४८ ई०

नन्ददास - किताब महल, प्रयाग

- ५०- प्रमर, डा० रवीन्द्र - पद्मावत में लोक तत्व , मित्र प्रकाशन,
इलाहाबाद - १९६२ ई०
- ५१- माधव, भुवनेश्वर नाथ मिश्र- मीरा की प्रेम साधना, राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली- १९३७ ई०
- ५२- मिश्र , दुर्गा शंकर - भक्ति काव्य के मूल स्रोत- नवयुग ग्रंथागार, लखनऊ
- ५३- डा० मिथिलेश कान्ति - हिन्दी भक्ति शृंगार का स्वरूप, वैतन्य प्रकाशन,
कानपुर, १९६३ ई०
- ५४- मिश्रबन्धु - मिश्रबन्धु विनीद, तृतीय भाग, गंगा पुस्तक माला,
कार्यालय, लखनऊ, सं० १९८५ ई०
- ५५- मिश्र, शिवगोपाल सं० - मधुमालती , मंजन , हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
वाराणसी, १९५७ ई०
- मुगावती, कुतुबन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग, प्र० सं० शक १८८५ वि०
- ५६- मीतल, प्रभु दयाल - वष्टक्षाप परिचय, अग्रवाल प्रेस मथुरा, सं० २००६ वि०
- सुरसारावली, अग्रवाल प्रेस, मथुरा सं० २०१४ वि०
- ५७- मीतल, डा० राजकुमारी- कृष्ण भक्ति साहित्य में रीतिकाव्य पद्धति
परंपरा, विनीद पुस्तक मन्दिर, आगरा
प्र० सं० १९६७ ई०

- ५८- रावत, चन्द्रमान सिंह - सूर साहित्य : नवमूल्यांकन, जवाहर पुस्तकालय,
मथुरा, १९६७ ई०
- ५९- राधाकृष्ण दास सं० - भक्तनामावली - ध्रुवदास , ना० प्र० समा,
काशी
- ६०- डा० रूप नारायण - ब्रजभाषा के कृष्ण काव्य में माधुर्य भक्ति,
यंगमैन, एण्ड कम्पनी, नई सड़क दिल्ली- प्र०सं०
१९६२ ई०
- ६१- ला जर्नल प्रेस, इलाहाबाद - प्रका० प्रेमी अभिनन्दन ग्रंथ, १९४६ ई०
- ६२- वर्मा, जगदीश सं० - चित्रावली - उसमान- ना० प्र० समा० काशी,
१९१२ ई०
- ६३- वर्मा, डा० धीरेन्द्र - अष्टकाप (चौरासी वैष्णवन की वार्ता)
गोकुलनाथ - रामनारायण लाल पब्लिशर्स,
इलाहाबाद
- हिन्दी भाषा का इतिहास- हिन्दुस्तानी
एकेडेमी, प्रयाग, १९४६ ई०
- सूर सागर सार, साहित्य भवन, इलाहाबाद,
१९६६ ई०
- ६४- वर्मा, धीरेन्द्र तथा वृजेश्वर सं०- हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड,
भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग,
१९५६ ई०

- ६५- वर्मा, डा० ब्रजेश्वर- सूरदास, हिन्दी परिषद्, प्रयाग, तृतीय संस्करण, १९५६ ई०
- ६६- वर्मा, डा० रामकुमार- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- नवसाहित्य प्रेस, प्रयाग १९५८ ई०
- ६७- वर्मा, रामचन्द्र कु०- अरब और भारत के सम्बन्ध, सुलेमान नदवी सैयद, हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग १९३० ई०
- ६८- वर्मा, रामनरेश - हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका, ना० प्र० समा, काशी
- ६९- वर्मा, सत्यजीवन - चित्रावली (संक्षिप्त) उसमान, रामनारायण लाल बैनीशास्त्र, इलाहाबाद १९२६ ई०
- ७०- वर्मा, गुरुदेव प्रसाद - हिन्दी के मुसलमान कवियों का प्रेम काव्य, हिन्दी प्रचारक, पुस्तकालय, वाराणसी
- ७१- वाजपेयी , आचार्य नन्दकुलारे- आधुनिक साहित्य, भारती भण्डार, इलाहाबाद, २००७ वि०

हिन्दी साहित्य- बीसवीं शताब्दी, लोक भारती प्रकाशन, लखनऊ १९४६ ई०

सूर सुणामा- ना० प्र० समा० काशी

सूर सागर- ना० प्र० समा- काशी - तृ० सं० सं० २०१५ वि०

महाकवि सूरदास, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली

७२- वाष्णीय, डा० लक्ष्मी सागर- अनु० हिन्दुओं साहित्य का इतिहास-
गार्गा द तासी, हि० २०
इलाहाबाद

७३- वैकटेश्वर प्रेस, बम्बई प्रका० - चौरासी वैष्णवन की वार्ता १६८५ वि०

दी सी बावन वैष्णवन की वार्ता १६८८ वि०

७४- श्यामसुन्दर दास सं० - इन्द्रावती , नूरमुहम्मद- पहला भाग- ना० प्र०
समा, काशी, १६०६ ई०

७५- शर्मा, डा० नारायण दत्त- निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त
हिन्दी कवि- प्र० संस्करण, अशोक प्रकाशन,
मथुरा

७६- शर्मा, ब्रजभूषण सं० - परमानन्द सागर, विधा विभाग कांकरौली ,
२०१६ वि०

कृष्णदास पद संग्रह, विधा विभाग कांकरौली,
२०१६ वि०

कुम्भदास, जीवनी पद संग्रह और भावार्थ,
कांकरौली - २०१० वि०

गोविन्द स्वामी - कांकरौली - २००८ वि०

चतुर्भुजदास- जीवन कांकी पद संग्रह, कांकरौली
२०१५ वि०

७७- शर्मा, राजकुमार - जायसी और उनका पद्मावत- पद्म बुक कम्पनी,
जयपुर, प्रसं० १९६७ ई०

७८- शर्मा, डा० मुन्शीराम - भारतीय साधना और सूर साहित्य

सूरदास का काव्य वैभव, ग्रन्थम्, रामबाग,
कानपुर, १९६५ ई०

पद्मावत का भाष्य , आचार्य शुक्ल- साधना
सदन, कानपुर, १९४७ ई०

भक्ति का विकास, चौलम्बा, विद्या मदन,
वाराणसी, १९५८ ई०

सूरसौरभ, आचार्य शुक्ल साधना सदन, कानपुर
सं० २०१३

७९- शर्मा, शिवकुमार - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां, अशोक प्रकाशन,
दिल्ली

८०- शर्मा, डा० हरवंश लाल- सूर और उनका साहित्य, भारत प्रकाशन मंदिर,
अलीगढ़

भागवत दर्शन- भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़

सूर काव्य की आलोचना- भारत प्रकाशन मंदिर
अलीगढ़

- ८१- शास्त्री, कण्ठमणि सं०- अष्टहाप की वार्ता, विधा विभाग, कांकरौली,
२००६ वि०
- ८२- शास्त्री, डा० सूर्यकांत- हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास
- ८३- शुक्ल, उमाशंकर - नन्ददास, पहला भाग , प्रयाग, वि० वि०, इलाहाबाद
- ८४- शुक्ल, विश्वनाथ - हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पर श्रीमद्भागवत का
प्रभाव, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़
- ८५- शुक्ल, डा० गोवर्धन नाथ - सं० परमानन्दसागर, भारत प्रकाशन मंदिर,
अलीगढ़
- ८६- शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - भ्रमरगीत सार, साहित्य सेवा सदन, वाराणसी,
२०१२ वि०
- जायसी ग्रंथावली, जायसी- ना० प्र०सभा०
काशी, २००६ वि०
- हिन्दी साहित्य का इतिहास- ना० प्र० सभा,
काशी, २००३ वि०
- सूरदास, सरस्वती मन्दिर, जतनवर बनारस,
चतुर्थ परिवर्द्धित संस्करण
- ८७- शुक्ल, रामबहोरी , मीरथ- हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास,
हिन्दी भवन, जालन्धर, १९५६ ई०

- ८८- शुक्ला, सरला - जायसी के परवती हिन्दी सूफी कवि और काव्य
लखनऊ विश्वविद्यालय, सं० २०१३ वि०
- ८९- श्रीवास्तव, डा० स्नेहलता - हिन्दी में प्रमरणीत काव्य और उसकी
परम्परा- भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़
- ९०- श्रीवास्तव, डा० हरिकान्त- भारतीय प्रमास्थान काव्य, हिन्दी प्रचारक
पुस्तकालय, बनारस १९५५ ई०
- ९१- डा० सत्येन्द्र - मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्त्विक अध्ययन,
विनीत पुस्तक मन्दिर आगरा, १९६० ई०
- ९२- सरीज, शिवसिंह - ठाकुर रणजीत सिंह सेनार के पुत्र शिवसिंह, चतुर्थ
आवृत्ति, लखनऊ १८९९ ई०
- ९३- सिंह, शिवसिंह प्रसाद - सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, परि०
सं० २ , हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस
- ९४- सिंह, डा० शम्भूनाथ, - हिन्दी काव्य की सामाजिक भूमिका- चौखम्भा
वाराणसी, १९६६ ई०
- ९५- सिंह, सुदर्शन अनु० - श्री कृष्ण माधुरी- गीता प्रेस, २०१५ वि०
- ९६- सांख्यधर , श्यामसुन्दर- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास ,
भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़
- ९७- सिन्हा, डा० सावित्री - ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभि-
व्यंजना शिल्प- नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
दिल्ली- प्र० सं० १९६१

- ६८- सुलभ, गोविन्द राम सं० बल्लभाचार्य और उनका पुष्टिमार्ग- साहित्य
प्रचारक कार्यालय
- ६९- स्नातक, विजयन्द्र (डा०) राधावल्लभ सम्प्रदाय- सिद्धान्त और
साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
- १००- वियोगी हरि - ब्रज माधुरी सार

संस्कृत ग्रंथों की सूची

- १- ऋग्वेद
- २- कठोपनिषद्
- ३- छान्दोग्योपनिषद्
- ४- तैत्तिरीयोपनिषद्
- ५- श्वेताश्वतरोपनिषद्
- ६- कविराज पं० गोपीनाथ सं०- शाण्डिल्य भक्ति सूत्र व्याख्या - मुद्रक
जैकृष्णादास, हरिदास गुप्त, काशी
- ७- गोस्वामी , रूप - हरिमक्तिरसामृत सिन्धु, अच्युत ग्रंथ माला, काशी
- ८- गीयन्दका, जयदयाल टीका- श्रीमद्भगवद्गीता- मुद्रक तथा प्रकाशक श्री
धनश्यामदास जालान, गीता प्रेस गोरखपुर
- ९- जयकृष्णादास, हरिदासगुप्त - प्रका०- श्री पुराण संहिता, चौखम्बा संस्कृत
सीरीज़ आफिस, विथा विलास प्रेस
बनारस, वि० सं० २००८
- १०- जीशी, रसिक बिहारी- श्री रास पंचाध्यायी- सांस्कृतिक अध्ययन-
माधव फाइनैन्स कम्पनी फण्ड, अजमेर,
(प्र० सं० १९६१ ई०)
- ११- जीगलिकर सं० - गाथा सप्तशती- प्रसाद प्रकाशन, सदाशिव पुर्ण
- १२- डा० नगेंद्र - काव्य प्रकाश (आचार्य मम्मट) ज्ञानमण्डल, वाराणसी,
प्र० सं० भाद्रपद सं० २०१७ वि०

- १३- पारीस, दारकादास : सं० स्वरूप निर्णय - ले० श्री हरिराय जी
सत्संग कार्यालय, संस्करण सं० १९८४ वि०
- १४- पीदार हनुमान प्रसाद- नारद भक्ति सूत्र- गीता प्रेस गीरखपुर सं० २००८
- १५- श्री वल्लभाचार्य जी - तत्त्वार्थ दीप निबन्ध- शास्त्रार्थ प्रकरण- प्रकाशक
पं० श्रीधर शिवलाल जी, ज्ञान सागर प्रेस, बम्बई
संस्करण सं० १९६१
- १६- श्री वल्लभ पुष्टि प्रकाश- लक्ष्मी वैकुण्ठेश्वर स्टीम प्रेस, कल्याण, बम्बई
सं० १९६३
- १७- ब्रह्म सूत्र शांकर भाष्यम् - प्रकाशन स्थान - गोविन्द मठ, टेढी नीम,
वाराणसी- वि० सं० २०२२
- १८- भट्ट, नन्दकिशोर सं० - तत्त्वदीप निबन्ध- शास्त्रार्थ, व मागवतार्थ-
प्रकरण , ले० श्री वल्लभाचार्य जी, प्र० निर्णय
सागर, प्रेस, बम्बई
- १९- शर्मा, भट्ट रमानाथ- णीइश ग्रंथ- ले० श्री वल्लभाचार्य जी , १९३८ ई०
- २०- सप्रकाश तत्त्वदीप निबन्ध- ज्ञान सागर पत्रालय, बम्बई, सं० १९६४ वि०
- २१- स्नातक डा० विजयन्द्र सं० हिन्दी भक्ति रसामृत सिन्धु- भाष्यकार,
आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, दिल्ली
विश्वविद्यालय, प्र० सं० १९६३ ई०

हिन्दी-पत्र-पत्रिकाएं

आलोचना

कल्याण- साधनांक- कृष्णांक एवं भागवतांक - गीता प्रेस गोरखपुर

कल्पना

त्रिपथगा

नागरी प्रचारिणी पत्रिका

ब्रज माधुरी- मथुरा से प्रकाशित

माधुरी

सङ्गमालीचना

सम्मेलन पत्रिका

साहित्य

साहित्य सन्देश

हिन्दी अनुशीलन

हिन्दुस्तानी

माण्डण : भूरदास और उनकी कविता - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी,
बंगाल

अंग्रेजी ग्रंथों की सूची

१- ताराचन्द : इन्क्लुएन्स आव् इसलाम आन इण्डियन कल्चर- इलाहाबाद
सन् १९३६ ई०

२- निकलसन, वार० ए : स्टडीज़ इन इस्लामिक मिस्टीसिज्म कैम्ब्रिज़
सन् १९२६ ई०

ए लिटरेरी हिस्ट्री आव् दी आरब्स- कैम्ब्रिज़,
सन् १९४१

दि कश्फुल महज्जब- ले० हुज्वेरी, १९११ ई०

४- ब्राउन, ई० जी० : ए लिटरेरी हिस्ट्री आव् परशिया भाग ३ कैम्ब्रिज़
सन् १९५१ ई०

“ “ २

“ “ १

५- मंडारकर, आर० जी - वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस
सिस्टम्स

६- माग्रेट , स्मिथ - दि परशियन मिस्टिक्स- अतार- लन्दन १९३२ ई०

७- रावाकृष्णन् : भावद्गीता - जार्ज एलन अविन लि० लन्दन

दि ब्रह्मसूत्र , रस्किन हाउस, जार्ज एलन एण्ड अविन लि०

८- लेवी, आर० : परशियन लिटरेचर , लन्दन - १९३६ ई०

- ६- शिरीफ , ए० जी० अरु० पदमावति - जायसी - कलकत्ता १९४४ ई०
- १०- शुस्तरौ- ए० एन० ए० - आउट लाइन्स आफ इस्लामिक कल्चर, भाग २
बंगलौर, १९३८ ई०
- ११- सार्ईक्स, पी० ए हिस्टरी आव् परशिया भाग १ , लन्दन १९५१ ई०
- १२- ह्यूज़ , टी० वी० - ए डिक्शनरी आव् इस्लाम - लन्दन- १९३५ ई०

इन्साइक्लोपीडिया तथा गजेटियर

इन्साइक्लोपीडिया- ब्रिटैनिका - वाल्यूम १ व २१

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका लि० शिकागो लन्दन

गजेटियर आव् प्राविन्स आव् क्लष भाष १ , १९५८ ई०

डिस्ट्रिक्ट गजेटियर आव् दि यूनाइटेड प्राविंसेज़ भाग ३६

राय बरौली

हिन्दी कोश

नातन्दा विशाल शब्द सागर - न्यू इम्पीरियल बुक डिप्री, नई सड़क दिल्ली

हिन्दी कथा कोश - हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद सन् १९५४ ई०

हिन्दी मुहावरा कोश - इलाहाबाद - १९६४ ई० (सं० मोलानाथ तिवारी)

हिन्दी विश्वकोश - खण्ड १ ना० प्र० समा० काशी संवत् २०१७ वि०

हिन्दी विश्वकोश- सम्पादक श्री नगेन्द्र नाथ वसु - प्राच्य विद्या महाण्वि
चतुर्विंश भाग

हिन्दी साहित्य कोश- बनारस, संवत् २०१५ वि०